मालवीय जन्म-शती के उपलक्ष्य में प्रकाशित

महामना मालवीय

हमारे सामने तो कई ऐसी मिसालें हैं जिनसे हम सीख सकते हैं—आजकल के लोग आजकल के नौजवान बहुत-कुछ सीख सकते हैं मालवीय जी के जीवन से। उनके सामने जो लक्ष्य था जैसे उन्होंने काम किया और सफलता पायी इन सबसे। हम मूर्तियाँ खड़ी करें संस्थाएँ बनायें यह तो ठीक है लेकिन आखिर में सबक सीखें उनकी जिन्दगी से उनके काम से और सीखकर उसी रास्ते पर चलें आजकल के जमाने में उसको लगाकर चलें और आगे बढ़ें तो सही उनका सबसे बड़ा स्मारक हो सकता है। यह अच्छा है कि समय आया उनकी शताब्दी मनाने का तो पुराने और नये लोग सब फिर सोचें विचार करें और सीखें कि वे क्या-क्या बातें थी जिनसे मालवीयजी इतने ऊँचे महापुरुष हुए कैसे उन्होंने भारत की आजादी के रास्ते में अपनी संस्कृति का आदर करने के रास्ते में सबको बढ़ाया और यह कि उनके बतलाये रास्ते पर चलकर भारत की सेवा हम किस तरह करें और आगे बढ़ें।

—जवाहरलाल नेहरू

महामना मालवीय

[संस्मरणात्मक सचित्र जीवनी]



लेखक

व्रजमोहन व्यास



भूमिका

मान्नीय लाल बहादुर शास्त्री

[गृह मंत्री, भारत सरकार]



प्रकाशक

साधना सदन

लूकरगंज, इलाहाबाद-१

पाँच रुपये

प्रकाशक
साधना सदन
मुट्ठीगंज इलाहाबाद—१

मुद्रक
लोक भारती मुद्रणालय
इलाहाबाद—१

प्रथम संस्करण
फरवरी १९६१

मूल्य
पाँच रुपये

जवाहरलाल नेहरू

को

जो मानवता को खण्डित करने वाली कटुता के
धुँधले कोहरे से ऊपर हैं
और
सीमातीत विश्व का स्वप्न देखते हैं
उन्हीं के नगरवासी एक अग्रज की यह जीवनी
समर्पित है

सत्यमेव जयते

गृह मंत्री भारत सरकार

२४ दिसम्बर, १९६२

भूमिका

मालवीयजी महाराज भारतीय जागरण के प्रथम नेता थे। हमारे महान् नेताओं एवं गुरुजनों के याद का विधान इसीलिए है कि हम उनके जीवन से अपना जीवन का जोड़ सकें और उनसे प्रकाश और शक्ति ग्रहण कर सकें। मालवीयजी के प्रति श्रद्धा प्रकट करते समय हमें उनका उज्ज्वल चरित्र उनके नैतिक आदर्श उनका धैर्य और भारतीय शास्त्रों एवं परम्पराओं में उनकी अविचल निष्ठा की याद अनायास आ जाती है।

उनमें अनेक गुण थे किन्तु उनके जीवन में दो प्रधान धारायें थीं। पहली भारतीय सनातन धर्म-परम्परा में उनका गहन विश्वास दूसरी उनकी उत्कट देशभक्ति। वास्तव में दोनों ही उनमें मिलकर एक हो गयी थीं—धर्म ही उनका देश था और देश ही उनका धर्म। एक से जुदा दूसरे को वह देख नहीं सकते थे। इसीलिये अनेक समाज-सुधारकों एवं देश-नेताओं से उनका मत न मिलता था परन्तु इस मतभेद के बावजूद नेता की निर्मलता को हृदय में सदा रखने वाला उनका व्यक्तित्व देश को संकट में देख उस पर सर्वस्व निछावर कर देने के लिए आतुर हो उठता था। धर्मविश्वास में निष्ठा रखते हुए भी हृदय के ऐसे कोमल और उदार थे कि विरोधी को भी दुःख और कष्ट में देख नहीं पाते थे। अस्पृश्यता मानते भी वह अस्पृश्य के लिए रोते थे अपने धर्म में अडिग रहते हुए भी

दूसरे धर्मावलम्बियों का आदर एवं सम्मान करते थे। उपदेश देने के स्वभाव के फलस्वरूप वह सेवा के लिए कष्ट सहने को आगे आ जाते थे।

आज जब वे हमारे बीच नहीं हैं तब इस बात को समझना हमारे लिए उचित और लाभप्रद है कि उनका जीवन कैसे बड़ा बना था उनकी शक्ति का स्रोत क्या था वे अन्दर से कैसे थे क्योंकि किसी महापुरुष को ठीक-ठीक समझ और जानकर ही हम उसका अनुकरण-अनुसरण कर सकते हैं। इस दृष्टि से यह पुस्तक अनूठी है। इसके लेखक पं० ब्रजमोहन व्यास का मालवीयजी महाराज एवं उनके परिवार से घनिष्ट और पुराना सम्बन्ध रहा है उन्होंने उनको अनेक अवस्थाओं से गुजरते हुए स्वयं देखा है बहुत कुछ उनके एवं मालवीयजी महाराज के आदर्शों तथा सिद्धान्तों से भी रंगना है वे स्वयं संस्कृत साहित्य तथा भारतीय शिक्षा के अच्छे अध्येता हैं। इस पुस्तक में उन्होंने मालवीयजी के जो शब्दचित्र एवं जीवन रेखायें प्रस्तुत की हैं उन पर उनकी सरल शैली की छाप है इसमें मालवीयजी के जीवनादर्श उनके जीवन की उठान की रेखा खूब उभरी और स्पष्ट हो गयी है। ऐसी पुस्तक की आवश्यकता थी और श्रीदेवजी ने इस पुस्तक को प्रकाशित कर हिन्दी के एक अभाव की पूर्ति की है।

(लाल बहादुर)



जीवन कथा

> दीनानां कल्पवृक्षः स्वगुणफलनतः सज्जनानां कुटुम्बी
> आदर्शः पण्डितानां सुचरितनिकषः शीलवेलासमुद्रः ।
> सत्कर्ता नाभिमानी पुरुषगुणनिधिः अखिलोदारसत्वो
> [illegible] तदीयस्वचिरगुणतया जीवताज्जीव ॥

भावार्थ —महामनाजी दीन दुखियों के लिए कल्पवृक्ष थे। अपने गुणों के भार से नत थे जैसा कालिदास ने कहा है अर्थात् नम्रतास्वरूप 'फलोद्गमे फल से लद जाने पर वृक्ष झुक जाते हैं या जैसा 'अनीस' ने कहा है 'जो साहबे-जौहर हैं, झुके रहते हैं अक्सर'। वे पण्डितों के लिए आदर्श थे और सच्चरित्रता क्या होती है उसके परखने की कसौटी थे। चरित्र-संगठन उनका सर्व प्रथम ध्येय था। वे ऐसे समुद्र थे जिसके किनारे शील थे। सत्कर्म के करनेवाले, निरभिमान, चतुर, उदार पुरुषों में जो गुण होने चाहिए उनके वे भाण्डार थे। अपने गुणों के उत्कर्ष से वे अभी तक जीवित हैं।

इन संस्मरणों में उक्त गुणों के आपको अनेक उदाहरण मिलेंगे मालवीयजी के संस्मरणों की गहराई तक पहुँचने के लिए उनका एवं उनके परिवार का परिचय नितान्त आवश्यक है। चतुर कला-कार 'शबीह' बनाने के पहिले फलक पर उसकी पृष्ठभूमि एवं वातावरण को तयार करता है तभी चित्र सुन्दर बनता है। पारिवारिक परिचय संस्मरणों की पृष्ठभूमि है जो संस्मरण-नायक का स्वरूप खड़ा कर देता है।

मालवीयजी महाराज के पूर्वज मालवा से 'रस गगन ति

प्रमाण वर्ष प्रयाग आये। उसी समय मालव के पूर्वज भी वहाँ से प्रयाग आये। रस=६ गगन=० तिथि=१५ इस प्रकार तिथियों की वामागति होने के कारण संवत् १५०६ हुआ। उस समय तत्कालीन शासक के धर्मसम्बन्धी अत्याचारों से दुःखित होकर थोड़े से श्रीगौड़ ब्राह्मण मालवा छोड़कर भाग निकले और यत्र तत्र बस गये और 'मालवीय' कहलाने लगे। अर्थात् मालव से आए हुए। कालक्रमानुसार यहाँ के मालवीयों का मालव प्रदेश के अपने ही भाई-बिरादरी के श्रीगौड़ ब्राह्मणों से कोई सम्पर्क न रह गया।

पुरातत्त्व-इतिहास के विद्वान् श्री काशीप्रसाद जायसवाल अपनी पुस्तक 'राज्यतंत्र' में लिखते हैं

"मालव नाम का अवशिष्ट अब तक उस प्रान्त के निवासी ब्राह्मणों में मिलता है जो 'मालवी' कहलाते हैं। अब इस शब्द को संस्कृत रूप दे दिया गया है और वह मालवीय बना लिया गया है। ये मालवीय ब्राह्मण गौर वर्ण के और सुन्दर होते हैं विशेष रूप से बुद्धिमान् होते हैं ... ये लोग बढ़ते-बढ़ते इलाहाबाद तक आकर बस गये हैं और प्रायः वहीं तथा उसके आस-पास पाये जाते हैं।"

महामनाजी भरद्वाज गोत्रीय चतुर्वेदी थे परन्तु अपने को मालवीय लिखते थे। इनके पितामह पण्डित प्रेमधर चतुर्वेदी एक धर्मनिष्ठ सदाचारी श्रीकृष्णपन्थसेवी बड़े ही सात्त्विक पुरुष थे। इनके पिता पण्डित ब्रजनाथ चतुर्वेदी परम भागवत वैष्णव एवं सद्गृहस्थ थे। उनको भगवान् श्रीकृष्ण का इष्ट था। अपना जीवन उन्हीं की सेवा एवं कथा वार्ता में व्यतीत करते थे। भारतीय शास्त्रकारों ने 'अन्वय' (उज्ज्वल वंश) पर बहुत जोर दिया है। कुमारदास ने तो यहाँ तक कह दिया कि

'[illegible] पर [illegible] गुणैर्व्यासमयवर्जित ।
तस्मादन्वयि [illegible] कः पारलौकिकम् ॥

(चाहे मनुष्य गुणी भी हो परन्तु यदि वह शुद्ध वंश का नहीं है तो उसे कोई ऊँचा पद न देना चाहिये। कौन ऐसा (मूर्ख) होगा जो पैर के गहने को चाहे वह रत्नजटित ही क्यों न हो सर पर चढ़ावेगा ?)

महामनाजी की माता सौभाग्यवती मूनादेवी एक पति-परायणा सती साध्वी गृहणी थीं। यथा पूतम्मन्यो मिथिरपि पवित्रस्य महम जिस प्रकार पयिपता के मारुतर, महर्षि वशिष्ठ अरुन्धती के सहधर्मिणी होने से अपने को पवित्रतर मानते थे उसी प्रकार पुण्यात्मा पण्डित व्रजनाथजी मूनादेवी ऐसी पत्नी को पाकर अपने को कृतार्थ समझते थे। ऐसे धर्मनिष्ठ माता पिता की सन्तान महामानजी थे। इस उज्ज्वल वंश परम्परा के पुनीत वातावरण में पौष कृष्ण ८ सम्वत् १९१८ तदनुसार २५ दिसम्बर सन् १८६१ को महामानजी का जन्म हुआ। पुत्रोत्पत्ति से माता पिता की बाछें खिल गयीं। दोनों इस प्रसन्न हुए जैसे उमापुत्रो तारजन्मना यथा यथा जयन्तेन शचीपुरन्दरौ—जैसे पार्वती और शिव कार्तिकेय के जन्म से अथवा शची और इन्द्र जयन्त के जन्म से प्रसन्न हुए थे। जाहिर सी बात है ऐसे धर्मनिष्ठ, सन्तगुण सम्पन्न ब्राह्मण के घर में लक्ष्मी के लिये कोई स्थान नहीं था। लक्ष्मी तो ऐसे बुद्धिजीवी परिवार से असन्तुष्ट रहती है और स्वयं उनसे दूर रहती है। कहा भी है

लक्ष्मी क्षीरोदनिधिर्वासो भर्ता श्रीशोऽपि यस्य।
विप्रस्तीर्णो भार्गवेण सा दूरतरं पलायते॥

(लक्ष्मी क्षीरोदनिधि समुद्र की अत्र जन्तु है। यह कथन सदन की बात नहा है सत्य है। अगस्त्य द्वारा (समुद्र—महासागर—बुद्धि मात्र) से डरती है और दूर भागती है।

होनहार बिरवान के होत चीकने पात। बचपन ही से उनो

प्रमाण वर्ष प्रयाग आये । उसी समय लेखक के पूर्वज भी वहाँ से प्रयाग आये । रस=६ गगन=० तिथि=१५ इस प्रकार तिथियों की वक्रगति होने के कारण संवत् १५०६ हुआ । उस समय तत्का लीन शासक के धर्मसम्बन्धी अत्याचारों से दुखित होकर थोड़े से श्रीगौड़ ब्राह्मण मालवा छोड़कर भाग निकले और यत्र तत्र बस गये और मालवीय कहलाने लगे । अर्थात् मालव से भाए हुए । कालक्रमानुसार यहाँ के मालवीयों का मालव प्रदेश के अपने ही भाई-बिरादरी के श्रीगौड़ ब्राह्मणों से कोई सम्पर्क न रह गया ।

पुरातत्त्व-इतिहास के विद्वान् श्री काशीप्रसाद जायसवाल अपनी पुस्तक 'राज्यतंत्र' में लिखते हैं

मालव नाम का अवशिष्ट अब तक उस प्रान्त के निवासी ब्राह्मणों में मिलता है जो मालवी कहलाते हैं । अब इस शब्द को संस्कृत रूप दे दिया गया है और वह मालवीय बना लिया गया है । वे मालवीय ब्राह्मण गौर वर्ण के और सुन्दर होते हैं विशेष रूप से बुद्धिमान् होते हैं ये लोग बढ़ते-बढ़ते इलाहाबाद तक आकर बस गये हैं और प्रायः वहीं तथा उसके आस-पास पाय जा[ते] हैं ।

महामनाजी मरजाद गोभीय चतुर्वेदी थे परन्तु अपने को माल वीय लिखते थे । इनके पितामह पण्डित प्रेमधर चतुर्वेदी एक धर्म-निष्ठ सदाचारी श्रीकृष्णपदसेवी बड़े ही सात्त्विक पुरुष थे । इनके पिता पण्डित ब्रजनाथ चतुर्वेदी परम भागवत वैष्णव एवं सद् गृहस्थ थे । उनको भगवान् श्रीकृष्ण का इष्ट था । अपना जीवन उन्हीं की सेवा एवं कथा वार्ता में व्यतीत करते थे । भारतीय शास्त्रों में 'अन्वय उज्ज्वल वंश पर बहुत जोर दिया है । कुमार-दास ने तो यहाँ तक कह दिया कि

'कोर्ध्व वा नन्वमीपी पुण्यीप्यमयवर्जितः ।
रत्नाद्यन्यदि दुर्मीन भूमि द वास्यपदमप् ॥

(चाहे मनुष्य गुणी भी हो परन्तु यदि वह कुल वंश का नहीं है तो उसे कोई ऊँचा पद न देना चाहिये। कौन ऐसा (मूर्ख) होगा जो पैर के गहने को चाहे वह रत्नजटित ही क्यों न हो सर पर चढ़ायेगा ?)

महामनाजी की माता सौभाग्यवती मूनादेवी एक पति परायणा सती साध्वी गृहणी थीं। 'यथा पुण्यमयो निधिरपि पवित्रस्य महत्' जिस प्रकार पवित्रता के भाण्डार महर्षि वशिष्ठ अरुन्धती के सहधर्मिणी होने से अपने को पवित्रतर मानते थे उसी प्रकार पुण्यात्मा पण्डित ब्रजनाथजी मूनादेवी ऐसी पत्नी को प्राप्त करने को कृतार्थ समझते थे। ऐसे धर्मनिष्ठ माता-पिता की सन्तान महामनाजी थे। ऐसे उज्ज्वल वंश परम्परा व पुनीत वातावरण में पौष कृष्ण ८ संवत्सर १९१८ तदनुसार २५ दिसम्बर सन् १८६१ को महामनाजी का जन्म हुआ। पुत्रोत्पत्ति से माता पिता की बाछें खिल गयीं। दोनों ऐसे प्रसन्न हुए जैसे 'उमासुतेन' वरजन्मना यथा यथा जयन्तेन शचीपुरन्दरौ'—जैसे पार्वती और शिव कार्तिकेय के जन्म से अथवा शची और इन्द्र जयन्त के जन्म से प्रसन्न हुए थे। जाहिर सी बात है ऐसे धर्मनिष्ठ, अल्पसन्तुष्ट सदाचारी ब्राह्मण के घर में लक्ष्मी के लिये कोई स्थान नहीं था। लक्ष्मी तो ऐसे बुद्धि जीवी परिवार से असन्तुष्ट रहती है और स्वयं उनसे दूर रहती है। कहा भी है

लक्ष्मी क्षारोदनिधेर्जाता जाता क्षारोदधेः तथा।
लिप्सनी धीवरेभ्य ता दूरादूरं पलायते ॥

(लक्ष्मी क्षारोदधि समुद्र की जल जन्तु है। यह कोई बड़ी अचरज की बात नहीं है स्पष्ट है। अतः वह धीवर (इसका —क्षार=बुद्धि मान्) से डरती है और दूर भागती है।)

होनहार बिरवान के होत चीकने पात। बचपन ही से उनके

माता-पिता को ऐसा लगता था कि यह बालक होनहार होगा। पूरा परिवार उनपर न्योछावर रहता था। गौर वर्ण चौड़ा ललाट, तुकीली नाक गोल मटोल शरीर और इन सबके ऊपर अनुपम सौन्दर्य। जिन लोगों ने उन्हें युवावस्था में देखा है इसकी सहज में कल्पना कर सकते हैं। दिन भर उन्हें एक गोद से दूसरी गोद में जाते बीतता था। सहसा माघ का एक श्लोक याद आ गया। उसके लिखने का विशेष कारण यह भी है कि उनके देहावसान के थोड़े ही समय पहिले काशी में इस श्लोक को जब हमने उनके सामने पढ़ा तो वे फड़क उठे और हमसे दोबारा पढ़ने के लिये कहा। महामनाजी को बच्चे बहुत प्रिय थे। कैसे न फड़क उठते। सूर्योदय का वर्णन है —

उदयशिखरिशृंगप्रांगणेष्वेष रिंगन्
सकमलमुखहासं वीक्षितः पद्मिनीभिः।
विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः
परिपतति दिवोऽङ्के हेलया बालसूर्यः॥

(भावार्थ—उदयाचल के शिखर के आँगन में रेंगता हुआ कमलरूपी मुख जिसका हास है ऐसी कमलिनियाँ जिसे देख रही हैं और जिसे पक्षिगण कलरव से बुला रहे हैं ऐसा बालक सूर्य अपने मुलायम हाथों को आगे पसारकर, हुलसता हुआ अन्तरिक्ष रूपी माता की गोद में गिर पड़ता है।)

बालक मदनमोहन को बड़े भाइयों और एक बड़ी बहिन की देख रेख में घर के आँगन में घुटनों के बल गिरते पड़ते चलते रहते थे। वे बचपन ही से नटखट थे। ऐसे उपद्रवी बालक को कोई दिन भर कब तक सँभाल सकता है? एक दिन फिसलते-फिसलते सीढ़ी पर से छज्जे पर चढ़ गये छज्जे पर कोई रोक (रेलिंग) नहीं थी। वहाँ खड़े होने का प्रयत्न किया तो छज्जे से आँगन में गिर पड़े। यद्यपि

छज्जा बहुत ऊँचा नहीं था—आँगन से कोई बारह-तेरह फुट रहा होगा। इतने छोटे बालक के लिए उतना ही बहुत था। गिरते ही बेहोश हो गये। मूनादेवी (माँ) रसोईघर में व्यस्त थीं। पिता सामने की कोठरी में भगवान् श्रीकृष्ण में तल्लीन आँख मूँद कर जप कर रहे थे। मूनादेवी दौड़ कर रसोई से निकल आईं और चिल्लाईं 'तुम्हारा लड़का छज्जे पर से गिर पड़ा है। तुम बैठे जप कर रहे हो।' ब्रजनाथजी ने आचमन कर भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम किया और बाहर निकल कर बोले 'घबड़ाओ मत सब ठीक हो जायगा।' इतना कहकर अपने कमण्डलु से थोड़ा-सा जल लेकर बेहोश बालक के मुँह पर छिड़क दिया। उसकी बेहोशी दूर हो गयी और वह तत्काल उठकर खेलने के लिए मचलने लगा। मूनादेवी तो छटपटा रही थीं पर ब्रजनाथजी के चेहरे पर उद्विग्नता का कोई चिह्न नहीं थे। बस वे जानते रहे हों कि भगवान् श्रीकृष्ण के रहते उनका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। और वे फिर जप करने में मग्न हो गये।

महामनाजी का पैतृक मकान प्रयाग के मोहल्ला अहियापुर में भारती भवन से संलग्न कूँचा सावलदास के भीतर है। मकान छोटा और साधारण-सा है। यहीं एक तीन कमरे वाले कोठे में मालवीयजी का जन्म हुआ। भीतरों को देखकर सहसा कारागार में देवकी के गर्भ से मदनमोहन के जन्म की याद आ जाती है। छोटा-सा आँगन, तीन ओर कोठे और कोठरियाँ। सामने के कोठे में श्रीकृष्ण भगवान् का मन्दिर और ऊपर के मंजिल में रहने की कोठरियाँ। इन्हीं में पूरा परिवार गुजर-बसर कर रहता था। म्युनिसिपैलिटी के लिए यह गौरव की बात है कि अब उसने मोहल्ला अहियापुर का नाम मालवीय नगर कर दिया है। परिवार में कोई विशेष आर्थिक संकट नहीं था परन्तु [illegible] तो था ही नहीं। फिर भी जो सुख और शान्ति ब्रजनाथजी के परिवार में थी वह पूँजीपतियों के महलों

में नहीं थी। कारण सम्पूर्ण परिवार अल्प-सन्तुष्ट और सदाचारी था। जीविका का साधन केवल व्रजनाथजी की कथा थी जिससे भगवान् श्रीकृष्ण भले-बुरे पूरा कर देते थे। व्रजनाथजी बाँसुरी बजाकर कथा बहुत अच्छी कहते थे। अपनी बाँसुरी वे स्वयं बनाते थे। उनकी कथा निकटस्थ भोलानाथ महादेव पर होती थी जिसे लोग बड़े चाव से सुनते थे। कथा पर जो कुछ चढ़ता था उसे वे अपनी धर्मपत्नी भूनादेवी को दे देते थे। उसीसे वे गृहस्थी का पालन करती थीं। वर्ष में केवल एक बार वे परदेश भी कथा कहने के लिए जाते थे। वहाँ उनको अच्छी प्राप्ति हो जाती थी। कथा पर जो कुछ द्रव्य वस्त्र इत्यादिक चढ़ता था उस सब का सब लाकर पूर्वक्रमानुसार भूनादेवी को दे देते थे और कह देते थे कि इन सब को साल भर चलाना। सन् १८५७ की बात है। महामनाजी के जन्म के चार वर्ष पहिले की। व्रजनाथजी हर साल की तरह कथा बाँचने परदेश गए। तब तक सन् ५७ का विस्फोट नहीं हुआ था। जब वे प्रयाग लौटे तो विद्रोहाग्नि भड़क चुकी थी और ब्रिटिश साम्राज्य का शासन चक्र निर्दयता से चल रहा था। जब वे चौक में पहुँचे तो इन्होंने देखा कि पसरहट्ट के सामने नीम के पेड़ों में आदमियों की लाशें लटक रही हैं और संगीन लिए गश्त गोरे टहल रहे हैं। व्रजनाथजी के हाथ में गोल के भीतर तानपुरा था। पहले तो वे हीं, तानपुरा लिए मकान घर की ओर भागे। गोरों ने उनको पकड़ लिया। समझा कि गोल के भीतर कोई अस्त्र है। व्रजनाथजी ने बहुत अनुनय विनय किया पर न गोरे इनकी बात समझ पाते थे और न ये गोरों की। इन्होंने इंगित से बताया कि यह गाने के साथ बजाया जाता है तो गोरों को बड़ा कुतूहल हुआ और उन्होंने इनसे गाने और बजाने के लिए कहा। व्रजनाथजी कर ही क्या सकते थे? भगवान् कृष्णचन्द्र का स्मरण कर तानपूरा छेड़ा और एक भजन गाया। कैसा भयानक दृश्य रहा होगा वह! नीम पर

लाशें लटक रही हैं, सामने रक्त-पिपासु गोरे मंडरा रहे हैं, बीच में ब्रजनाथजी तानपुरे पर आँख मूँद कर 'नाथ कैसे गज के फंद छुड़ाये' गा रहे हैं और जीवन और मृत्यु के बीच में रस्साकशी हो रही है। जब गोरों ने समझ लिया कि यह तो एक निरीह और निरपराध व्यक्ति है तो उन्होंने इनको छोड़ ही नहीं दिया बल्कि दो गोरे इन्हें घर तक पहुँचा गए।

महामनाजी के बचपन की बातें करते-करते मैं उनके जन्म के पहिले की बातें करने लग गया परन्तु उक्त घटना उनके पिता के साथ हुई थी और उससे परिवार की आर्थिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता था इसलिए बताना उचित जान पड़ा।

कालक्रमानुसार बालक मदनमोहन का अक्षरारम्भ धामदसर पाठशाला में हुआ। थोड़े ही समय बाद इस पाठशाला का नाम 'श्रीधर्मज्ञानोपदेश पाठशाला' हो गया और यही नाम अब तक चला और यही नाम अब तक चला आ रहा है। उच्चारण की सुविधा के लिए लोग इसे हरदेव गुरु की पाठशाला कहते हैं क्योंकि इसके संस्थापक एवं संचालक एक विरक्त संन्यासी हरदेवजी थे। यह पाठशाला मुहल्ले ही में महामना जी के मकान के सन्निकट थी जहाँ विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा पढ़ायी जाती थी। हरदेवजी एक कर्मनिष्ठ निस्पृह एवं महान् आत्मा के व्यक्ति थे और छात्रों पर बड़ा शासन रखते थे। उनका विशेष ध्यान छात्र के आचार विचार, वेशभूषा एवं चरित्र-संगठन पर रहता था। इनके लिए उन्होंने विस्तार से कठिन नियम बना रखे थे जिनका कड़ाई से पालन कराते थे। वे दण्डनीति के अनुयायी थे। पाठशाला में, एक तख्ती पर बड़े-बड़े अक्षरों में यह पद स्वयं बनाकर टाँग दिया था

जब दुख में मन धीर धरै न आवै तुच्छ
तब न पसार सुख बढ़े सुख सब में।

हाथ बाँध बाँध सटकाय मारे बेंतन के
बावली बताई तुम्हें सेंहौ भले ढंग में।

मैंने उक्त कविता का पूर्वार्ध ही सुना था इस लिए उतना ही लग सका। छात्रों को जो दण्ड देते थे उसे पहिले एक कागज पर लिखकर पाठशाला में टँगवा देते थे। पाठशाला के पुराने कागजों के उलट-पलट करने में मुझे कई कागज इस प्रकार के मिले। एक कागज पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा था शिवसहाय (मुहल्ले के एक छात्र का नाम) आज मूलकँ धोती पहनकर और बिना चन्दन लगाये पाठशाला में आया है इसलिए यह जूता उतारने की जगह पर एक घंटे बैठे। कमर में फेंटा बाँधकर धोती पहिनने को वे मूलकँ धोती कहते थे। धोती को चुनिया कर पहनना और सामने लटकते हुए चुनन को उठाकर कमर में खोंस लेना 'पण्डिताऊ' धोती कहलाती थी। मस्तक में तिलक लगाने पर बहुत जोर देते थे। बिना तिलक लगाये छात्र विद्यार्थी पकड़ा और उसे जूते के पास बैठने का दण्ड मिलना अनिवार्य था। दण्ड की अवधि समाप्त होने पर उसके मस्तक पर चन्दन लगाया जाता था और 'मूलकँ' धोती बदलकर तत्काल 'पण्डिताऊ' ढंग से पहिनायी जाती थी। किस त्रुटि के लिए क्या दण्ड होगा पहिले से निर्धारित रहता था। मेरे पितामह पूज्यपाद पण्डित लक्ष्मीनारायण व्यास जी जो स्वयं मनसा वाचा कर्मणा पवित्रात्मा थे हरदेवजी से बहुत पटती थी। उनसे मुझे हरदेवजी के सम्बन्ध में तथा इस पाठशाला की व्यवस्था की बहुत कुछ जानकारी प्राप्त हुई।

पण्डित हरदेवजी सन्ध्योपासन पर बहुत जोर देते थे। बहुधा छात्रों से अपने सामने पाठशाला ही में सन्ध्योपासन कराते थे। उनका यह नित्य का नियम था कि सन्ध्योपासन से निवृत्त होकर भिक्षा के लिए निकल जाते थे और मोहल्ले में किसी एक घर के

सामने जाकर एक बार भिक्षा के लिए कहते थे। उसने जो कुछ दिया उसे लेकर चले आते थे। यदि उसने कुछ न दिया तो खाली हाथ पाठशाला लौट आते थे। किसी दूसरे घर नहीं जाते थे। उस दिन उनका निराहार होता था। कई बार ऐसा हुआ है कि उनको दो-दो तीन-तीन दिन निराहार रहना पड़ा है। परन्तु जब उनकी ख्याति बढ़ी तो लोग उनकी प्रतीक्षा करते रहते थे। एक दिन नगर के एक धनाढ्य पुरुष थाली में भोजन की सामग्री लाये। पाठशाला उस समय लगी थी। हरदेवजी ने उनसे पूछा — आप श्रद्धा से यह सब लाये हैं या लोगों की देखा देखी? जब उन्होंने कहा कि श्रद्धा से लाये हैं तो हरदेवजी ने कहा कि यदि आप इस थाली को लेकर धूप में आध घंटे खड़े रहें तो मैं समझूं कि आपकी श्रद्धा है। वे खड़े रहे। आध घंटे बाद उस थाली से जितनी उस दिन के लिये सामग्री आवश्यक थी उसे लेकर सब लौटा दिया। हरदेवजी हाथ से पैसा कभी नहीं छूते थे। यदि भोजन की सामग्री के साथ कुछ दक्षिणा भी आती तो उसे लौटा देना पड़ता था। ऐसे कठिन तपस्वी की देख रेख और निरीक्षण में बालक मदनमोहन का प्रारंभिक विद्याध्ययन हुआ जिसकी अमिट छाप उनके जीवन पर सदा बनी रही।

जब धर्मज्ञानोपदेश पाठशाला में बालक मदनमोहन का विद्याध्ययन समाप्त हो चुका तो उन्हें किसी स्कूल में भरती कराने का प्रश्न परिवार में उठा। धर्मज्ञानोपदेश पाठशाला में तो निःशुल्क पढ़ने को मिलता था परन्तु स्कूल में तो फीस देनी होगी। यह एक कठिन समस्या था। पिता ब्रजनाथ चौबेजी की आकाशवृत्ति थी। भैरवनाथ महादेव पर कथा कहने में जो थोड़ा बहुत मिल जाता था वे उसी से सन्तुष्ट रहते थे पर उससे गृहस्थी का पूरा नहीं पड़ता था। यदि धनी पड़ोसियों से मांगते तो फीस के लिए रुपया मिल जाना कोई बड़ी बात न था। परन्तु स्वाभिमानी ब्रजनाथजी को

किसी के आगे हाथ पसारना सह्य न था। जीवन के ऐसे ही छोटे छोटे अवसरों पर मनुष्य की परीक्षा होती है।

भीष्म पितामह कहते हैं कि जब मकरध्वज की माता ने लक्ष्मी से पूछा कि तुम कहाँ रहती हो और कहाँ नहीं रहती तो पहिले कहती है कि मैं उन स्थानों में नहीं रहती जहाँ

मनसापि न प्रार्थयते न किञ्चित्
यस्य स्वभावोऽपहृतान्तरात्मा ।
तेष्वल्पसन्तोषपरेषु नित्यं
नरेषु नाहं निवसामि देवि ॥

(हे देवि ! जो अपने मन में किसी चीज की प्रार्थना नहीं करता और जो थोड़े ही में सन्तोष कर लेता है ऐसे पुरुष के समीप में नहीं रहती ।)

मालवीयजी में ये दोनों ही गुण (लक्ष्मी के हिसाब से अवगुण) थे तो भला लक्ष्मी इनके पास कैसे आ सकती थी ?

यह समस्या कैसे सुलझी ? इस सम्बन्ध में एक छोटी-सी घटना का वर्णन करूँगा ।

एक दिन हिंदू विश्वविद्यालय में ही आकाशवाणी ने मालवीय जी सम्बन्धी एक वार्ता रेकार्ड करने का आयोजन किया । यह वार्ता प्रश्न और उत्तर के रूप में थी । यह आयोजन विश्वविद्यालय में स्थित मेरे ही बंगले पर हुआ । इस आयोजन में पण्डित सीताराम चतुर्वेदी पण्डित त्रिलोचन पन्त गोंडा जी का एक प्रमुख भक्त और मैं सम्मिलित हुए । सीतारामजी प्रश्न करते थे और हम लोग बारी बारी से उत्तर देते थे । सबसे पहिले मुझी से प्रश्न किये गये । पहिला प्रश्न था कि मैं कब से मालवीयजी को जानता हूँ । मेरे इस उत्तर पर कि मेरा उनका अतिनिकट सम्पर्क पचास वर्ष से ऊपर का है दूसरा प्रश्न बड़ा सारगर्भित हुआ । मुझसे पूछा गया

कि मालवीयजी का व्यवहार अपने परिवारवालों के साथ कैसा था क्योंकि प्रायः ऐसा देखा गया है कि बड़े लोगों का व्यवहार बाहर के लोगों के साथ तो अच्छा रहता है परन्तु घरवालों के साथ उदासीन और कभी-कभी कठोर होता है। मैंने कहा कि इस प्रश्न का ठीक ठीक उत्तर मुझसे अच्छा और कोई नहीं दे सकता। कारण मेरे एक दर्जन के लगभग पी० आई० डी० उनके घर में हैं और वे मेरी बहिनें और मेरे परिवार की लड़कियाँ हैं जो उनके परिवार में ब्याही हैं जिससे उनके परिवार का कच्चा चिट्ठा मुझे मालूम होता रहता है। मेरी छोटी बहिन ही महामनाजी के पुत्र से ब्याही है। महामनाजी चतुर तो थे ही उन्होंने भी अपना एक बहुत बड़ा पी० आई० डी० मेरे घर में रख दिया। वह उनकी सगी नातिन है जो मेरे ज्येष्ठ पुत्र की वधू है। महामनाजी का व्यवहार अपने परिवार के लोगों के साथ अतीव स्निग्ध था।

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि।

स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः॥

(अपनी प्रजा को सन्मार्ग में लगाने, उनकी रक्षा करने, उनके भरण-पोषण करने के कारण वे ही मुख्य पिता थे। पिता कहलाने वाले अन्य लोग तो केवल जन्म देने भर के पिता थे।) कालिदास का उक्त वाक्य महामनाजी पर अक्षरशः लागू होता है।

तीसरा प्रश्न था—इतना बड़ा और धार्मिक स्तम्भों पर खड़ा हुआ यह विश्वविद्यालय केवल एक व्यक्ति ने किस प्रेरणा से स्थापित कर लिया? इसी प्रश्न के उत्तर में यह स्तूप की पीठवाली कुर्सी का समाधान निहित है। मैंने काशी विश्वविद्यालय की स्थापना करने की प्रेरणा [illegible] से मिली है और कोई बात नहीं भी गड़गई म है। चतुर्दिक्षा म.[illegible] आज जो करने लग गये। इस स्पष्ट [illegible]

मैंने कहा—

यूँ कि सागर उड़ेलता हूँ मैं
जाम को सील भेजता हूँ मैं,
दुख समझकर हो फिर कहता हूँ !
अपने ज़ख्मों से खेलता हूँ मैं ।

स्पष्टीकरण चाहते हैं तो कलेजा थाम कर सुनिये ।

ब्रजनाथजी की याचकी वृत्ति और वह भी बहुत थोड़ी होने के कारण बालक मदन को फीस की कोई व्यवस्था नहीं हो सकी । परन्तु माता-पिता हताश नहीं हुए । माता मूनादेवी के हाथ में कड़े थे । पड़ोस में एक पूंजीपति लाला गयाप्रसाद की कोठी थी । वहाँ की स्त्रियों से मूनादेवी का मेल-जोल था । मूनादेवी अपने कड़े प्रति मास जब फीस देनी होती थी वहाँ गिरवी रख देती थीं और महीने के भीतर जब ब्रजनाथजी को कथा-वार्ता में कुछ मिल जाता था तो उन कड़ों को छुड़ा लेती थीं । इस प्रकार प्रतिमास वह कड़ा विवाह में नचने के रुपये की तरह इस घर से उस घर और उस घर से इस घर आता जाता रहता था और तब बालक मदनमोहन की फीस दी जाती थी । वाह रे विधि की विडम्बना और धिक् है लक्ष्मी के इस 'कौस्तुभमणेः मलिनप्युर्यम्' को । बालक मदनमोहन के मातृ एवं पितृभक्त सुकोमल हृदय में 'अन्तःप्रसूमदहन ज्वलनमिव' (भीतर ही भीतर जलता हुआ) यह शल्य की भाँति अवश्य चुभता रहा होगा । आगे चलकर इसी बालक मदनमोहन ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का संस्थापन एवं परिवर्धन किया जहाँ सैकड़ों गरीब विद्यार्थी प्रतिवर्ष निःशुल्क शिक्षा पाते हैं । महामनाजी का एक सरल स्वभाव भृत्य था । उसका नाम था बलिहारी । बहुत से गरीब विद्यार्थी कम जाते थे जिनकी महामना की तक जाने की हिम्मत नहीं पड़ती थी यद्यपि वे सबको सुलभ थे । वे बलिहारी से अपना दुखड़ा कहते थे और बलिहारी महा

ममाजी से कह सुनकर उनकी फीस माफ करा देता था। बलिहारी है उस बलिहारी की। इस प्रकार कोई भी विद्यार्थी केवल अर्थाभाव के कारण वहाँ से कभी शिक्षा से विमुख नहीं लौटा।

सरस्वती ने लक्ष्मी से कौड़ी-कौड़ी बदला चुका लिया।

अब तो धर्मज्ञानोपदेश पाठशाला में प्रत्येक विषय की शास्त्री परीक्षा तक की शिक्षा दी जाती है पर उस समय जब बालक मदन मोहन ने यहाँ विद्यारम्भ किया था केवल नाम मात्र की विद्या पढ़ाई जाती थी। हरदेवजी ने उसका नाम ही रखा था श्रीमद्भागवतपाठशाला। चरित्र संगठन आचार विचार सन्ध्योपासन इत्यादि की उचित शिक्षा होती थी। प्रतिभावान बालक मदनमोहन को इसे आत्मसात् करने में कितना समय लगता! उनके तो घर का वातावरण ही ऐसा था। थोड़े ही समय में उनके पिता ने उनको 'हिन्दू धर्म प्रवर्धिनी सभा' की पाठशाला में भेज दिया। उस समय बालक मदनमोहन की उम्र केवल सात वर्ष की थी। पाठशाला के प्रबन्धक पण्डित देवकीनन्दनजी इस होनहार एवं प्रतिभावान बालक से इतने प्रसन्न थे कि वे उसे माघ मेले में ले जाकर वहाँ उससे व्याख्यान दिलवाते थे। आँख बन्द कर यह चित्र हृदय पटल पर खींचने लायक है। माघ मेले की अपार भीड़ में एक सात वर्ष का सुन्दर बालक धड़ल्ले से व्याख्यान दे रहा है। बालक मदनमोहन के व्याख्यान देने की दीक्षा यहीं से आरम्भ होती है। पुण्यसलिला भागीरथी के आशीर्वाद से 'यं ब्रह्माणमियं देवी वाग् वश्येवानुवर्तते' (भवभूति) इस बालक के पीछे-पीछे वाणी पतिपरायणा स्त्री की भाँति चलने लगी। आगे चलकर सारगर्भित व्याख्यान देने की उनकी शक्ति इतनी बढ़ी कि सम्पूर्ण भारत में उनकी टक्कर के इने-गिने व्यक्ति थे। परन्तु वाक्माधुर्य में उन्हें कोई नहीं पाता था।

यज्ञोपवीत

ब्रजनाथजी ने अपने पुत्र मदनमोहन का यज्ञोपवीत संस्कार नौ वर्ष की अवस्था में कर दिया। इस संस्कार में उनके भगवद्भक्त पिता स्वयं आचार्य थे। उन्होंने ही बालक को गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी। प्रथा के अनुसार मदनमोहन ने कौपीन पहिन मूंज की मेखला धारण कर मृगचर्म की बनी हुई माला गले में डाल हाथ में पलाशदण्ड ले लिया और हाथ में झोली लटकाकर माता के सम्मुख नतमस्तक बोले 'भवति भिक्षां में देहि' (आप मुझे भिक्षा दें) माता की आंखें डबडबा आईं और उन्होंने बालक का पात्र भिक्षा से भर दिया। उस समय यह कौन जान सकता था कि यही बालक भारत माता के जीवन भर, उसी की सन्तान के लिए दर दर भीख मांगता फिरेगा और भारत माता उसकी झोली उसी प्रकार भरेगी जैसे उसकी माता ने अपने सन्तान के यज्ञोपवीत संस्कार के दिन भरी थी। जिसमें कल्पना शक्ति हो वह बालक मदनमोहन की छवि

> "भस्मस्तोमपवित्रलाञ्छनमुरो धत्ते त्वचं रौरवीं ।
> मौञ्ज्या मेखलया नियमिततपोवासश्च माञ्जिष्ठकम् ॥

(पवित्र भस्म से लिप्त वक्ष मृगचर्म धारण किये और मूंज के बने कटिसूत्र से कौपीन को बांधे और मजीठ से रंगा वस्त्र पहिने) का स्मरण कर अपने अन्तरात्मा को पवित्र कर ले।

(नोट —यह ब्रह्मचारी लव का वर्णन है। वे क्षत्रिय थे। अन्तर इतना ही है कि क्षत्रिय ब्रह्मचारी मूर्वा घास की बनी मेखला पहिनता है और ब्राह्मण ब्रह्मचारी मूंज की बनी।)

बालक मदनमोहन अब ब्रह्मचारी हो गया। सोने से सुहागा पड़ गया और रूप निखर आया।

धार्मिक प्रवृत्ति तो उनकी पहिले ही से थी। परन्तु सन्ध्योपासन एवं गायत्री मंत्र जपने की ओर उन्हें विशेष अनुराग था। वे स्वयं नित्य सन्ध्योपासन तर्पण इत्यादि तो करते ही थे सबों को इसका उपदेश भी करते थे। कई बार तो उन्होंने मुझसे ही पूछा कि नित्य सन्ध्योपासन तो करते हो न? बचपन में एक बार इन्हें गायत्री मंत्र जपने की धुन सवार हुई। वे चुपचाप घर से निकल जाते थे और किसी नितान्त एकान्त स्थान पर आसन जमा कर जप किया करते थे। जब इनकी माता को पता चला तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई कि यह लड़का कहीं साधु-फकीर न हो जाय। यह चिन्ता उनकी निर्मूल थी। परन्तु माता का हृदय और फिर पुरस्त्रीणां चेतः कुसुमसुकुमारं हि भवति स्त्रियों का हृदय पुष्प की तरह कोमल होता है। एक स्थान पर मालवीय जी स्वयं लिखते हैं— 'धार्मिक भावों की ओर मेरा झुकाव लड़कपन ही से था। स्कूल जाने के पहिले मैं रोज हनुमानजी का दर्शन करने जाता था और यह श्लोक पढ़ता था —

मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि॥

सोमनाथ महादेव के पास मुरलीधर चिम्मन लाल मोहिवाल के चबूतरे पर पिताजी कथा बाँचने जाते थे। मुट्ठीगंज के मन्दिर में भी वह कथा कहने जाया करते थे। मैं दोनों जगह कथायें सुनने के लिए नित्य जाता था और उनकी चौकी के पास बैठ कर बड़े ध्यान से कथा सुनता था। पिताजी ने एक दिन कहा—तू बड़ा भक्त है। यह सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई थी।

"मैं गायत्री का जप बहुत किया करता था। एक बार घरवालों को शंका हुई कि मैं साधु न हो जाऊं और इसलिए मेरी निगरानी रखने लगे थे।

पूज्य मालवीयजी के कागज-पत्रों में उनका स्वयं लिखा हुआ एक लेख प्राप्त हुआ है जिससे उनके बचपन की एक झाँकी मिलती है।

ब्रजनाथ अपने पुत्र की शिक्षा के सम्बन्ध में बड़े सजग थे। बालक मदनमोहन की बड़ी इच्छा थी कि वह अंग्रेजी पढ़े। पिता ने अपने होनहार बालक का दिल छोटा होने नहीं दिया। परिवार की गरीबी कभी उसकी शिक्षा में बाधक नहीं हुई। माता के हाथ में सोने के कड़े तो थे ही। परिवार अल्प-सन्तुष्ट था। पिता दृढ़व्रती थे। भर्तृहरि कहते हैं :

'इयमुदरदरी दुरन्तपूरा, यदि न भवेदभिमानखण्डभूमि:'

(यह पेट का गड्ढा बड़ी कठिनता से भरता है और यह मनुष्यों के स्वाभिमान के तोड़ने का स्थल।)

परन्तु ब्रजनाथजी का पेट न तो इतना बड़ा था कि वह भर न सके और न उसने उनके स्वाभिमान को तोड़ा ही। वे उन लोगों में नहीं थे जिनके सम्बन्ध में महाकवि अकबर इलाहाबादी ने कहा है—

तालीम है लड़कों कि इक दामे-बला है।
ऐ काश कि इस दहर में हम बाप न होते !

मदनमोहन अब स्कूल में भरती हो गये। इलाहाबाद जिला स्कूल उस समय चौक में घंटाघर के पीछे जहाँ अब महापालिका का दफ्तर है लगता था। उसी स्कूल में दसवीं कक्षा (आजकल की तीसरी कक्षा) में अंग्रेजी की शिक्षा आरम्भ हुई। समय से जाना पड़ता था। यह एक समस्या थी। इतने बड़े परिवार का भोजन बनना और फिर ठाकुरजी का भोग लगना। माता यदि रसोई जल्दी भी बना दें पर ब्रजनाथजी को पूजा में बड़ी देर लगती थी। अतः मदनमोहन बासी रोटी मट्ठे के साथ खाकर स्कूल जाते थे। शुद्ध उच्चारण और सुन्दर लिखने का उन्हें व्यसन था। अत

वे अपने अध्यापकों विशेषकर स्कूल के हेड मास्टर [illegible] साहब के प्रिय हो गये थे।

वे बड़ी लगन से विद्याध्ययन करते थे। परन्तु घर में पढ़ने के स्थान की कोई सुविधा न थी। घर छोटा, परिवार बड़ा। पढ़ने के लिए अलग शान्त स्थान होना तो दूर रहा, लोगों को ठीक तरह से रहने ही के लिए स्थान पूरा नहीं पड़ता था। इस सब के ऊपर गृहस्थी का शोरगुल। ऐसी परिस्थिति में पढ़ाई हो सकना असम्भव था। 'सिद्धस्य गतिश्चिन्तनीया' पढ़ना है तो निकास निकालना ही पड़ेगा। घर से थोड़ी दूर पर मोहनबाग की बगिया के नाम से एक स्थान था। उसमें नीम-आम वगैरह के पेड़ और दो-चार टूटी फूटी कोठरियाँ थीं जिनमें से एक में मदनमोहन के एक सहपाठी गंगाप्रसाद रहते थे। स्कूल से आने के बाद आवश्यक कार्यों से निवृत्त हो सन्ध्या समय एक लालटेन और किताब लेकर वे चले जाते थे और दूसरे दिन प्रातःकाल घर लौट आते थे। इससे लोग यह न समझें कि वे दिन रात पढ़ने ही में लगे रहते थे। बात इसके विपरीत थी। पढ़ते थे अवश्य परन्तु उससे अधिक उनका समय गपशप, खेल-कूद और कसरत में बीतता था। विद्यार्थी लड़कों का एक गुट था जिसके वे अगुआ थे। कोई भी लड़का इनपर हाथ नहीं छोड़ सकता था। उनको किसी से द्वेष नहीं था पर किसी का भौंह तरेरना उन्हें सह्य न था। बाल्यावस्था में निडर होना तो उनके स्वभाव ही में लगा था। और इसी बाल्यावस्था में कभी-कभी बात बढ़ जाती थी और दो दलों में मारपीट की नौबत आ जाती थी। उसमें भी यह हटनेवाले न थे। बात यह है कि यह एक प्राकृतिक नियम है कि तेजस्वी पुरुष दूसरे की अपने से सर्वोपरिता नहीं देखता। किसी द्वेष के कारण नहीं, यह केवल स्वाभाविक होता है।

पूज्य मालवीयजी के कागज-पत्रों में उनका स्वयं लिखा हुआ उक्त लेख प्राप्त हुआ है जिससे उनके बचपन की एक झाँकी मिलती है।

ब्रजनाथ अपने पुत्र की शिक्षा के सम्बन्ध में बड़े सजग थे। बालक मदनमोहन की बड़ी इच्छा थी कि वह अंग्रेजी पढ़े। पिता ने अपने होनहार बालक का दिल छोटा होने नहीं दिया। परिवार की गरीबी कभी उसकी शिक्षा में बाधक नहीं हुई। माता के हाथ में सोने के कड़े तो थे ही। परिवार अल्प-सन्तुष्ट था। पिता दृढ़व्रती थे। भर्तृहरि कहते हैं

"उदरदरी दुरतिपूरा यदि न स्वाभिमानमर्दनभूमिः"

(यह पेट का गड्ढा बड़ी कठिनता से भरता है और यह मनुष्यों के स्वाभिमान के तोड़ने का स्थल।)

परन्तु ब्रजनाथजी का पेट न तो इतना बड़ा था कि वह भर न सके और न उसने उनके स्वाभिमान को तोड़ा ही। वे उन लोगों में नहीं थे जिनके सम्बन्ध में महाकवि अकबर इलाहाबादी ने कहा है—

तालीम है लड़कों कि इक दामे-बला है।
ऐ काश कि इस दहर में हम बाप न होते।"

मदनमोहन अब स्कूल में भरती हो गये। इलाहाबाद जिला स्कूल उस समय चौक में घंटाघर के पीछे जहाँ अब महापालिका का चुंगीघर है, लगता था। उसी स्कूल में छठवीं कक्षा (आजकल की तीसरी कक्षा) में अंग्रेजी की शिक्षा आरम्भ हुई। समय से जाना पड़ता था। पर एक समस्या थी। इतने बड़े परिवार का भोजन बनना और फिर ठाकुरजी का भोग लगना। माता यदि रसोई जल्दी भी बना लें पर ब्रजनाथजी को पूजा में बड़ी देर लगती थी। अतः मदनमोहन बासी रोटी मट्ठे के साथ खाकर स्कूल जाते थे। शुद्ध उच्चारण और सुन्दर लिखने का उन्हें व्यसन था। अतः

वे अपने अध्यापकों विशेषकर स्कूल के हेड मास्टर गार्डन साहब के प्रिय हो गये थे।

वे बड़ी लगन से विद्याध्ययन करते थे। परन्तु घर में पढ़ने के स्थान की कोई सुविधा न थी। घर छोटा परिवार बड़ा। पढ़ने के लिए अलग शान्त स्थान होना तो दूर रहा लोगों को ठीक तरह से रहने ही के लिये स्थान पूरा नहीं पड़ता था। इस सब के ऊपर गृहस्थी का कोलाहल। ऐसी परिस्थिति में पढ़ाई हो सकना असम्भव था। सिद्धस्य गतिश्चिन्तनीया कहना है तो निराश्रय निरालम्बा ही पड़ेगा। घर से थोड़ी दूर पर [illegible] का बगिया के नाम से एक स्थान था। उसमें [illegible] के पेड़ और दो-तीन छोटी-छोटी कोठरियाँ थीं जिनमें से एक में मदनमोहन के [illegible] गंगाप्रसाद रहते थे। स्कूल से आने के बाद [illegible] से निवृत्त हो सन्ध्या समय एक लालटेन और किताब लेकर वे चले जाते थे और दूसरे दिन प्रातःकाल घर चले आते थे। इससे लोग यह न समझें कि वे दिन रात पढ़ने ही में लगे रहते थे। बात इसके विपरीत थी। पढ़ते थे अवश्य थे परन्तु उससे अधिक उनका समय खेलकूद और व्यायाम में बीतता था। [illegible] लड़कों का एक गुट था जिसके वे अगुआ थे। कोई भी लड़का उनपर हाथ नहीं छोड़ सकता था। उनको किसी से द्वेष नहीं था पर किसी का [illegible] उन्हें सह्य न था। वादविवाद में पिछड़ जाना तो उनके स्वभाव ही में नहीं था। और इसी वादविवाद में कभी-कभी बात बढ़ जाती थी और दो दलों में मारपीट की नौबत आ जाती थी। उसमें भी वह हमेशा आगे रहते थे। बात यह है कि यह एक प्राकृतिक नियम है कि सबल पुरुष दूसरे की [illegible] बरदाश्त नहीं कर सकता। किसी द्वेष के कारण नहीं यह सहज स्वाभाविक होता है।

भवभूति कहते हैं —

> न तेजस्तेजस्वी प्रसृतमपरेषां प्रसहते
> स तस्य स्वो भावः प्रकृतिनियतत्वादकृतकः ।
> मयूखैरश्रान्तं तपति यदि देवो दिनकरः
> किमाग्नेयो ग्रावा निकृत इव तेजांसि वमति ॥

(तेजस्वी पुरुष किसी दूसरे तेजस्वी पुरुष के तेज को नहीं सहन कर सकता । यह उसका स्वभाव होता है, प्रकृति के नियमों के अनुसार बनावटी नहीं होता । सूर्य जब अपनी उष्ण किरणों से संसार में निरन्तर तपता रहता है तो आग्नेय मणि क्या अपमानित होकर तेज उगलने लगती है ? नहीं यह उसका स्वभाव ही है ।)

होली के दिन म उनका ऊधम देखने लायक होता था । उसके विस्तार से लिखने की आवश्यकता नहीं । इतना ही समझ लीजिए कि जितना ऊधम आजकल शरारती लड़के करते हैं वह सब ये गुट बाँधकर करते थे । वास्तव म इनके स्कूल के दिन बड़ी मस्ती के दिन थे । संगीत का इन्हें प्रेम था स्वयं सितार बहुत अच्छा बजाते थे । कविता करने का इन्हें शौक भाषण देने का इन्हें चस्का । उद्दंड होने पर भी कभी कुपथ म पैर नहीं रक्खा । कभी कोई ऐसा आचरण नहीं किया जिसमें इनके माता पिता का मस्तक नत हो ।

सन् १८७९ में अट्ठारह वर्ष की अवस्था में एन्ट्रेंस पास कर लिया । स्कूल की शिक्षा समाप्त हुई । गरीबी होते हुए भी ब्रजनाथ जी ने उनका नाम म्योर सेन्ट्रल कालेज में लिखवा दिया । उस समय वह माउन्ट कैनिंग में (जिसे अब दरभंगा कासिल कहते हैं) लगता था । १८८१ में उन्होंने वहीं स एफ० ए० पास कर लिया और उसी साल उनका विवाह हो गया । विवाह की एक बड़ी रोचक कहानी है । जिस समय ये स्कूल में पढ़ रहे थे इनके चाचा पण्डित गदाधरजी मिर्जापुर के गवर्नमेंट हाई स्कूल में संस्कृत के

प्रधानाध्यापक थे। सदाधरजी संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् थे। हमारे गुरुदेव पण्डित रामकृष्ण भट्टजी ने उन्हीं से संस्कृत साहित्य की शिक्षा पायी थी। एक बार जब मदनमोहन [illegible] मिर्जापुर गये तो वहाँ पण्डितों की एक सभा हो रही थी। अपने पिता के साथ मदनमोहन भी उस सभा में गये थे। बहुत देर तक पण्डितों के व्याख्यान सुनते रहे। उनकी भी इच्छा बोलने की हुई। आज्ञा पाकर उठ खड़े हुए। यद्यपि अवस्था तो कम थी ही बिना हिचक इन्होंने उपस्थित विषय पर डटकर व्याख्यान दिया। उनके सुन्दर शरीर से तो यों ही सब आकृष्ट थे, इस नवयुवक का ठाट से व्याख्यान देते देख कर सब लोग मंत्रमुग्ध से हो गये। उसी सभा में पण्डित नन्दराम बैठे थे। वे सार्वभौम थे। उनके तीन पुत्रियाँ थीं। दो का विवाह हो चुका था। इन्होंने मदनमोहन की वाग्मिता से प्रभावित होकर अपनी छोटी पुत्री कुन्दन देवी का विवाह उनसे करने के लिए निश्चय कर लिया। बातचीत पक्की होने के बाद सन् १८८१ में विवाह सम्पन्न हो गया। उसी साल मदनमोहन ने एफ० ए० पास किया था।

कुन्दन देवी का नाम यथागुण सार्थक था। कान्ति सुन्दर, गठा हुआ शरीर और कुन्दन (स्वर्ण सदृश) सा रंग देखकर शाकुन्तल का श्लोक याद आ जाता है —

> अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।
> कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम्॥

(अधरोष्ठ नवपल्लव के समान लाल है, दोनों बाहु दो कोमल शाखाओं की भाँति हैं और पुष्प के समान सुन्दर यौवन अंग अंग में व्याप्त है।)

उनकी वृद्धावस्था में भी उनकी तरुणावस्था के सौन्दर्य का थोड़ा-सा आभास मिलता है।

अनुरूप वर पाकर कुन्दन देवी और निखर आईं जैसे सोने (कुन्दन) में सोहागा। ठीक ही हुआ। सागर उज्झित्वा कस्मिन् महानद्या प्रवेष्टव्यम् (सागर को छोड़कर और कहाँ महानदी प्रवेश कर सकती है!)

प्रयाग में पहुँचकर मदनमोहन के जीवन ने एक नया मोड़ लिया। सभा-सोसाइटियों में सक्रिय भाग लेना, लोकसेवा एवं अन्य सार्वजनिक कार्यों में तत्परता के साथ जुट जाना इत्यादि से पढ़ाई में बाधा पड़ने लगी। परिणाम यह हुआ कि १८८३ में जब आप बी० ए० की परीक्षा देने गये तो फेल हो गये। इस असफलता से हताश न होकर १८८४ में उन्होंने कलकत्ते से बी० ए० पास कर लिया। उनकी बड़ी इच्छा थी कि वे संस्कृत में एम० ए० करें। पं० सरयूप्रसाद मिश्र के यहाँ जाकर उन्होंने पढ़ाई भी आरम्भ कर दी। परन्तु 'और मन कुछ और है, विधिना के कुछ और'। गरीबी परिवार का पिंड नहीं छोड़ती थी। उधर विवाह भी हो गया। थोड़ी-सी आमदनी में और वह भी आचारी वृत्ति, ब्रजनाथजी कहाँ तक करें। माता का कहाँ तक पाया जाय? पूरा परिवार मदनमोहन का मुँह जोहता था कि कब वह पढ़ना बन्द करें और नौकरी कर गृहस्थी का भार उठावें। मालवीयजी महाराज उसी पत्र में जिसका मैं ऊपर उल्लेख कर चुका हूँ लिखते हैं।

जब मैं बी० ए० पास हुआ घर में गरीबी बहुत थी। घर के प्राणियों को अन्न-वस्त्र का भी कष्ट था।

मामूली सा घर था। घर में गाय थी। माँ अपने हाथ से उसको सानी लगाती थीं और उसका गोबर उठाती थीं। घी आधा पेट खाकर गुजारा कर लेती थीं और फटी हुई धोतियाँ सीकर पहना करती थीं। मैंने बहुत बरसों बाद एक दिन उनसे पूछा—तुमने कभी मुझसे उन दिनों के कष्ट की शिकायत नहीं की?

माँ ने कहा—शिकायत करके क्या करती? तू कहाँ से देता?

पर का कोना-कोना वे जितना जानती थीं उतना ही मैं ग
है। मेरा दुःख सुनकर वे रो दीं और क्या करतीं

कालिज का जीवन

कालिज में हमारा जीवन बड़े मौज का था। मन लगाकर पढ़ने तो थे ही। साथ-साथ और मालूम नहीं कितने काम साधे हुए थे। उन्हीं दिनों इन्होंने जेन्टिलमन नाम का एक प्रहसन लिखा था। उसमें उन्होंने दो कविताएँ लिखी थीं। एक में मक्खनसिंह के रूप में अपना चित्रण किया था और दूसरे में उन्होंने उस समय के पढ़े-लिखे जेन्टिलमनों का खाका खींचकर उनका मज़ाक उड़ाया था। दोनों ही कविताओं को नीचे लिखता हूँ।

मक्खन सिंह

बड़े शौक़ से हैं पहनते बड़े रंगीन कुरता तक।
मना क्या कीजिये धोती तो हाथ से मंगाते हैं॥
कभी हम वास्कट पहनें, कभी पंजाब का जोड़ा।
हमेशा साथ डंडा है ये भड़कीले पाते हैं॥
न ऊधो से हमें लेना न माधो का हमें देना।
बर पंडा या लाल है व दुनियाँ को दिखाते हैं॥
नहीं डिग्री बना चाहें न चाहें हम तखिस्दारी।
बड़े मसखरे रहते हैं पूरी दिल को दिखाते हैं॥
न देख हम तरह उनकी जो हमसे भाग न हैं रहें।
जो दिल से हमसे मिलते हैं खूब उनको देख जाते हैं॥
नहीं रानी जिधर हमको दिखाते तीर की लकड़ी।
जिसे भी हमसे हम आवें नहीं पूरी उड़ाते हैं॥
मनो पारो जो गुन काटो तो सब्ज़ी में दुखाते हैं।
मुझे मक्खनसिंह से तो यही हम तो दिखाते हैं॥

हमें मत भूलना यारो बसे हम पास 'मनमोहन'
हुई है देर जाते हैं तुम्हारा गुन गाते हैं ॥

जेंटिलमैन की दशा

पहले पूरा पूरा जेंटिलमैन कहलाता है हम।
औरन से बाबू हमको मिस्टर कहा जाता है हम ॥
भगा जाता पूजा जप-तप छोड़ा है पाखण्ड सब।
घूरने में मुँह का सिरसायर में मिल जाता है हम ॥
मांग मोजा चरत चप्पू घर में छिप-छिप पीते थे।
अब तो बेलज्जे हमेशा 'वाईन' उड़ाता है हम ॥
हिन्दुओं का खाना पीना हमको कुछ भाता नहीं।
बीफ खाने से बड़े होटल में जा खाता है हम ॥
बाबू की भाषा कहना लाइक हम करता नहीं।
मास बहना अपने बच्चों को भी सिखलाता है हम ॥
कोट और पतलून पहने हैट एक सिर पर धरे।
ईवनिंग में वाक करने पार्क को जाता है हम ॥

प्रारम्भ में मालवीय जी 'मकरन्द' उपनाम से हास्य की कविता लिखा करते थे। इन कविताओं में उनकी मस्ती तो फूटी ही पड़ती है तत्कालीन जेंटिलमैनों के प्रति घृणा भी यथेष्ट मात्रा में टपकती है।

प्रयाग में उन दिनों एक आर्य नाट्य मण्डली थी। प्रयाग के प्रायः सभी प्रमुख नागरिक उसके सदस्य थे। उस मण्डली ने एक बार महाकवि कालिदास कृत 'अभिज्ञान शाकुन्तल' नाटक खेला। इस नाटक का अच्छी तरह खेल सकना कोई मामूली नहीं था विशेषकर शकुन्तला का पार्ट ठीक तरह से निभा देना कोई मामूली बात न थी। जब नाटक खेलने का दिन आया तो यह सवाल था कि कौन जाने उनका बनाया नाटक का अभिनय दर्शकों को पसन्द आवे या न आवे।

इसलिए उन्होंने अभिनय के आरम्भ में सूत्रधार के मुख से यह कहला भी दिया —

"आपरितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः॥"

(जब तक विद्वान् लोग मेरे कौशल से सन्तुष्ट न हो जायें तब तक मैं नाटक को सफल नहीं कह सकता। क्योंकि मैं इस काम को पूरा उतार लूँगा ऐसी बलवती धारणा पर भी शिक्षितों के सामने स्वयं अपने चित्त को विश्वास नहीं होता।)

अब कालिदास का यह हाल था तो आर्य नाटक मण्डली की कौन गिनती! नाटक भर में शकुन्तला का पार्ट बड़े गजब का हुआ। ऐसा लगता था जैसे साक्षात् मूर्तिमती शकुन्तला स्टेज पर उतर आयी हो। आप जानते हैं किसने शकुन्तला का पार्ट किया था? वह था मन्नमोहन।

एक बार म्योर सेंट्रल कालेज इलाहाबाद में 'मर्चेण्ट आफ वेनिस' अंग्रेजी नाटक खेला गया। मन्नमोहन ने 'पोर्शिया' का पार्ट किया। जिन लोगों ने उसे देखा उनका कहना है कि मन्नमोहन ने इतना अच्छा पार्ट किया कि यदि कोई अंग्रेज महिला भी उसे करती तो उससे अच्छा नहीं कर सकती थी। जिस समय पोर्शिया ने अदालत में दया की दुहाई दी तो श्रोताओं की आँखें डब डबा आईं। भावों को हृदय में गहरा उतार कर उन्हें रुला देना यह मालवीयजी का हिस्सा था। इस प्रसंग में एक बात मुझे सहसा याद आ गयी। प्रथम जर्मन युद्ध का जमाना था। जर्मनी बढ़ा चला आ रहा था। अंग्रेजों के हाथ-पाँव फूल गये थे। यह वही जमाना था। जिसके सम्बन्ध में अकबर इलाहाबादी ने लिखा था—

हमने पूछा जो जनाबे अखबार
जिनको हर रोज पढ़ते जाते हैं।

हुए नाश है जिससे कर्मन की
मजूर हमले कि बढ़ते आते हैं।
मन पूरी की लहरों से मनोबल यह निकलता है।
फतह सरकार की होती है क्योंकि उनका बढ़ता है॥

उस लड़ाई में भारतीय सेनाओं ने अंग्रेजों की मदद करने का निश्चय कर लिया था। मेयोहाल में जबर दे के नाम से एक सभा हुई थी। सर हेनरी रिचर्ड्स इलाहाबाद हाईकोर्ट के प्रधान न्यायाधीश सभापति थे। महामना मालवीयजी प्रधान वक्ता थे। मैं उस समय सभा में उपस्थित था। जब मालवीयजी महाराज युद्ध के भयावह एवं भयंकर परिणामों का धाराप्रवाह वर्णन करने लगे तो श्रोताओं की आँखें आर्द्र हो गयीं। सर हेनरी बराबर अपने आँसू रूमाल से पोंछते जाते थे। मदनमोहन के वाणिज्य जीवन-वृत्त के बीच में उक्त घटना के कहने का यह आशय है कि बचपन ही से उनकी वाणी में ऐसी शक्ति थी कि श्रोताओं को वह चकित कर देती थी।

गोसाईं में जब मदनमोहन कालेज में पढ़ रहे थे उस समय वहाँ महामहोपाध्याय पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य जी संस्कृत के प्रधानाध्यापक थे। वे ही मदनमोहन के गुरुदेव थे। भट्टाचार्य महोदय एक धर्मनिष्ठ पण्डित और महान् आत्मा के व्यक्ति थे। लगभग चौबीस वर्ष हुए संवत् १९९२ में महामना मालवीय ने अपने गुरुदेव की एक छोटी-सी जीवनी लिखी थी। उस जीवनी में महामना जी लिखते हैं :—

मध्य प्रदेश में सागर के विद्यालय में सन् १८७२ ई० के प्रारम्भ में वे सहकारी अध्यापक के पद पर नियुक्त हुए। इसी समय प्रयाग में म्योर सेंट्रल कालेज के नाम से सरकारी कालेज स्थापित किया गया। काशीस्थ सरकारी संस्कृत कालेज से भार

अंग्रेजी भाषा के अध्यापक होकर करीब ढाई बरस तक रहे। यह पद उन दिनों अंग्रेजों के लिए सुरक्षित था परन्तु पण्डितजी ने कुछ दिनों के लिए इसको सुशोभित किया था। आप ही ऐसे भारतीय विद्वान् थे जो इस पद पर पहिले-पहल नियुक्त किये गये थे। पीछे जब टीबो साहब जो जर्मन थे उस पद के लिए स्थायी रूप से नियुक्त होकर आये तब वे प्रयाग कालेज के अपने पुराने पद पर लौट आये।

वे बड़े ही स्वाभिमानी थे और किसी के साथ [illegible] भी पसन्द नहीं करते थे। प्रयोजन पड़ने पर बड़े स्पष्ट वक्ता थे। इस कारण कभी-कभी अक्सर लोग उनसे चिढ़ जाते थे तो भी उनकी न्याय-परायणता के कारण उनका सदा सम्मान करते थे।

हिन्दी के भी वे बड़े ही प्रेमी थे और हिन्दी साहित्य की उन्नति के लिए सदा उत्साह दिखाते थे। उस समय हिन्दी भाषा में कोई अच्छी मासिक पत्रिका नहीं थी। इस अभाव को दूर करने के लिए उन्होंने बहुत चेष्टा की थी और जब प्रयाग के इंडियन प्रेस ने सरस्वती नाम की पत्रिका निकाली तब उनको बड़ा सन्तोष हुआ। वे काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के मुख्य और शुभेच्छु थे।

वे सब श्रेणियों के छात्रों का समान भाव से आदर करते थे और जो छात्र उच्च श्रेणी में पढ़ने के लिए आते थे उनका तो पूरा भी आदर किया करते थे। सरकारी नौकर होने के कारण वे राजनैतिक कामों में योगदान नहीं कर सकते थे तथापि भारतीयों की यथोचित उन्नति बराबर देखा करते थे और देश के कामों में सहानुभूति भी रखते थे। वे देश की बनी हुई वस्तुओं के व्यवहार के विषय में बड़े कट्टर थे। प्रयाग में हिन्दू समाज उन्हीं के उद्योग और प्रोत्साहन से स्थापित हुआ था। अंग्रेजी राज्य के समय में हिन्दू समाज के संगठन का यह पहिला प्रयत्न था। पण्डितजी के उद्योग और प्रोत्साहन से ही उसका जन्म हुआ था। वे

उस समय म्योर सेंट्रल कालेज का छात्र था। पण्डितजी मुझ पर बहुत स्नेह रखते थे। उनके सम्पर्क से मुझमें देश भक्ति का भाव दृढ़ होता गया।

हिन्दू लड़कों का स्वधर्म में छात्रावस्था से ही प्रेम बना रहे और वे दूसरों के बहकाने से न बहकें इस अभिप्राय से जब १८९८ ई० में श्रीमती एनीबेसेंट बाबू गोविन्ददास डाक्टर भगवानदास बाबू उपेन्द्रनाथ बसु तथा अन्य सज्जनों ने सेंट्रल हिन्दू कालेज खोला तब पण्डितजी ने—उसके एक बड़े समर्थक के रूप में—उत्साहपूर्वक उसमें सहयोग किया था फिर जब काशी-हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित करने की चर्चा उठी तब फिर पण्डितजी का उत्साह दूना हो गया। यद्यपि इस समय उनकी अवस्था अधिक हो गयी थी तथापि उस कार्य में उन्होंने बहुत प्रोत्साहन दिया। विश्वविद्यालय के स्थापित हो जाने पर उसमें प्रो-वाइस-चांसलर का उच्च पद ग्रहण कर वे फिर काशी गए और सन् १९१४ से १९१८ ई० तक बड़े परिश्रम और उत्साह से उस पद का काम करते रहे। एक नवीन आदर्श विश्वविद्यालय की संस्थापना और उसका संगठन करने के लिए वृद्धावस्था में पण्डितजी को बहुत परिश्रम करना पड़ा। इसका यह परिणाम हुआ कि उनके नेत्रों की ज्योति जाती रही और शरीर भी टूट गया। अतएव ७१ वर्ष की अवस्था में वे अपने प्रयाग के मकान में लौट आए। और तीन वर्ष बाद उनका शरीर भी छूट गया। १८ अक्टूबर सन् १९२१ ई० (कार्तिक कृष्ण द्वितीया संवत् १९७८) को अरुणोदय के समय वे उसी भवन में परब्रह्म में लीन हो गए।

पण्डितजी बाल्यावस्था से ही बलिष्ठ तेजस्वी और उद्यमशील थे। बाल्यावस्था से प्रौढ़ावस्था तक बराबर व्यायाम करते रहे।...गृहस्थी में रहकर भी वे ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। उनके भोजपूर्ण नेम उनके नाम को सार्थक करते थे। वे सत्यमार्गी और

स्पष्ट वक्ता थे। घुमा-फिराकर बातें करना नहीं जानते थे। वे परमार्थ-साधन में नियमपूर्वक लगे रहते थे। अपने जीवन की दिनचर्या में वे यह बात सिखला गए हैं कि अपनी गृहस्थी का काम और पारमार्थिक काम इन सभी की तरफ ध्यान रखकर और इनका सामंजस्य कर मनुष्य को किस तरह कर्मशील होना चाहिए। वस्तुतः वे एक गृहस्थ योगी थे।

पण्डितजी के शरीर में जब तक बल रहा तब तक वे नित्य प्रातःस्नान त्रिवेणी तट को जाते थे। सूर्य की उपासना भी विशेषरूप से करते थे। रात्रि में तीन बजे उठकर पूजन आदि करके सूर्योदय के समय सूर्य के अष्टोत्तर शतनाम का पाठ कर उनको साष्टांग प्रणाम करते थे।

पण्डितजी का वासस्थान भी बड़ा उत्तम था। उनका मकान प्रयाग के दारागंज मुहल्ले में गंगातट पर प्राचीन दशाश्वमेधघाट से लगा हुआ है। इस भूमि को १८७ ई० में खरीदा था। जिस समय यहाँ पहिले कोई मकान नहीं था। उस समय झोपड़ी बनाकर एक बड़े विद्वान् महापुरुष रहते थे। उनका नाम शिवशर्मा था। वे बाल ब्रह्मचारी विरक्त महात्मा मराठा देश के थे। उन्हीं के नाम पर पण्डितजी ने अपने व्यय से एक संस्कृत पाठशाला स्थापित करायी है जिसका प्रबन्ध काशी हिन्दूविश्वविद्यालय करता है। वे हिन्दुओं की प्राचीन सम्पत्ति और धर्म के आधारस्वरूप शास्त्रों का गुरुद्वारा अध्ययनाध्यापन समझते थे। इस बात से इसका अनादर होने से इसके मलिन हो जाने से भी उन्हें बड़ी कातरता थी। अतएव संस्कृत विद्या द्वारा उपार्जित अपनी स्थावर जंगम सब सम्पत्ति इसी के पोषण के लिए अर्पित कर गए हैं। यह काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय के हाथ में सुरक्षित है और उसी के प्रबन्ध से उस धन के अधिकांश द्वारा उनके गंगातट के मकान में पाठशाला के चलाने की व्यवस्था

व अपनी मृत्यु के पहिले ही कर गए हैं। *

माता ! फिर पं० वेणीमाधव भट्टाचार्य और पं० आदित्यराम भट्टाचार्य के समान गृहस्थ तपस्वी त्यागी भगवद्भक्त देशभक्त हिन्दू-धर्म और हिन्दू-जाति के प्रेमी धर्म में दृढ़ पुरुषों को जन्म दो।

उन महात्माओं का भक्त और स्नेहभाजन
मदनमोहन मालवीय

पं० आदित्यरामजी के सम्बन्ध में कुछ विस्तार से लिखने का यह तात्पर्य है कि ऐसे पवित्रात्मा अध्यापक के संसर्ग में आने से बालक मदन का सम्पूर्ण जीवन सुन्दरतर हो गया। यदि भट्टाचार्य महोदय सरीखे अध्यापक एवं उपकुलपति हमारे विश्वविद्यालयों में हों तो उनमें जो आजकल कलुषित वातावरण हो रहा है वह न होने पावे।

मदनमोहन आदित्यरामजी से संस्कृत पढ़ते थे। यों तो उस दरजा में कम से संस्कृत के विद्यार्थी थे और पण्डितजी यही लगन से सबको समान रूप से पढ़ाते थे परन्तु छात्र मदनमोहन उनसे संस्कृत पढ़कर खिल उठा। पण्डितजी के पढ़ाने की शैली बड़ी मन मोहिनी थी। वे श्लोकों को उन्हीं छन्दों की ध्वनि में गाकर पढ़ाते थे।

मदनमोहन मणि थे उनसे पढ़कर जगमगा उठे। भवन्ति नम्रेषु हि गुणाः होनहार को पहचान सभी करते हैं। आदित्य

---

* विश्वविद्यालय में उनके सम्मान के लिए एक न्यास समिति बनाई है। (लेखक उस समिति का न्यासधारी है और मालवीय पाठशाला का मंत्री और प्रबन्धक है) पण्डितजी के ज्येष्ठ भ्राता पं० वेणीमाधवजी भी एक बड़े चरित्रवान् पुरुष थे। बाल्यकाल ही से वे बड़े सदाचारी और सच्चे हिन्दू थे।

मजी उन्हें पुत्र के समान मानने लगे। मदनमोहन को महामना नाने में उनका बहुत बड़ा हाथ था। एक प्रकार से पण्डितजी क पथ-प्रदर्शक थे। जीवन की लोक-यात्रा कठिन नहीं होती। थ-प्रदर्शक दुर्लभ होता है।

आदित्यरामजी के लिए मालवीय जी के हृदय में असीम श्रद्धा ी। मालवीयजी उनका केवल आदर ही नहीं करते थे उन्हें देव य समझते थे। एक दिन की बात है। नित्यनियम के अनुसार • आदित्यरामजी प्रातःकाल दशाश्वमेध के सामने गंगातट से ीट रहे थे। उसी समय मालवीय जी महाराज तट की ओर जा हे थे। दोनों की उस स्थान, बालुकामय मैदान में भेंट हो गयी। ालवीयजी महाराज ने रेत पर लेटकर आदित्यरामजी को साष्टांग णाम किया। क्षण भर के लिए इस चित्र को अपने मानसपटल र लाइए। मन्दाकिनी की पवित्र रेत पर सूर्य-समप्रभ तपस्वी आदित्यरामजी खड़े हैं सामने धोती दुपट्टा इत्यादि सम्पूर्ण वस्त्र हिने मालवीयजी बालू पर लेटकर पण्डितजी के चरणों में साष्टांग प्रणाम कर रहे हैं और थोड़ी दूर पर पं० दीनानाथ चतुर्वेदी (इस समय सरस्वती के सम्पादक) शशिदिवाकरयो न्द्र और सूर्य के अपूर्व सम्मिलन के दृश्य को देख रहे हैं। यह चतुर्वेदीजी का सौभाग्य था। उस समय उस बालू के मैदान की सी शोभा हुई थी —

> उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जा-
> वहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।
> वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टा-
> द्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम्॥
>
> माघ—शिशुपालवध।

(एक ओर आदित्य उदय हो रहे हैं (आदित्यरामजी न हैं)

दूसरी ओर चन्द्रदेव अस्त हो रहे हैं (चन्द्रमा के समान शुभ्र माल वीयजी रेत पर बैठे हैं) इस प्रकार वह रेवतक पर्वत (बालू का मदान) उस दन्तैल हाथी के समान शोभायमान हुआ जिसके दोनों ओर चमकते घंटे लटक रहे हैं।

मदनमोहन का कालिज का जीवन बड़ा व्यस्त था। पढ़ने लिखने का जो भार था वह तो था ही सभा सोसाइटियों का इतना भार उन्होंने अपने सिर पर ले लिया था कि उससे न केवल उनके अध्ययन में बाधा पड़ती थी बल्कि स्वास्थ्य पर भी। आखिर मेहनत की कोई-हद होती है मदनमोहन ने इसकी तनिक भी परवाह नहीं की। सन् १८८० में पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य की प्रेरणा से प्रयाग में 'हिन्दू समाज' की स्थापना हुई। मदनमोहन उसके प्रमुख कार्यकर्ताओं में थे। इसका कार्य जोरों से चल ही रहा था कि सन् १८८४ में मदनमोहन ने मध्य हिन्दू समाज नाम की एक सभा स्थापित की। यह हिन्दू समाज से तगड़ी थी। दशहरे के अवसर पर यमुना किनारे महाराज बनारस की विशाल कोठी में बड़ी धूम धाम से मध्य हिन्दू समाज का उत्सव हुआ। पं० बदरीनारायण व्यास (लेखक के पितामह) के प्रस्ताव करने पर बरौंध के राजा परमवैष्णव श्री महावीरप्रसादनारायणसिंहजी ने अध्यक्ष का आसन ग्रहण किया। उन्हीं दिनों कालाकांकर के राजा स्वर्गीय राजा रामपालसिंह मध्य-हिन्दू समाज में आते थे। वे इस जलसे में पैरा-पैरा रहते थे और सभापति का काम में बीच बीच में लटपट बाधा डालते थे। कोई भी व्याख्यान दे रहा हो वे उठकर स्वयं बोलने लगते थे। राजा रामपालसिंह बड़े प्रभावशाली और रोबील आदमी थे। यद्यपि इस प्रकार के उनके व्यवहार से सभी असन्तुष्ट थे तथापि किसी की उनसे कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। आखिर मदनमोहन से न रहा गया। अब जब राजा साहब इस प्रकार बाधा डालते तो मदनमोहन तुरन्त उठकर उनके काम में

कुछ कहने लग जाते थे। न उन्हें बोलने से रोकते थे। बात यह है कि मदनमोहन ठाठ-बाट और राजा के नाम से दहलनेवाले तो थे नहीं। 'ठाकुर' के शब्दों में मदनमोहन का स्वभाव था

बैर प्रीत करिबे की मन में न राखे लाज
 राजा राव देखि के न छाती धाक-धाक करी।
आपने अमंग के निबाहिबे की चाह जिन्हें
 एक सों दिखात जिन्हें बाघ और बाकरी।
'ठाकुर' कहत मैं बिचार कै कै बार देख्यो
 यही मरदान की टेक बात आकरी।
गही तौन गही जौन छाँड़ी तौन छाँड़ि दई
 करी तौन करी बात ना करी सो ना करी।।

राजा साहब को इस प्रकार उन्हें रोकने का साहस करना खलता था पर कर ही क्या सकते थे। गलती उन्हीं की थी। मदन मुस्कुरा देते थे।

अधिवेशन बड़े ठाठ-बाट से समाप्त हुआ। उन दिनों राजा साहब 'हिन्दुस्तान' नाम का एक पत्र निकालते थे। उसमें उन्होंने अधिवेशन की प्रशंसा तो की पर यह भी लिखा कि— 'उसमें दो एक सौ ऐसे लोग थे कि जो बड़े राजा-रईसों और बाबुओं (महात्मा) को व्याख्यान देते समय उनके कान में सलाह देने की इच्छा करते थे।"

राजा साहब का मदनमोहन की ओर झुकाव था यह स्पष्ट है। परन्तु राजा रामपाल सिंह बड़े गुणग्राही थे। थोड़े ही समय बाद उन्होंने मदनमोहन को अपने पत्र 'हिन्दुस्तान' का सम्पादक बना लिया। इसकी चर्चा, प्रसंग आने पर करेंगे।

इस प्रकार सन् १८६१ द्वितीय वर्ष मध्य हिन्दू समाज के अधिवेशन होते रहे। मध्य हिन्दू समाज के साथ-साथ उन्होंने कांग्रेस में एक

साथियों ही के कारण य संसार में बदनाम हो गयी और उनमें बहुत से दुर्गुण आ गये। बाणभट्ट कहते हैं :—

"इयं हि सुभटखड्गमण्डलोत्पलवनविभ्रमभ्रमरी लक्ष्मीः क्षीरसागरात् पारिजातपल्लवेभ्यो रागम् इन्दुशकलादेकान्तवक्रताम् उच्चैःश्रवसश्चञ्चलताम् कालकूटान्मोहनशक्तिं मदिराया मदं कौस्तुभमणेरतिनैष्ठुर्यम् इत्येतानि सहवासपरिचयवशाद्विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वैवोद्गता।

कादम्बरी—शुकनासोपदेश

भावार्थ—(उज्जयिनी के महाराज तारापीड के महामात्य शुकनास युवराज चन्द्रापीड को राज्याभिषेक के समय उपदेश देते हैं। यह विस्तृत उपदेश संस्कृतसाहित्य-सागर का अनुपम रत्न है) शुकनास कहते हैं— तनिक इस लक्ष्मी की ओर ध्यान दीजिए। यह लक्ष्मी बड़े-बड़े योद्धाओं के रणभूमि रूपी कमल-वन की भ्रमरी है। जब यह मायके (सागर) में थी तो इसका साथ बहुत बुरे लोगों का था। उन सबकी बुराई अपने में लेकर यह संसार में आयी है। पारिजात वृक्ष से सौन्दर्य, अर्धचन्द्र से घोर कुटिलता, उच्चैःश्रवा घोड़े से चंचलता, कालकूट महाविष से व्यामोह, मदिरा से उन्मत्तता और कौस्तुभमणि से भयंकर कठोरता, इन सब से अपने साथियों का परिचय देती हुई उन्हें अपने साथ लेकर यह लक्ष्मी समुद्र से निकली है। इस लक्ष्मी से सदा सजग रहना।"

मदनमोहन बाल्यावस्था से ही लक्ष्मी के पीछे नहीं गये। सदा भले लोगों से भली की ओर उनके सहयोग एवं अपने पौरुष से बड़े बड़े काम कर डाले।

एक बार जब मदनमोहन कालिज में पढ़ते थे लार्ड रिपन प्रयाग में आये। लार्ड रिपन एक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ थे। भारत के हितैषी थे। उनके लिए भारतीयों के हृदय में आदर था और इसी कारण अंग्रेज उनसे विरुद्ध थे। जब मदनमोहन को पता चला

कि लार्ड मिन्टो प्रयाग आ रहे हैं तो उन्होंने धूम-धाम से उनके स्वागत का आयोजन किया। कालिज के तत्कालीन प्रिन्सिपल हैरिसन साहेब यद्यपि बड़े सज्जन थे तथापि सीधी मलमी नहीं मिलनसार थे। उन्होंने स्पष्ट आज्ञा दे दी कि स्वागत न होगा। परन्तु मदनमोहन तो स्वागत करने की ठान चुके थे। फिर अनिग्रहचित्त मानुष हिमवर राष्ट्र हित के शब्दों मानवता के गुणों से सम्पन्न इस हिमवर को कौन रोक सकता था? नियत दिन बड़ी धूम-धाम से जुलूस निकला। लार्ड मिन्टो का स्वागत किया गया और उन्हें मानपत्र भी दिया गया। विरोधी लोग स्तम्भित रह गये और तब हैरिसन साहब को पता चला कि।

शीर्णेऽपि पुरुषे सत्यं विवेक

प्रत्यक्षतामेति गुणानाम् ॥

(शक्ति के क्षीण होने पर तब दर्शाने लगा कि मनुष्यों में गुणों का उत्कर्ष उनके व्यक्तित्व पर आधारित होता है।)

अध्यापक मालवीयजी

तावत् विद्यागुणगणमहिमा रूपसम्पत्ति शौर्यं
स्वस्थाने सर्वशोभा परकुलकथने वाक्पटुत्तावच ।
यावत् पाकशालामि स्वगृहपुर्वतिभि प्रेषितास्तनयात्
हे बाबा नास्ति तैलं न च लवणमपीत्यादि वार्ता प्रचारः ॥

(विद्या गुणों के समूह की महिमा रूपसम्पत्ति और शौर्य अपने घर में पूछ, दूसरे की प्रशंसा में पुन: सौम्पना यह सब तभी तक सम्भव है जब तक रसोई से आकुल अपने घर की स्त्रियाँ पुत्र को भेजकर यह नहीं कहलाती कि बाबा ! घर में न तो तेल है न निमक रसोई कैसे बने ?)

कुछ इसी प्रकार का वातावरण पण्डित ब्रजनाथजी (मदन मोहन के पिता) की गृहस्थी का था। सम्पूर्ण परिवार ब्राह्मण के समान त्यागी का [illegible] की प्रशंसा करता था। माता पिता यहाँ तक कि फटी धोती को सीकर पहिनने वाली मदन मोहन की सह धर्मिणी भी अपना आसरा लगाये दिन गिन रही थी कि कब मदनमोहन का विद्याध्ययन समाप्त हो और कब वे चार पैसा घर में लावें तो घर का बोझ हलका हो। परन्तु मदनमोहन तो और ही धुन में थे। वे स्वयं लिखते हैं :—

बी० ए० पास होने के बाद मेरी इच्छा हुई कि बाबा और पिता के समान मैं भी कथा कहूँ और धर्म का प्रचार करूँ। किन्तु घर की गरीबी से सब प्राणियों को दुःख हो रहा था। उन्हीं दिनों गवर्नमेन्ट स्कूल में जिसमें मैं पढ़ा था एक अध्यापक की जगह खाली हुई। मेरे चचेरे भाई पंडित जयगोविन्दजी उसमें हेड

पंडित थे। उन्होंने मुझसे कहा कि इस जगह के लिए कोशिश करो। मेरी इच्छा धर्म-प्रचार में जीवन लगा देने की थी। मैंने नाहीं कर दी। उन्होंने माँ से कहा।

माँ मुझसे कहने के लिए आयीं। मैंने माँ की ओर देखा। उनकी आँखें डबडबा आयी थीं। वे आँखें मेरी आँखों में अब तक बसी हैं। मेरे सब मनसूबे माँ के आँसू में बह गये और मैंने अविलम्ब कहा—माँ तुम दुःख न करो मैं नौकरी कर लूँगा। जगह थी तीस रुपये महीने की थी। मैंने इसी वेतन पर स्कूल में अध्यापक की नौकरी कर ली। दो महीने बाद मेरा वेतन ४० रुपया हो गया।

सन् १८८४ में २४ वर्ष की अवस्था में मदनमोहन अध्यापक हो गये और साथ ही साथ पंडित मदनमोहन मालवीय कहलाने लगे। अध्यापकों में जो गुण होने चाहिए उनकी उनमें प्रचुरता थी। थोड़े ही दिनों में विद्यार्थी इनसे हिलमिल गये। जिन्होंने इनसे पढ़ा है उनका कहना है कि ऐसा योग्य अध्यापक देखने में नहीं आया। प्रयाग के प्रमुख नागरिक स्वर्गीय डा० सतीशचन्द्र बनर्जी गवर्नमेंट हाईस्कूल में इन्हीं के छात्र थे। हाईकोर्ट में जब बनर्जी महोदय वकालत करते थे तो लोग उनकी शिष्टता का लोहा मानते थे। उनमें मनमोहन गुरु-भक्ति भरी थी। सज्जनता के प्रतीक थे। ऐसे सुस्वभाव और सुयोग्य शिष्य पर मालवीयजी को अभिमान था।

एक बार स्कूल में परीक्षा के समय एक कमरे में मालवीय जी गार्ड थे। एक विद्यार्थी नकल कर रहा था। मालवीयजी ने देख लिया और तुरन्त उस कमरे के बाहर निकाल दिया। वह लड़का बड़ा दुष्ट था। कहा कि उस का बदला समझ लेंगे। वह छात्र पहलवान था और अपनी गुण्डई के लिए मशहूर था। मालवीयजी स्कूल पैदल ही आया जाया करते थे। इस लड़के की धमकी के बाद सभी ने इनका पैदल आने जाने के लिए मना किया। पर कि वह

लड़का इतना बदमाश है कि बिना कोई वारदात किये न मानेगा। पर मालवीयजी डरने वाले तो थे नहीं। बोले 'क्या हमारे हाथ पाँव नहीं हैं? अगर हम पर वार करेगा तो क्या हम उसे छोड़ देंगे?' और बराबर पैदल आते जाते रहे। उस लड़के की हिम्मत न पड़ी कि वह कुछ करता। और मालवीयजी के व्यक्तित्व का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि एक दिन वह उनके पैरों पड़ा और उसने माफी माँगी!

मालवीयजी की वेश भूषा एक खास तौर की पगड़ी अंगा दुपट्टा और पायजामा सभी सफेद कपड़े के। यही वेश भूषा उनकी विद्यार्थी अवस्था में था और यही थी जब वे स्कूल में अध्यापक हुए। केवल सफेद मोजा और बढ़ गया। यही पहिनावा उनका अन्त तक कायम रहा। एक मोटी छड़ी वे सदा हाथ में रखते थे। काले कपड़े से उन्हें बड़ी चिढ़ थी। जीवन-पर्यन्त उन्होंने काला कपड़ा नहीं पहना। हाईकोर्ट में वकालत करने के समय भी काला गौन वे कभी नहीं पहिनते थे। जीवन में केवल एक बार ही मजबूरन उन्हें स्वभाव प्रतिकूल करना पड़ा। महारानी विक्टोरिया के निधन के अवसर पर नगर के बड़े गिरजे में सभा हुई थी। मालवीयजी का उसमें सम्मिलित होना अनिवार्य था। परन्तु उसमें बिना काला कपड़ा पहिने कोई सम्मिलित नहीं हो सकता था। मालवीयजी के लिए यह एक बड़ी समस्या थी। उसका निवारण उन्होंने इस प्रकार निकाला। उस दिन के लिए उन्होंने काला गौन (लबादा) बनवाया। उसे एक भृत्य लेकर उनके साथ गिरजाघर गया। गिरजा घर के द्वार में घुसने पर उन्होंने उसे धारण किया और वहाँ का कार्यक्रम समाप्त होने पर सबसे पहिले उतारकर उस भृत्य को दे दिया तब चैन की साँस ली। घर पर आकर कहने लगे कि जब वे उस काले गौन को ओढ़े गिरजाघर में बैठे थे उन्हें बड़ा मानसिक कष्ट हो रहा था। अपने जीवन में वह पहिली और अन्तिम बार

था जब किसी काले कपड़े का उन्होंने प्रयोग किया हो। उन्हें धवल श्वेत वस्त्र ही पसंद था।

मैंने अभी सुना है कि आगामी महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय शताब्दी के लिये काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में उनकी बड़ी (LifeSize) मूर्ति की स्थापना का आयोजन हो रहा है। मुझे विश्वस्त सूत्र से यह भी पता चला है कि शताब्दी समिति ने यह निश्चय किया है कि यह मूर्ति कांस्य (Bronze) की होगी। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में मालवीयजी महाराज की काली मूर्ति की कल्पना करते ही मैं तो कांप उठा। मालवीयजी के भावों का इससे बड़ा अनादर मेरी समझ में नहीं हो सकता। मालवीयजी की आत्मा को इससे कितना बड़ा आघात पहुँचेगा यह समझा जा सकता है। संचालकों को चाहिये कि वे इतनी भारी भूल न करेंगे जिससे मालवीयजी के भक्तों का जी दुखे।

जब तक मालवीयजी गवर्नमेंट हाईस्कूल में अध्यापक थे, लड़कों के अध्यापन का काम बड़ी लगन से करते रहे। परन्तु उनका कार्यक्षेत्र स्कूल की परिधि के भीतर सीमित नहीं था। गवर्नमेंट की नौकरी करते हुए वे सभी सामाजिक एवं राजनीतिक कार्यों में बराबर भाग लेते रहे।

सन् १८८५ में भारतीय राष्ट्रीय महासभा की स्थापना हुई। उसका दूसरा अधिवेशन सन् १८८६ में कलकत्ते में हुआ। मालवीयजी अपने गुरुवर पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य के साथ इस अधिवेशन में सम्मिलित हुए। मालवीयजी को मानो स्वच्छंद जल में विचरने का अवसर मिल गया। इस समय मालवीयजी गवर्नमेंट हाईस्कूल में अध्यापक थे। कांग्रेस के इस अधिवेशन से उनकी जीवन-धारा बदल गई। मंच पर से जो उनका व्याख्यान हुआ उससे सम्पूर्ण देश उनकी ओर आकृष्ट हो गया।

कालाकांकर (प्रतापगढ़) के स्वर्गीय राजा रामपाल सिंह

कांग्रेस के एक जोरदार नेता थे। उन्हीं दिनों वे विलायत से एक युरोपियन महिला से विवाह कर लौटे थे। वे एक तेजस्वी पुरुष थे। अंग्रेजी रहन-सहन वेश-भूषा के साथ उनमें अपने देश के प्रति अगाध भक्ति थी। पूर्व और पश्चिम का एक ही समय में यह विचित्र समन्वय आश्चर्यजनक था। साधारणतया वे अंग्रेजी लिबास में रहते थे पर राष्ट्रीय सभाओं में अपने देशी वस्त्र पहिन कर आते थे। उनकी यह निश्चित धारणा थी कि जब तक गरीब साधारण जनता का उद्धार नहीं होगा देश कुछ उन्नति न कर सकेगा। और यह तभी सम्भव होगा जब जन-साधारण अपनी मातृभाषा में राजनीति से परिचित होगा और उसके द्वारा उसे देश की दीन दशा की जानकारी होगी। एतदर्थ उन्होंने हिन्दोस्थान नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकालना आरम्भ किया। उनको एक योग्य सम्पादक की तलाश थी। सन् १८८६ के कांग्रेस के अधिवेशन में उन्होंने देखा कि वही लड़का जिसने सन् १८८४ के सदर हिन्दू समाज के अधिवेशन में उन्हें बीच-बीच में बोलने की रोकने की अनधिकार धृष्टता की थी आज कांग्रेस के अधिवेशन में बड़े बड़े वक्ताओं के सामने ठाठ से व्याख्यान दे रहा है तो राजा साहब बिना उसकी ओर आकृष्ट हुए न रह सके। राजा साहब गुणग्राही थे। उन्होंने क्षण भर में तय किया कि मालवीयजी ऐसा सुयोग्य सम्पादक उन्हें यदि मिल जाय तो उनका पत्र चमक उठे। उन्होंने तुरन्त मालवीयजी से कहा कि आपकी साठ रुपये मासिक की मास्टरी छोड़कर हिन्दोस्थान का सम्पादन करो और देश की सेवा करो। साथ साथ में वकालत भी पढ़ो। मैं आपको दो सौ रुपये मासिक दिया करूंगा।

मालवीयजी बड़े असमंजस में पड़े। मालवीय जी रहन-सहन खान-पान इत्यादि में कट्टर सनातनधर्मी ब्राह्मण थे और इधर अभिभूत राजा साहब विलायत से लौटे हुए एक मद्य मांस

भोजी क्षत्रिय थे। जहाँ तक भोजन का सम्बन्ध था उसमें कोई कठिनाई नहीं थी। राजा साहब के साथ उन्हें भोजन करना हो या नहीं। मदिरा एक बड़ी समस्या थी। मदिरा और गंगाजल का समन्वय एक टेढ़ी खीर थी। राजा साहब मदिरा प्रेमी थे। पत्र के स्वामी और उसके सम्पादक को प्रायः परामर्श के लिए मिलना ही पड़ता है। इस कारण 'हिन्दोस्थान' के सम्पादक होने में बड़ी हिचक थी। राजा साहब के २००) मासिक का उन्हें कोई लोभ नहीं था। जिस व्यक्ति का अपना सन्तुष्ट परिवार दस पाँच रुपये मासिक आय पर पलता था और गवर्नमेंट स्कूल से ४०) के पाने ही लगा था उसके हृदय में राजा साहब के २०० का कोई महत्व नहीं था। परन्तु वे अखबार को देश-सेवा समाज सेवा एवं धर्म की रक्षा करने का एक साधन मानते थे। और इन सबों के साथ-साथ हिन्दी की सेवा करने का अवसर हाथ से जाने नहीं देना चाहते थे। बहुत सोच-विचारकर मालवीयजी ने इस शर्त पर पत्र का सम्पादन स्वीकार किया कि जिस समय राजा साहब मद पिये हों तो वे न तो उन्हें बुलावें और न उनसे कोई बातचीत करें। शर्त कड़ी थी पर राजा साहब ने उसे स्वीकार कर लिया। मालवीयजी ने गवर्नमेंट स्कूल से त्यागपत्र दे दिया।

पत्रकार मालवीयजी

सन् १८८७ में मालवीयजी अध्यापक से पत्रकार हो गये और प्रयाग छोड़कर वर्ष में तीन तीन मास कालाकांकर में रहने लगे और वहाँ से 'हिन्दोस्थान' का सम्पादन करने लगे। वे सप्ताह में दो एक दिन कालाकांकर में रहते थे। और प्रत्येक रविवार को प्रयाग चले आते थे। पत्र के सामाजिक संस्करण का सम्पादन स्वयं राजा साहब करते थे। मालवीयजी के सम्पादकत्व में पत्र निखर उठा और उसकी ग्राहक-संख्या काफी बढ़ गयी।

कांग्रेस के एक जोरदार नेता थे। उन्हीं दिनों वे विलायत से एक यूरोपियन महिला से विवाह कर लौटे थे। वे एक तेजस्वी पुरुष थे। अंग्रेजी रहन-सहन वेश-भूषा के साथ उनमें अपने देश के प्रति अगाध भक्ति थी। पूर्व और पश्चिम का एक ही समय में यह विचित्र समन्वय आश्चर्यजनक था। साधारणतः वे अंग्रेजी लिबास में रहते थे पर राष्ट्रीय समारोहों में अपने देशी वस्त्र पहिन कर आते थे। उनकी यह निश्चित धारणा थी कि जब तक गरीब साधारण जनता का उद्धार नहीं होगा देश कुछ उन्नति न कर सकेगा। और यह तभी सम्भव होगा जब जन-साधारण अपनी मातृभाषा से राजनीति से परिचित होगा और उसके द्वारा उसे देश की दीन दशा की जानकारी होगी। एतदर्थ उन्होंने हिन्दोस्थान नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकालना आरम्भ किया। उन्हें एक योग्य सम्पादक की तलाश थी। सन् १८८६ के कांग्रेस के अधिवेशन में उन्होंने देखा कि वही सज्जन जिसने सन् १८८४ में मध्य हिन्दू समाज के अधिवेशन में उन्हें बीच-बीच में बोलने की टोकने की अनधिकार धृष्टता की थी आज कांग्रेस के अधिवेशन में बड़े बड़े वक्ताओं के सामने उठ कर व्याख्यान दे रहा है तो राजा साहब बिना उसकी ओर आकृष्ट हुए न रह सके। राजा साहब गुणग्राही थे। उन्होंने क्षण भर में समझ लिया कि मालवीयजी जैसा सुयोग्य सम्पादक उन्हें यदि मिल जाय तो उनका पत्र चमक उठे। उन्होंने तुरन्त मालवीयजी से कहा कि अपनी साठ रुपये मासिक की नौकरी छोड़कर हिन्दोस्थान का सम्पादन करो और देश की सेवा करो। साथ साथ में वकालत भी पढ़ो। मैं आपको दो सौ रुपये मासिक दिया करूंगा।

मालवीयजी बड़े असमंजस में पड़े। मालवीयजी की रहन-सहन खान-पान व्यवहार में कट्टर सनातनधर्मी ब्राह्मण थे और इधर कालाकांकर के राजा साहब विलायत से लौटे हुए एक मद्य मांस

मोजी दामिय थे। जहाँ तक भोजन का सम्बन्ध था उसमें कोई कठिनता नहीं थी। राजा साहब के साथ उन्हें भोजन करना तो था नहीं। मदिरा एक बड़ी समस्या थी। मदिरा और मांसाहार का समन्वय एक टेढ़ी खीर थी। राजा साहब मदिरा प्रेमी थे। पत्र के स्वामी और उसके सम्पादक को प्राय परामर्श के लिये मिलना ही पड़ता है। इस कारण हिन्दोस्तान के सम्पादक होने में बड़ी दिक्कत थी। राजा साहब के २००) मासिक का उन्हें कोई लोभ नहीं था। जिन व्यक्ति का बड़ा सन्तुष्ट परिवार स्वल्प पाँच मासिक आय पर पलता था और गवर्नमेंट स्कूल के ५०) से काम हो रहा था उसके लिये राजा साहब के २०० का कोई महत्त्व नहीं था। परन्तु वे अखबार को देश-सेवा समाज सेवा एवं धर्म की सेवा करने का एक साधन मानते थे। और इन सबों के साथ-साथ हिन्दी की सेवा करने का अवसर हाथ से जाने नहीं देना चाहते थे। अन्त सोच-विचारकर मालवीयजी ने एक शर्त पर पत्र का सम्पादन स्वीकार किया कि जिस समय राजा साहब मद पिये हों तो वे न तो उन्हें बुलावें और न उनसे कोई बातचीत करें। शर्त कड़ी थी पर राजा साहब ने उसे स्वीकार कर लिया। मालवीयजी ने गवर्नमेंट स्कूल से त्यागपत्र दे दिया।

पत्रकार मालवीयजी

सन् १८८७ में मालवीयजी कालाकांकर में पत्रकार हो गए और प्रयाग छोड़कर वहाँ से तीन मील पर कालाकांकर में रहने लगे और वहीं से हिन्दोस्तान का सम्पादन करने लगे। यह पत्र प्रतिदिन कालाकांकर से निकलता था। और प्रत्येक रविवार को प्रयाग चले आते थे। पत्र के सामाजिक संस्करण का सम्पादन स्वयं राजा साहब करते थे। मालवीयजी के सम्पादकत्व में पत्र निखर उठा और उसकी लोकप्रियता बहुत बढ़ गई।

कांग्रेस के एक जोरदार नेता थे। उन्हीं दिनों वे विलायत से एक यूरोपियन महिला से विवाह कर लौटे थे। वे एक तेजस्वी पुरुष थे। अंग्रेजी रहन-सहन वेश-भूषा के साथ उनमें अपने देश के प्रति अगाध भक्ति थी। पूर्व और पश्चिम का एक ही समय में यह विचित्र समन्वय आश्चर्यजनक था। साधारणतया वे अंग्रेजी लिबास में रहते थे पर राष्ट्रीय सभाओं में अपने देशी वस्त्र पहिन कर जाते थे। उनकी यह निश्चित धारणा थी कि जब तक गरीब साधारण जनता का उद्धार नहीं होगा देश कुछ उन्नति न कर सकेगा। और यह तभी सम्भव होगा जब जन-साधारण अपनी मातृभाषा से राजनीति से परिचित होगा और उसके द्वारा उस देश की दीन दशा की जानकारी होगी। एतदर्थ उन्होंने हिन्दोस्तान नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकालना आरम्भ किया। उसको एक योग्य सम्पादक की तलाश थी। सन् १८८६ के कांग्रेस के अधिवेशन में उन्होंने देखा कि वही लड़का जिसने सन् १८८४ के मध्य हिन्दू समाज के अधिवेशन में उनके बीच-बीच में बोलने की गौरव की अनधिकार धृष्टता की थी आज कांग्रेस के अधिवेशन में बड़े बड़े दिग्गजों के सामने ठाठ से व्याख्यान दे रहा है तो राजा साहब बिना उसकी ओर आकृष्ट हुए न रह सके। राजा साहब गुणग्राही थे। उन्होंने क्षण भर में परख लिया कि मालवीयजी एक सुयोग्य सम्पादक होंगे यदि मिल जायँ तो उनका पत्र चमक उठे। उन्होंने तुरन्त मालवीयजी से कहा कि आप साठ रुपये मासिक की मास्टरी छोड़कर हिन्दोस्तान का सम्पादन करो और देश की सेवा करो। साथ साथ में वकालत भी पढ़ो। मैं आपको दो सौ रुपये मासिक दिया करूँगा।

मालवीयजी बड़े असमंजस में पड़े। मालवीय जी रहन-सहन खान-पान इत्यादि में कट्टर सनातनधर्मी ब्राह्मण थे और इधर सर्वथा राजा साहब विलायती थे। दूसरे राजा हुए एक मद मांस

मांसाहारी क्षत्रिय थे। जहाँ तक भोजन का सम्बन्ध था उसमें कोई कठिनाई नहीं थी। राजा साहब के साथ उन्हें भोजन करना तो था नहीं। मदिरा एक बड़ी समस्या था। मदिरा और गंगाजल का समन्वय एक टेढ़ी खीर थी। राजा साहब मदिरा प्रेमी थे। पत्र के स्वामी और उसके सम्पादक का प्राय: परामर्श के लिए मिलना ही पड़ता है। इस कारण 'हिन्दोस्थान' के सम्पादक होने में बड़ी दिक्कत थी। राजा साहब के २००) मासिक का उन्हें कोई लोभ नहीं था। जिस व्यक्ति का अपना सम्पूर्ण परिवार दस पाँच रुपये मासिक आय पर पलता था और गवर्नमेंट स्कूल के ..०) से पल ही रहा था उसके लिए राजा साहब के २०० का कोई महत्व नहीं था। परन्तु वे अखबार की सेवा-द्वारा समाज तथा देश धर्म की सेवा करने का एक माध्यम मानते थे। और इन सबों के साथ-साथ हिन्दी की सेवा करने का अवसर हाथ से जाने नहीं देना चाहते थे। बहुत सोच-विचारकर मालवीयजी ने इस शर्त पर पत्र का सम्पादन स्वीकार किया कि जिस समय राजा साहब मद पिये हों तो वे न तो उन्हें बुलावें और न उनसे कोई बातचीत करें। शर्त कड़ी थी पर राजा साहब ने इसे स्वीकार कर लिया। मालवीयजी ने गवर्नमेंट स्कूल से इस्तीफा दे दिया।

पत्रकार मालवीयजी

सन् १८८७ में मालवीयजी अध्यापक से पत्रकार हो गए और प्रयाग छोड़कर कभी-कभी तीन तीन मास तक कालाकांकर में रहने लगे और वहीं से हिन्दोस्थान का सम्पादन करने लगे। वे सप्ताह में दो-चार दिन कालाकांकर में रहते थे। और इतवार को प्रयाग चले आते थे। पत्र के सामाजिक संस्करण का सम्पादन स्वयं राजा साहब करते थे। मालवीयजी के सम्पादकत्व में पत्र निखर उठा और उसकी लोकप्रियता बहुत बढ़ गई।

मालवीयजी बड़े विकट प्रूफ रीडर थे। पहिले तो वे अपने लेख को कई बार काट-छाँटकर फोरमन के पास भेजते थे। प्रूफ आने पर बड़े ध्यान से पढ़कर उसकी अशुद्धियाँ ठीक करते थे और पत्र के छपते उसके लेख की भाषा में संशोधन करते थे। किसी भी प्रेस का फोरमन प्रूफ की अशुद्धियों पर तो अवश्य लज्जित होता है और कम्पोजिटरों को सख्त सुस्त कहता है परन्तु यदि लेखक बार बार अपने लेख को घटाता-बढ़ाता है तो फोरमैन बहुत झुंझलाता है। परन्तु मालवीयजी अपनी आदत से लाचार थे और यह आदत उनकी जीवन भर कायम रही। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में जब वे वाइस-चांसलर थे अपने ही लिखवाये या लिखे हुए पत्र में टाइप हो जाने पर, कई बार काट-छाँट करते थे और जब तक उसकी भाषा पूर्ण रीति से परिष्कृत नहीं हो जाती थी उनका जी नहीं भरता था। किसी पत्र-पत्रिका में प्रूफ की अशुद्धियों को वे बहुत ही अनुचित और पत्र की मान-हानि की बात समझते थे।

ढाई वर्ष तक मालवीयजी ने बड़ी आन-बान से 'हिन्दोस्तान' का सम्पादन किया। राजा साहब भी अपनी शर्त का पालन करते रहे। परन्तु होनहार, एक दिन जब वे पिये हुए थे उन्होंने मालवीय जी का को एक आवश्यक कार्य के सम्बन्ध में परामर्श करने के लिए बुला भेजा। मालवीयजी उनके पास गये पर उन्होंने तुरन्त ताड़ लिया कि इस समय राजा साहब नशे में हैं। परामर्श देने के बाद मालवीयजी ने उनसे कहा कि आज आपने अपनी शर्त तोड़ दी अब मैं पत्र-सम्पादन का काम न करूँगा। राजा साहब ने बहुत समझाया-बुझाया पर मालवीयजी अटल रहे। लाचार होकर राजा साहब ने कहा कि अच्छा जाओ वकालत पढ़ो। जब तक पढ़ोगे उसका पूरा खर्च मैं दूंगा। उन्होंने अपने वचन को पूरा किया और वे मालवीयजी को लगातार २६) महीना भेजते रहे यद्यपि मालवीयजी ने उन्हें बहुत मना किया।

यद्यपि मालवीयजी को कानून पढ़कर वकालत करना बहुत नापसन्द था तथापि राजा रामपालसिंह जैसे उदार एवं हितैषी व्यक्ति और पण्डित सुन्दरलाल तथा उनके भाई अमरदेवराम ऐसे घनिष्ठ मित्रों की सलाह को वे कैसे ठुकराते ? अतः पत्रकारिता का ख्याल थोड़े दिन के लिए छोड़कर कानून पढ़ने में जुट गये और १८९१ में एल०एल० बी० पास कर लिया। दो वर्ष बाद हाईकोर्ट में वकालत करने लगे और उसमें वकालत खूब चमकी। एक बार पण्डित अयोध्यानाथ जी ने लाइन साहब से शिकायत की कि जब से मालवीयजी वकालत करने लगे हैं तब से वे कांग्रेस के काम में ढिलाई करने लगे हैं। लाइन साहब ने कहा 'ठीक तो है। इन्हें कानून की ओर ही पूरा चित्त लगाना चाहिए' और फिर मालवीय जी की ओर देखकर बोले कि 'मेरे मदनमोहन! ईश्वर ने तुम्हें तीव्र बुद्धि दी है। अगर मन लगाकर तुम दस बरस भी वकालत कर लोगे तो तुम निश्चय बहुत आगे बढ़ जाओगे। तब तुम अपनी प्रतिष्ठा के कारण अधिक जनसेवा कर सकोगे और तब तुम मेरा देश की अधिक सेवा कर सकोगे।' मालवीयजी अपने हितैषी का मान आदर करते थे। अतः उन्होंने लाइन महोदय के उपदेशानुसार कुछ दिनों जमकर वकालत की ओर बहुत कुछ रुपया भी कमाया। इस सम्बन्ध में एक रात्रि की घटना याद आ गयी। मालवीयजी की वात्सल्य सभा ठीक तरह से चल न पायी थी कि उनकी लड़की का विवाह सिर पर आ पहुँचा। उसके लिए जितने धन की आवश्यकता थी उतना धन पास में न था। उनकी धर्मपत्नी सौभाग्यवती कुन्दन देवी बड़ी चिन्तित हुईं। परन्तु मालवीयजी को कोई चिन्ता नहीं हुई। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि भगवान् इसका समय पर आप ही प्रबन्ध कर देंगे। यही हुआ। कोई बड़ा मुकदमा हाथ लग गया जिसमें पाँच हजार रुपया कानून में निर्धारित फीस के दिया। उपरान्त उस कुन्दनजी के हाथ में रख दिया और उसने उसका

दायित्व से निवृत्त हो गये।

इस मुकदमे में जीत जाने से मालवीयजी की वकालत जोरों से चल निकली। वे उन दिनों शहर ही में रहते थे। उसी [illegible] के मोमनशाह में जहाँ उनका पैतृक मकान था मुंशी सुखराम के मकान में उनका दफ्तर था। सवेरे ही से मवक्किलों की भीड़ लग जाती थी। जिसकी इतनी बड़ी वकालत हो वह कोई और काम तो कर नहीं सकता। मालवीयजी केवल वकालत से रुपया बटोरने के लिए पैदा नहीं हुए थे। उनका ध्येय तो दूसरा ही था वकालत तो उसका माध्यम मात्र थी। वकालत के कारण अपने मुख्य ध्येय में बाधा पड़ते देख मालवीयजी घबरा उठे और उसकी उपेक्षा करने लगे। आप स्वयं समझ सकते हैं कि

"पुरा सरसि मानसे विकचसारसालिस्खलत्
परागसुरभीकृते पयसि यस्य यातं वयः।
स पल्वलजलेऽधुना मिलदनेकभेकाकुले
मरालकुलनायकः कथय रे कथं वर्तताम्"।

पण्डितराज जगन्नाथ

अर्थात् जिस राजहंस ने एक समय मानसरोवर में खिले कमल समूहों से बिखरे हुए पुष्पपराग से सुरभित हो रहा था अपना जीवन व्यतीत किया था वह अब एक क्षीण और गन्दे जल वाली तलैया में जिसमें मेढकवृन्द अपनी टर्र-टर्र से नाक में दम करते हैं कैसे वह रह सकता है।

परिणाम यह हुआ कि मवक्किलों की उपेक्षा होने लगी और सार्वजनिक कार्यों को मालवीयजी प्राथमिकता देने लगे। पण्डित बालकृष्ण भट्ट मालवीयजी को बहुत मानते थे। एक दिन प्रातः काल भट्टजी उनसे मिलने के लिए उनके दफ्तर में आये उस समय तक मालवीयजी नहीं आए थे। भट्टजी ने अतिरिक्त

पण्डित हृदयनाथ कुंजरू, मुंशी ईश्वरशरण तथा बहुत से मवक्किल उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। इतने में स्नानाह्निक से निवृत्त होकर मालवीय जी दफ्तर में आये। आते ही पहिले उन्होंने सब मवक्किलों को विदा कर दिया। किसी से यह कह कर कि हम कैलाश नाथ काटजू को लिखे देते हैं वे तुम्हारे मुकदमे की पैरवी कर देंगे किसी से यह कह कर कि फिर आना आज हमें छनिक भी छुट्टी नहीं है। लाचार, सब मवक्किल चले गये। भट्टजी कोने में बैठे इस सब व्यापार को देखकर मन ही मन कुढ़ रहे थे। आखिरकार उनसे न रहा गया। बोले मदन! (भट्टजी मालवीयजी से दस वर्ष बड़े थे) ई तुमरा ढंग हमें समझी नहीं सोहाता। जो तुम्हें चार पैसा देय आय रहे उन्हें तो तुम टरकाय दिहा और इन आवारन के साथ बैठ के अपना वक्त खराब करबो। इन्हें तो न कुछ करना है न धरना। सभी भट्टजी के स्वभाव से परिचित थे और उनका आदर करते थे। मालवीयजी मुसकिरा कर बोले भट्टजी! आज इन लोगों से एक अत्यन्त आवश्यक राजनीतिक विषय पर परामर्श करना। भट्टजी कुढ़कर बोले जाय रहे दव। हम सब जानित है। इनमें तो बातचीत मेंग्ध के भी होय सकत रही। मोअक्किल तो जो गय सो गय। हम जाइत है। फिर आउबे। यह कहकर भट्टजी उठ खड़े हुए और चल गये।

एक दिन जब मालवीयजी अपने दफ्तर में उपस्थित ही रहे थे कि एक अनजान व्यक्ति उनके पास आया और रुआसा होकर बोला "आज हाईकोर्ट में मेरा मुकदमा है। मुंशी कालिकाप्रसाद मेरे वकील हैं पर वे कहीं बाहर चले गये हैं। मैं उन्हें पूरी फीस दे चुका हूँ। मैं बहुत गरीब आदमी हूँ। मेरे पास किसी दूसरे वकील को देने के लिए रुपया नहीं है। जिस वकील के पास जाता हूँ उसका मुंशी पहिले फीस माँगता है। समझ में नहीं आता क्या करूँ आप धर्मात्मा हैं इसीलिए आपकी शरण में आया हूँ।" मालवीयजी

जी के सुकोमल हृदय को बींध देने के लिए, गरीबी धर्म और शरणागत ये तीनों बाण इतने अचूक थे कि इनका वार कभी खाली नहीं गया। उस दिन मालवीयजी बहुत व्यस्त थे। तुरन्त उन्होंने उस व्यक्ति को अपने एक खास आदमी के साथ मुंशी गोकुल प्रसाद वकील के पास भेज दिया। उस गरीब आदमी का काम बिना पैसा-कौड़ी के हो गया। आये दिन मालवीय जी के पास ऐसे शरणागत और गरीब आया करते थे और उनका काम निःशुल्क हो जाया करता था। इसी समय उन्हें रानी शेरकोट का एक भारी मुकदमा मिला जो उनकी वकालत की एक कीर्ति समझी जाती है। इस मुकदमे में यश के साथ-साथ बहुत सा धन भी मिला जिससे उन्होंने अपने जन्मस्थान से संलग्न भूमि पर एक बड़ा-सा मकान बनवा लिया। प्रायः इस प्रकार बहुत-सा धन मिलने से धन का लोभ बढ़ता है परन्तु मेरी तो निश्चित धारणा है कि रानी शेरकोट के मुकदमे में अधिक धन मिलने से उसका प्रभाव मालवीय जी के हृदय पर उलटा पड़ा। उन्होंने गृहस्थी के उत्तरदायित्व से मुक्त होकर वकालत से मुँह मोड़ लिया और वे देशसेवा में लग गये। वकालत में जो उन्होंने ख्याति प्राप्त की थी उससे उन्हें अपने उद्देश्य में बड़ी सहायता मिली। ह्यूम साहब की भविष्यवाणी पूरी उतरी। उनका उपदेश चूँकि मालवीयजी के वैभव का मूल मंत्र है, उसे पुनः उद्धृत करता हूँ।

'देखो मदनमोहन! ईश्वर ने तुम्हें तीव्र बुद्धि दी है। अगर मन लगाकर, तुम दस वर्ष भी वकालत कर लोगे तो तुम निश्चय सफल हो जाओगे। तब तुम अपनी प्रतिष्ठा के कारण अधिक जन-सेवा कर सकोगे और तब तुम देश की भी अधिक सेवा कर सकोगे।

मालवीयजी बड़ों का आदर करते थे और हित चाहने वालों के उपदेश को मानते थे। वे उन लोगों में नहीं थे जिनके सम्बन्ध

में बाणभट्ट ने कादम्बरी के शुकनासोपदेश में कहा है —

"मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराः न प्रणमन्ति देवताभ्यो न मानयन्ति मान्यान् मान्यजनमुपहसन्ति ... कुर्वन्ति हितवादिने"

(जो झूठे बड़प्पन के अभिमान में चूर रहते हैं वे देवताओं को प्रणाम नहीं करते और गुरुजनों का आदर नहीं करते यह समझ कर कि इससे उनकी बुद्धि भी हेठी होगी, समालोचकों से ईर्ष्या करते हैं और हितैषियों पर क्रुद्ध होते हैं।)

कई बार वकालत कर मालवीयजी ने देख लिया कि पैसा का कमाना और शहनाई का बजाना दोनों एक साथ सम्भव नहीं हैं, एक के होकर रहना होगा तो उन्हें अपना मार्ग निर्धारित करने में देर न लगी। वकालत से उन्होंने क्रमशः हाथ खींच लिया और देश-सेवा में लगन के साथ जुट गए। उनकी व्याख्या में देश-सेवा में अन्तर्गत समाज-सेवा एवं धर्म-सेवा निहित थी, दोनों ही का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध था। एक बार मैंने उनसे कहा था कि माघ ने नीति की सुन्दर व्याख्या एक छोटे से अनुष्टुप छन्द के कलेवर में कर दी है। समझा था कि उसे सुनकर मालवीय जी प्रसन्न होंगे। वह श्लोक इस प्रकार है

आत्मोदयः परज्यानिर्द्वयं नीतिरितीयती।
तदूरीकृत्य कृतिभिर्वाचस्पत्यं प्रतायते॥

माघ-शिशुपालवध—२-३०

(अपना उदय और शत्रु का ह्रास इतनी ही तो नीति है। इस मूल सिद्धान्त को मानकर नीतिज्ञ बृहद् का विस्तार करता है।)

श्लोक को सुनते ही मालवीयजी ने नाक सिकोड़ कर कहा कि यह दुष्टों की नीति है। अपना अभ्युदय हो और दूसरे का भी भला

हो यही धर्म्मानुमोदित नीति है। उन्होंने कहा कि वही नीति आदरणीय है जिसमें —

सर्वे ऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाक् भवेत् ॥

(प्राणी मात्र सुखी हों सभी रोग से मुक्त हों सभी का कल्याण और किसी को भी दुख न हो।) जब मैंने पण्डित बालकृष्ण भट्ट से यह बात कही तो वे बोले आप ने ठीक ही तो कहा है। मालवीयजी उस नीति का सपना देखते हैं जो होनी चाहिए। आप उस नीति की बात करते हैं जो वास्तव में है। मालवीयजी की व्याख्या में कल्पना है आप में वास्तविकता। काहे को संसार से स्वार्थ परता हटेगी और काहे को मालवीय जी का स्वप्न पूरा होगा? काहे को नौ मन तेल होई काहे राधा नाचिहैं?

सन् १९०७ की बात है। भट्टजी के देहावसान के छ वर्ष पहिले की बात है। उस साल कांग्रेस का अधिवेशन सूरत में हुआ था। उस समय देश का राजनीतिक वातावरण बड़ा क्षुब्ध था। ब्रिटिश शासन और देश के नेताओं में एक प्रकार से रस्साकशी हो रही थी। उधर शासन में भेद करा देने में सिद्ध-हस्त ब्रिटिश शासन अपनी घात में था और इधर भारतीय नेतागण देश को स्वतंत्र करने के लिए उतावले हो रहे थे। ऐसी परिस्थिति में राजनीतिक विचारधारा का दो भागों में विभक्त हो जाना स्वाभाविक ही था। सूरत के अधिवेशन में मालवीय जी और भट्टजी दोनों ही साथ गये थे और साथ-साथ ठहरे भी थे। यद्यपि दोनों ही महापुरुषों में घनिष्ठ मैत्री थी तथापि उनके राजनीतिक विचार बिलकुल भिन्न थे। एक तीर घाट तो दूसरा मीर घाट। मालवीयजी नरम दल में थे और भट्टजी गरम दल के पक्षपाती थे। भट्टजी को नरम दल उह फूटी आँख नहीं सोहाता था।

उनका ख्याल था कि —

यह बात लबे-शम कभी बन नहीं सकती।
परन्तु के चलाने से बला टल नहीं सकती॥

मालवीयजी का ख्याल था कि जब देश की माँग न्यायोचित और धर्म-सम्मत है तो ब्रिटिश शासन को समझाने बुझाने से कार्य सिद्ध हो जायगा। भट्टजी का कहना था कि —

पूछ यह बात कहीं उनसे—'पुकारो उनको।
वह मुआ साँप को क्या देते हो ? मारो उसको!

अकबर

यदि इसी बात को भट्टजी के शब्दों में कहें तो वह होगा 'लात के देवता बात से नहीं मानते।

सूरत के अधिवेशन में जो काण्ड हुआ उसे सभी जानते हैं। उसके दुहराने की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है। इतना कहना पर्याप्त होगा कि इस प्रकार कांग्रेस के अधिवेशन के भंग होने से मालवीयजी के हृदय में बड़ी ठेस लगी। वे व्यथित हो उठे। घर आकर वे बिस्तर पर लेट रहे परन्तु उन्हें नींद नहीं आई। बीच बीच में वह उठते थे 'हाय तिलक हाय तिलक'। भट्टजी निकट ही लेटे थे। उनसे न रहा गया सहसा बोल उठे 'हमारे तिलक को चाह बहुत हो मरने का नहीं कहते।' मालवीय जी बहुत दुखी थे, चुप नहीं थाम।

मालवीयजी की वकालत छोड़ने की चर्चा करते-करते थोड़ा विषयान्तर हो गया। यह पहिले मैं कह चुका हूँ कि गवर्नमेंट स्कूल की अध्यापकी छोड़ने के बाद मालवीय जी कालाकाँकर के 'हिन्दुस्तान' का सम्पादन करने लगे थे। एक सिद्धान्त की बात पर उन्होंने उसे छोड़ दिया था और वकालत पास कर वकालत करने लगे थे। देश की सेवा में अपना सम्पूर्ण समय लगाने के लिए उन्होंने वकालत करना भी छोड़ दिया। देश सेवा के लिए समाचार-पत्र

निरान्त उपयोगी साधन होते हैं अतः मालवीयजी ने पुनः इस ओर ध्यान दिया।

मालवीयजी पुनः पत्रकार

कालाकाँकर के 'हिन्दुस्तान' से नाता तोड़ने के बाद मालवीयजी पण्डित अयोध्यानाथ के अंग्रेजी पत्र 'इण्डियन ओपिनियन' के सम्पादन में उनका हाथ बटाने लगे। पण्डित अयोध्यानाथजी निर्भयता में अपना सानी नहीं रखते थे। जैसे वे निर्भय केहरि समान अविचल जिमि हिमाचल थे वैसा ही उनका 'इण्डियन ओपिनियन' भी था। आगे चलकर यह पत्र लखनऊ के पत्र 'एडवोकेट' में मिल गया। फिर भी मालवीयजी उसे अपना सहयोग निरन्तर देते रहे।

परन्तु मालवीयजी तो अपना निज का पत्र चाहते थे और वह भी हिन्दी में जो जन-साधारण की बातें बोल सके। यह वह समय था जब अंग्रेजी का बोल-बाला था। लोग अंग्रेजी रहन-सहन बोल-चाल वेश-भूषा के विकृत अनुकरण ही में गौरव का अनुभव करते थे। यह वह समय था जब

> यूरोप-बादर हुए वतन अपनो कर ली। 1
> मरे जनम की तमन्ना में खुदकुशी कर ली॥
>
> 1 अकबर

समाज का प्राचीन एवं मंगलमय बन्धन शिथिल हो रहे थे और ढोंग उसका स्थान ले रहा था। प्राचीन भारतीय पद्धति के अनुसार चले हुए सब प्रकार की नींव जर्जर हो चुकी थी। आत्म-सम्मान को लोग भूल चुके थे। भारतीयता केवल स्मृतिमात्रावशेष रह गया था। ऐसा भी कोई मर मिटने की चीज़ है यह लोग जानते ही न थे ऐसा गूढ़ विषय मुझ-अज्ञानी न कहा है —

नजर समाए की क्या, कहीं भी हो तो तरस आये।
अभी माया नहीं जिनकों को आने-आशियां होना।

अब यही नहीं मालूम था कि आशियां क्या चीज है तो आने आशियां होने की बात कब हो सकती है? ये सब समस्याएं मालवीयजी को चैन से सोने नहीं देती थीं।

अभ्युदय

ऐसे वातावरण में सन् १९०७ में वसन्त-पंचमी के दिन 'अभ्युदय' का उदय हुआ। मेरे गुरुदेव हिन्दी के युगप्रवर्तक पं० मालवीयजी के अभिन्न मित्र पं० बालकृष्ण भट्ट ने इस पत्र का नामकरण किया। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि उस समय कुछ लोगों ने इस नाम की बहुत हंसी उड़ाई थी। लोग इसे मजाक में 'अबुदा' ए बेहया कहते थे। इन बेचारों की दो कठिनाइयाँ थीं। एक तो इस संस्कृत शब्द का उच्चारण करना उनके लिए कठिन था। दूसरे इस केठिन शब्द के अर्थ समझने के लिए उन्हें कोश की आवश्यकता थी। उर्दू-फारसी का बोझ लादा था। 'बोगराते शिकिस्ता शिरियाने करीमी में मोहतबिस हो गये हैं' का समझ लेना उनके लिए अधिक सरल था। 'अभ्युदय' के अर्थ को समझ पाना उनके बूते की बात न थी। मातृभाषा को हिन्दी की चिन्ता भी सताये रहती थी। इन सबों को राह पर लाने के लिए 'अभ्युदय' एक माध्यम हो गया। बड़ी लगन से उन्होंने पत्र का सम्पादन किया। दो वर्ष बाद मालवीयजी प्रान्तीय कौंसिल के मेम्बर हो गये और उन्होंने 'अभ्युदय' का भार स्वयं (भारतरत्न राजर्षि) पुरुषोत्तमदास टंडन के हाथों में सौंप दिया। उसके बाद थोड़े समय तक पण्डित सत्यानन्द जोशी और तदनन्तर १९१० में मालवीयजी के भतीजे पं० कृष्णकान्त मालवीय स्थायी रूप से 'अभ्युदय' के सम्पादक हो गये। कृष्णकान्तजी एक जोरदार और

सुयोग्य सम्पादक थे। वे मेरे मित्र थे। सामाजिक बातों में उनके विचार बड़े उदार थे और 'अभ्युदय' में व सामाजिक बुराइयों की बड़ी कटु आलोचना करते थे। राजनीतिक समस्याओं पर व अपने गम्भीर विचार बड़ी निर्भीकता से लिखते थे। इतना सब होते हुए पत्र की नीति एवं मर्यादा का निर्देशन तो मालवीयजी व्यस्त होते हुए भी निरन्तर करते ही रहते थे। कृष्णकान्तजी का स्वभाव और उनके विचारों को देखते हुए यह बात कुछ ऐसी थी जैसे किसी मुंहजोर घोड़े की लगाम किसी फूंक फूंककर पांव रखनेवाले सारथी के हाथों में हो। अतएव कृष्णकान्तजी को जी भर कर अपने हृदय के उद्गारों के व्यक्त करने का अवसर न मिलने पाया। और यदि वे कभी ऐसा कर बैठते थे तो उन्हें मालवीयजी से सख्त सुस्त सुननी पड़ती। इस सम्बन्ध में विशेष न कहकर मैं दो पत्रों को नीचे प्रकाशित करता हूं। एक पत्र है मालवीयजी का कृष्णकान्तजी के नाम और दूसरा उनका उत्तर है। दोनों ही पत्र बड़े महत्व के हैं अतः कुछ लम्बे होते हुए भी दोनों को पूर्णतया उद्धृत करता हूं। कृष्णकान्तजी ने अभ्युदय में विधवाओं की समस्या पर एक अग्रलेख लिखा था जो मालवीयजी को पसन्द नहीं आया क्योंकि उन्हें उसमें कई बातें अपने सिद्धान्तों के विपरीत समझ पड़ीं। उसे पढ़कर उन्होंने कृष्णकांत को यह पत्र लिखा था। ये पत्र मुझे पं० कृष्णकान्तजी के सुपुत्र पण्डित पद्मकान्त मालवीय के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं और प्रयाग नगरमहापालिका के संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

मालवीयजी का पत्र

१—चि० कृष्ण

पिछली रात हमने स्वप्न देखा था कि अभ्युदय प्रेस में एक भयंकर आग लग गयी है। अग्नि का ज्वाला प्रचंड वेग से ऊपर

आ रही थी। इस समय हाथ में आये हुए २१ संख्या के अभ्युदय को पढ़कर जो वेदना हमको हुई वह उससे बहुत अधिक है जो स्वप्न में प्रेस को जलता देखकर हुई थी। यदि पिछली संख्या का प्रधान लेख छपने के पहिले प्रेस भस्म हो गया होता तो हमको उतना दुःख न होता जितना इस लेख को अभ्युदय में छपा देखकर हुआ है। यदि पत्र को बन्द कर देने से हमारा प्रायश्चित्त हो सकता तो हम पत्र को तुरंत बन्द कर देते किन्तु वह भी नहीं हो सकता। जब तक हम जीते हैं तब तक तुमको अभ्युदय या मर्यादा में ऐसे भाव प्रकाश करना नहीं उचित है जिनके कारण हमको समाज के सामने अपराधी बनना और लज्जित होना पड़े। तुम समाज का हित चाहते हो। समाज की सेवा किया चाहते हो। किन्तु समाज कभी तुम्हारी सेवा न स्वीकार करेगा—तुमको सेवा का अवसर ही न देगा—यदि तुम मर्म की बातों में समाज की मर्यादा का पालन न करोगे और समाज को मर्मवेधी वचन सर्वसाधारण में कह दुःखित और लज्जित करोगे। जो बातें घर में बैठकर धीरता और दुःख के साथ विचारने की हैं उनको इस रीति से इन शब्दों में पत्र में प्रकाश करना अक्षम्य अपराध है।

ब्रह्मचर्य का उत्साह प्रशंसनीय है—किन्तु यदि वह भाषा और मर्यादा के भीतर रहे। जो उत्साह की बाढ़ में विवेक और विचार को बह जाने दोगे तो कुछ भी उपकार नहीं कर सकोगे। हमें आशा है कि आगे तुम ऐसी शोचनीय भूल न करोगे। सहस्रों घावों पर मरहम लगाना—सहस्रों विषों का ज़हर समाज के शरीर से निकालना—सहस्रों औषधियों व और आहार के प्रभाव से उस शरीर को पवित्र और पुष्ट बनाना है। परन्तु यह सब तभी संभव है जब मर्यादा का पालन करते समाज का आदर और मान मन में प्रधान रक्खा करोगे और औरों को दुःखी न करके का उपदेश करोगे।

हम एक लेख भेजते हैं। इसको आगे की संख्या में—जो आगामी शनिवार को–२० जून को–छपेगी, छपवा दो। हिचकना मत। इससे कम में काम नहीं हो सकता। इतना करने पर भी समझेगा कि नहीं यह निश्चय नहीं। दूसरी संख्या के लिए फिर लेख भेजेंगे।

तुम्हारा
मदनमोहन

१७-६ १४

उर्दू मरामार भी थोड़ा कम उद्धृत किया करो।

कृष्णकान्तजी का उत्तर

प्रयाग
१८ ६ १४

*बाबू,

कृपापत्र मिला। आपको व्यथा पहुँची इसका हमें बहुत दुःख है किन्तु इतना कहने के लिए हम अब भी क्षमा चाहते हैं कि अपनी समझ में हमने भग में कोई अनुचित बात नहीं लिखी। लेख तीव्र है कटु है, एक दो स्थानों पर वह सीमा को लाँघ गया है किन्तु इस सबका एकमात्र उद्देश्य यही था कि लोगों को चोट पहुँचे हथौड़े की चोट से वे जागें और कर्तव्य पथ के निश्चय करने पर वे उद्यत हों। इस सम्बन्ध में हम एक लम्बा भूमिका की भाँति इस अंक के पहिले लिख चुके हैं। हमने उसमें साफ-साफ लिख दिया था कि विधवा दशा सुधार के दो ही उपाय हैं एक तो वैवाहिक अवस्था को बढ़ाना दूसरे विधवा-आश्रमों का स्थापित करना। आपको मालूम होगा कि एक विधवा-आश्रम के स्थापित करने के लिए हम उद्योग

---

*मालवीयजी के परिवार के उनसे छोटे व्यक्ति उन्हें "बाबू" के सम्बोधन से पुकारा करते थे।

Γ

कर रहे हैं। बल्कि उसके लिए लोकमत तैयार करने को हम ये लेख निकाल रहे हैं। विधवा-विवाह के लिए कभी एक शब्द हमने नहीं लिखा है। इसका यह मानी नहीं है कि सभी अवस्थाओं में वह अनुचित है। हमने उसके लिए कभी कुछ नहीं लिखा। उसका एकमात्र कारण यही है कि हम इस बात को जानते और समझते हैं कि जनसाधारण के बीच में रहकर ही हम अधिक उपकार कर सकते हैं। साथ ही साथ हम समझते ही नहीं वरन् मानते भी हैं कि यदि हम जनसाधारण से दूर चले जायँगे या जाने लग जायँगे तो हमारा कार्यक्षेत्र संकीर्ण हो जायगा और हम अधिक उपयोगी काम न कर सकेंगे और उपकार भी कुछ न कर सकेंगे। बम्बई वाले लेख में टिप्पणियों के लिए स्थान था उसके व्याख्या की आवश्यकता थी वह हम आधी के करीब लिख चुके थे और दूसरी संख्या में वह सब प्रकाशित हो जाता। संभव था उसे पढ़कर लोग यही समझते कि यह आपका या लालाजी (लाला लाजपत राय) का लिखा हुआ है। अस्तु अब आपका भेजा हुआ लेख इस संख्या में प्रकाशित होगा। सम्भव होता आप यहाँ होते तो इसमें हम आपही से फेर फार करा लेते। बातें सब वे ही रहतीं, शब्द सब वे ही रहते केवल ढंग बदल जाता, साथ ही साथ अभ्युदय की बात चौगुनी जोर की हो जाती। अब जिस तरह से लेख छप रहा है उसे पढ़ते ही लोग समझेंगे कि यह आपका लिखा हुआ है और आप [illegible] कर रहे हैं। अस्तु। आप यह न समझें कि अभ्युदय या मर्यादा में कभी भी कोई वास्तविक सनातन धर्ममूलक सिद्धान्त के विरुद्ध कोई बात कभी जान में प्रकाशित होगी। इन सब लेखों के लिखने का एक प्रधान कारण यह भी है कि हम यथाशक्ति अवस्था को बदलना चाहते हैं। प्रश्न जो थे उसमें साफ-साफ लिखा था कि मुख्य में आप विधवा दीक्षा को सुगम बनाना।" लेख में जहाँ दूसरा नम्बर है यह साबित किया था वहाँ भी यही लिखा

गया था कि उसे अच्छी परिस्थिति में रहने का सौभाग्य न था पर शिक्षित न थी आदि।

मालवीयजी के उपर्युक्त पत्र से उनके हृदय की एक ऐसी झाँकी मिलती है जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं हो सकती।

प्रारम्भ में तो 'अभ्युदय' साप्ताहिक ही निकलता था परन्तु 'भागवान का खेत सूत ओढ़ता है'। कृष्णकान्तजी जैसा प्रतिभाशाली सम्पादक पाकर वह सन् १९१२ में दैनिक हो गया। दैनिक पत्र का सम्पादन कोई हँसी-खेल नहीं। संचालक एवं सम्पादक दोनों ही को दाँतों पसीने आते हैं। यह हाल विशेषकर हिन्दी दैनिक पत्रों का है सिवाय इसके कि उसके पीछे कोई पूँजीपति हो। इसके अभाव में हिन्दी दैनिक का भगवान् ही मालिक होता है। यद्यपि अभ्युदय के पीछे मालवीयजी थे तथापि वे पूँजीपति नहीं थे। इतना अवश्य है कि मालवीयजी के जरा सी जबान हिला देने से पूँजीपति लोग अभ्युदय की आर्थिक व्यवस्था पूर्णरूप से कर देते पर मालवीयजी अपने पत्र के लिए ऐसा करना अपनी मर्यादा के प्रतिकूल समझते थे और ऐसा उन्होंने कभी नहीं किया। पर कृष्णकान्तजी हतास नहीं हुए। अभ्युदय के कारण उनके सामने जो-जो आर्थिक तथा अन्य कठिनाइयाँ आईं और जिस प्रकार कृष्णकान्तजी ने उनका सामना और निराकरण किया उनसे थोड़ा बहुत मैं परिचित हूँ। जब मालवीयजी की बाल्यावस्था में उनकी पढ़ाई का समापन उनकी माता सौभाग्यवती मूनादेवी ने अपने हाथ के कड़े को गिरवी रख कर दिया था तो ऐसी विषम परिस्थिति में सौभाग्यवती न होते हुए भी कृष्णकान्तजी की पुत्र-वत्सला माता श्रीमती पवित्रादेवी ने अपने तन पर के गहने न्योछावर कर अभ्युदय को सम्हाल लिया यह कोई आश्चर्य की बात न थी।

कृष्णकान्तजी भी तो अपनी धुन के पक्के थे। हिन्दी के मान्य प्रतिष्ठ महाकवि ठाकुर गोपालशरणसिंह के शब्दों में उनका भी तो सिद्धान्त था कि

करते जाओ जो करना है
आँधी आती है आने दो।
लहरों को भय दिखलाने दो।
हिमनगों को टकराने दो।
नाविक ! न रोकना नाव कभी।
सागर के पार उतरना है।
करते जाओ जो करना है।

इस प्रकार अभ्युदय की गाड़ी मन्थर व ऊबड़-खाबड़ किसी तरह निकल गई और आपत्तियों में निमग्न अभ्युदय बाहर निकल आया यथा

विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः
कलश इव गरीयान् दिग्भिराकृष्यमाणः।
कृतचपलविहङ्गालापकोलाहलाभि-
र्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः॥

माघ-शिशुपालवध ११—४४

भावार्थ—समुद्र के अगाध जल राशि में निमग्न जैसे लम्बी रस्सियों के सहारे डूबा हुआ भारी कलश निकाला जाता है वैसे सूर्य बाहर निकल आया।

अभ्युदय की आर्थिक समस्या इस प्रकार मन-चाहे हल हो गयी। बाहर वालों को कुछ पता न चल पाया कि कब क्या हुआ और कैसे हुआ। यहाँ तक कि मालवीयजी तक को कुछ पता न था। वे दिल्ली में थे। जब प्रयाग आये तो उन्हें पता चला कि

'सीने के दाग बन उठे क्या दिल के दाग थे।
इस घर में आग लग गई घर के चिराग से॥

वे बहुत दुखी हुए। पर जो कुछ होना था वह तो हो चुका था। केवल थोड़ा सा आंसू गिराकर चले गये।

पं० कृष्णकान्त मालवीयजी सामाजिक मामलों में तो मालवीयजी से थोड़ा-बहुत समझौता कर सकते थे परन्तु राजनीतिक विषयों पर उनके विचार बड़े उग्र थे। अतः मालवीयजी से उनकी पटरी खाना असम्भव हो गया और वे सन् १९ में त्यागपत्र देकर बम्बई चले गये। उस समय से लेकर सन् १८ तक अभ्युदय के सम्पादकत्व का भार पण्डित वेंकटेशनारायण तिवारी ने लिया। परन्तु सन् १९ के प्रारम्भ में मालवीयजी ने कृष्णकान्तजी को फिर बुला लिया और अभ्युदय उन्हें सौंप दिया।

भाँग मलम तो सहज है महर कठिन पै होय' पत्र का निकाल देना तो सहल होता है पर उस कठिनाइयों के बीच से ले के जाना कठिन हो जाता है। अभ्युदय निकला तो लेकिन बहुत सर्वीला पड़ा। जब तक मालवीयजी या पुरुषोत्तमदास टण्डन जी तथा अन्य सज्जन उसका सम्पादन करते थे मालवीयजी उसकी आर्थिक व्यवस्था यथासम्भव छोड़ देने पर भी कभी कभी एक-आध मुकदमा लेकर कर दिया करते थे। पर जब से वह १९१० में पं० कृष्णकान्त मालवीयजी के सम्पादकत्व में आया वह भी दर्वाजा बन्द हो गया क्योंकि मालवीयजी ने देश एवं समाज के इतने काम एक साथ बाँध लिये थे कि अभ्युदय की किसी प्रकार की सहायता नहीं कर पाते थे। परिणाम यह हुआ कि कृष्णकान्तजी ही को सब कुछ भुगतना पड़ता था। जब प्रेस का स्थायी व्यय ही बड़ी कठिनता से चल जुट पाता था तो सम्पादक के पारिश्रमिक का प्रश्न कहां उठ सकता था? यद्यपि मालवीयजी ने कृष्णकान्त जी से यह कह दिया था कि तुम पचास रुपया मासिक अथवा पारिश्रमिक से लिया करो लेकिन इतना कम पारिश्रमिक लेने की भी नौबत कभी न आयी। कृष्णकान्त जी के पीछे गृहस्थी का पुछल्ला बँधा था।

कूप तो उनका उपाय करना ही था। अतः सन् १० के अन्त में उन्होंने 'मर्यादा' नाम की एक मासिक पत्रिका निकाली जो मालवीयजी व टंडनजी से पूर्ण स्वतन्त्र थी। कृष्णकान्तजी का गृहस्थी का रथ चलाने के अतिरिक्त अपने दिल का गुबार निकालने का एक माध्यम हो गया। पण्डित बालकृष्ण भट्ट ने इस पत्रिका का नामकरण किया और उसके मुखपृष्ठ के लिए निम्नलिखित श्लोक भी चुन दिया जो सदा उसपर छपता रहा —

नीरक्षीरविवेके हंसालस्यं त्वमेव तनुषे चेत्।
विश्वस्मिन्नधुनान्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः॥

पण्डितराज जगन्नाथ

(हे हंस! यदि जल और दूध का अन्तर समझने में तुम्हीं प्रमाद करोगे तो फिर और कौन तुम्हारे इस वंश परम्परागत अधिकार का पालन करेगा?)

यद्यपि 'मर्यादा' की आर्थिक व्यवस्था अपने ही परों पर नहीं थी तथापि मालवीयजी की अनुमति से वह अभ्युदय प्रेस में ही छपती थी। सब लोग जानते हैं कि गम्भीर होते हुए भी मालवीयजी बड़े विनोदप्रिय थे। जब ही पत्रिका का प्रथम अंक निकला उन्होंने ईरन् हास्य में कहा 'लो, अभ्युदय प्रेस से मर्यादा निकल गयी।' कृष्णकान्तजी ने तुरन्त उत्तर दिया 'हाँ, पर वह स्थायी होगी और वह देश और समाज के हित में होगी।' १० वर्ष तक कृष्णकान्त जी ने उसका भी बड़े ठाट-बाट से सम्पादन किया। एक साथ दो बच्चों को दूध पिलाये और दोनों पुष्ट दिखाई पड़ें कठिनता से हो पाता है परन्तु मालवीयजी महाराज का भी तो सदा कुछ काम करने के लिए [illegible] गया था। उन्होंने १९१७ में किसानों की दशा सुधारने के लिए एक योजना बनायी और उसके लिए एक सभा की स्थापना की। उसके लिये भी तो

एक मुखपत्र की नितान्त आवश्यकता थी। अतः सन् १६२१ में उन्होंने अभ्युदय प्रेस से ही साप्ताहिक किसान निकाला और कृष्ण कान्तजी को उसका सम्पादक बनाया। इसीसे आप समझ सकते हैं कि मालवीयजी को उनकी कर्मठता एवं योग्यता पर कितना भरोसा था। उस्ताद का एक शेर याद आता है :—

मुझसे कहता है ये जुल्माल जफा कर जालिम
हम सिवा तेरे किसी से भी सितम करते हैं ?

अब आप पर शान सखाँ के दूध पिलाने का भार पड़ गया जिसमें एक अभ्युदय रोज तड़के उठकर दूध के लिए चिल्लाता था। पर आप की शक्ति भी तो सीमित थी। वह सुरभि तो थी नहीं। अतः काशी के बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने दस वर्ष तक बड़े लाड़ से पाली-पोसी मर्यादा को गोद ले लिया। मर्यादा के प्रकाशन के आरम्भ में मालवीयजी की हंसी में कही हुई बात (मर्यादा अभ्युदय प्रेस से निकल गयी) एक दूसरे अर्थ में चरितार्थ हो गयी।

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति ॥

भवभूति

(सांसारिक साधु लोग अर्थ का अनुसन्धान कर बाद में कुछ कहते हैं। परन्तु ऋषि लोग आगे होने वाली बात को पहले ही से कह देते हैं।)

शिवप्रसाद गुप्तजी के पास आने पर बाबू सम्पूर्णानन्दजी एवं प्रेमचन्दजी ने उसका सम्पादन दो तीन वर्ष या उससे कुछ अधिक किया। फिर वह बन्द हो गयी।

मीटर

सन् १६०५ की बात है। उस समय लार्ड कर्जन ने बंगाल के दो टुकड़े कर दिये थे। इसका राजनीतिक विवेचन इस लेख का ध्येय

नहीं है। इतना कहना पर्याप्त होगा कि लार्ड कर्जन के इस कुकृत्य ने सोते हुए, भूखे 'रायल बंगाल टाइगर' को जगा दिया

सोते हुए उसको जगाना, एक चीता को
जागे हुए उसको भूलना एक काल का।

सम्पूर्ण भारत में, एक कोने से दूसरे कोने तक इस अपमान का बदला लेने की प्रतिक्रिया भड़क उठी।

पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः॥

माघ शिशुपालवध

जब धूल ऐसी मामूली चीज पर पड़ने से उड़ कर सिर पर चढ़ जाती है तब यदि अपमान होने पर मनुष्य चुप बना रह जाय तो वह धूल से भी अधिक गया गुजरा है। तब स्वाभिमानी भारतीय भला कब इस तरह के घूंट को पी सकते थे। इसका परिणाम जो कुछ हुआ सब जानते हैं।

देश की ऐसी परिस्थिति में एक दैनिक हिंदी पत्र निकाला जाना अनिवार्य हो गया। प्रयाग के दैनिक 'अभ्युदय' के प्रकाशन के पीछे एक छोटा-सा इतिहास है जिसका उल्लेख मालवीय जी की पत्रकारिता के मर्म को समझने के लिए आवश्यक है।

सन् १८८५ के पहिले की बात है। पण्डित [illegible] चार्टर्जी 'इण्डियन ओपीनियन' नाम का अंग्रेजी में एक साप्ताहिक पत्र निकालते थे। उनका [illegible] अन्त तक वे ही इसका सम्पादन करते थे। उस पत्र का सारा प्रबन्ध भी उन्हीं को करना पड़ता था। वृद्ध हो चुके थे। उनके लिए यह कठिन समस्या थी।

इस मेहनत का नतीजा यह हुआ कि वे अस्वस्थ हो गए और पत्र का सम्पूर्ण भार उन्होंने अपने शिष्य के ऊपर छोड़ दिया। इस प्रकार सन् १८८५ में मालवीय जी ने उसका सम्पादन अपने हाथ

में ले लिया और सन् १० तक बड़ी लगन से करते रहे। तदनन्तर १८६० में उन्होंने उक्त पत्र को पण्डित अयोध्यानाथ जी को सौंप दिया। सन् १८६२ में उक्त पण्डितजी के देहावसान के पश्चात् लखनऊ के बाबू गंगाप्रसाद वर्मा उसे लखनऊ ले गये। वह उनके पत्र 'एडवोकेट' में मिला दिया गया।

इसके थोड़े ही समय बाद श्री सी० वाई० चिन्तामणि मद्रास से प्रयाग आये और सीधे मालवीयजी के पास गये। थोड़ी ही देर बातचीत करने बाद मालवीयजी समझ गये कि यह तो अन्तःप्रसुप्तदहन ज्वलदिव वनस्पति उस शमी वृक्ष के समान है जिसके भीतर अग्नि दहकती रहती है, यद्यपि ऊपर से नहीं पता चलता। मालवीयजी बड़े गुणग्राही थे। उनमें यह बहुत बड़ी विशेषता थी कि गुणज्ञों को चुम्बक पत्थर की तरह आकृष्ट कर अपनी ओर खींच लेते थे। भवभूति के शब्दों में 'आयोधात् महत् परिलघुरयस्कान्तशकलम्' (जैसे छोटा सा चुम्बक-पत्थर का टुकड़ा लोहे को अपनी ओर खींच लेता है) चिन्तामणि मालवीयजी के अतिथि हो गये। वे दिन मुझे अच्छी तरह से याद हैं।

जब चिन्तामणि मालवीयजी के अतिथि थे तो उनका पुराना नौकर 'बेनिया' चिन्तामणि के भोजन इत्यादि का प्रबन्ध करता था। दिक्कत यह थी कि चिन्तामणि हिन्दी बिलकुल नहीं बोल पाते थे और बेनिया उनकी भाषा नहीं समझता था। परन्तु इशारे से और टूटी-फूटी 'हाँ' 'नहीं' 'अच्छा' से सब बुरे काम चल जाता था। आगे चल कर जब कभी चिन्तामणि मालवीयजी से मिलने जाते और बेनिया सामने पड़ जाता तो बेनी से इशारे से अवश्य पूछते 'कहो मजे में हो ?' फिर बेनिया इशारे से पूछता 'अब हमरे देश का भोजन करना सीख गये कि नहीं ? का अबो गप मिलाय जुमाय के खात हो ?' यह दोनों तरफ से इशारेबाजी देखने लायक होती थी। चिन्तामणिजी हाथ और सिर हिलाकर बता देते कि हाँ

खीस गये। फिर खेमिया कहता "पान तो अब बहुत स्वाद लगेगा।" इस पर चिन्तामणिजी खिलखिलाकर हँस देते थे।

चिन्तामणिजी बड़े विनोद-प्रिय थे। थोड़ा विषयान्तर होता है परन्तु बिना इसे कहे जी नहीं मानता। उस समय चिन्तामणिजी कौंसिल के मेम्बर थे। कौंसिल के सामने अर्थ मंत्री मिस्टर ब्लंट बजट पेश कर रहे थे। इतनी जिम्मेदारी के पद पर भी वे आराम से जिन्दगी बिताना जानते थे। उनका सक्रेटेरियट उनके सामने पढ़ी-पढ़ाई रिपोर्ट रख देता था और वे उसे कौंसिल के सामने पढ़ देते थे और फिकरों ही से मेम्बरों का मन बहलाये रहते थे। इसी की रोटी खाते थे। परन्तु चिन्तामणिजी उन आदमियों में नहीं थे जो चुपचाप, परसी हुई थाली को सीधे से खा लें। बजट पेश होते ही चिन्तामणि ने बहुत से आँकड़ों पर तर्क आरम्भ कर दिया। मिस्टर ब्लंट को जब कोई जवाब न आया तो हँस कर बोले "Mr Chintamani, I can supply facts to you but not brains" (चिन्तामणिजी मैं आपको तो आँकड़े दे सकता हूँ मस्तिष्क नहीं।) चिन्तामणिजी ने उसी प्रकार तुरन्त मुँहतोड़ जवाब दिया "Mr Blunt, I don't expect any thing from you which you don't possess" (मिस्टर ब्लंट मैं आपसे उस चीज की आशा नहीं करता जो आपके पास है ही नहीं।) मेम्बर लोग हँस पड़े और ब्लंट साहब झेंप गये। बात खत्म हो गयी।

चिन्तामणिजी स्वयं एक सिद्धहस्त पत्रकार थे। प्रयाग आने पर इण्डियन पीपुल नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकलने लगा। मालवीयजी ने इसमें उनकी बड़ी सहायता की। वे उसमें बराबर लिखते रहे। बाद में जब लीडर निकला तो इण्डियन पीपुल उसमें सम्मिलित हो गया। आज भी 'लीडर' के प्रथम पृष्ठ पर लीडर के नीचे लिखा रहता है "Incorporating the

Indian people (जिसमें इण्डियन पीपुल सम्मिलित है।)

मालवीयजी की प्रेरणा एवं उद्योग से प्रयाग में २४ अक्टूबर सन् १६०६ को विजयादशमी के पुनीत दिन लीडर नदी सच-पथ से निकला। उसका ध्येय था —

> विषमोऽपि विगाह्यते नयः कृततीर्थः पयसामिवाशयः।
> स तु तत्र विशेषदुर्लभः सदुपन्यस्यति कृत्यवर्त्म यः॥

भारवि किरातार्जुनीय। २ ३

(राजनीति एवं लोकयात्रा कठिन होने पर भी उस जलाशय के अवगाहन के समान सुलभ है जिसमें घाट बना दिया गया है। दुर्लभ तो वह है जो उसमें घाट बना देता है और मनुष्य को उसका कर्तव्य-पथ बताता है) मालवीयजी ने इसी हेतु से 'लीडर' की व्यवस्था की। उसकी नीति जहाँ तक मैं समझता हूँ यदि मार्ले मरविन के शब्दों में कही जाय तो यह थी

Patience in politics as in boot laces will untie many knots which haste will only tend to confound and confuse"

(राजनीति में धैर्य—जैसे जूते के फीते में—बहुत सी गुत्थियों को सुलझा देता है जो उतावली करने से और उलझ जाती हैं)

लीडर के निकलने पर कुछ लोगों ने इस पर बड़े-बड़े फिकरे कसे। कोई The Leader का दमिद्दर कहता था। कोई कुछ कहता था, और कोई कुछ।

परन्तु लीडर अभी पैदा हुआ था पर कमजोर थे

> "जोफ में ताने अग्यार का शिकवा क्या है।
> बात कुछ सर तो नहीं है कि उठा भी न सकूं"॥

गालिब

उन पर अनेक कठिनाइयाँ आयीं और टल गयीं।

उसका इतिहास जो मालवीयजी ने लीडर में नयी मशीन लगाने के समय बयान किया था उसे हम ज्यों का त्यों उद्धृत करते हैं —

लीडर के स्थापित होने के पूर्व एक दैनिक समाचार पत्र की इलाहाबाद में बड़ी आवश्यकता थी। सन् १८०१ ई० में स्वर्गीय पण्डित अयोध्यानाथ जी ने 'इण्डियन हेरल्ड' निकाला था और उस पर बड़ा धन व्यय किया। वह पत्र तीन वर्ष तक चला और दुर्भाग्यवश उसके बाद बन्द हो गया। लीडर के स्थापित होने का एक यह कारण भी था। मैंने वकालत छोड़ने का निश्चय कर लिया था और उस समय मेरा यह विचार था कि सार्वजनिक कार्यों से भी अलग हो जाऊँ जिसमें हिन्दू विश्वविद्यालय का काम और अच्छी तरह से कर सकूँ। उस समय मेरे मन में आया कि यदि मैं सार्वजनिक जीवन से बिना एक पत्र स्थापित किये अलग होता हूँ तब मैं अपने प्रान्त के प्रति अपने धर्म को नहीं निबाहता हूँ। इसकी आवश्यकता इतनी अधिक और अनिवार्य जान पड़ी कि मैंने विचार किया कि सार्वजनिक जीवन से अलग होने के पहिले एक पत्र अवश्य यहाँ स्थापित हो जाना चाहिए। मैंने इसका कुछ मित्रों से जिक्र किया और उन्होंने प्रसन्नता से उसके लिए धन दे दिया। आरम्भ में इसके लिए चौबीस हजार रुपया जमा हुआ। रुपया दैनिक पत्र चलाने के लिए बहुत कम था। लेकिन मुझे उन मित्रों पर विश्वास था जिन्होंने सहायता करने का वादा किया था और वह आशा सफल भी हुई। लीडर ने निष्पक्ष भाव से काम किया और प्रान्त की बड़ी सेवा की है। हमारे और लीडर के विचारों में मतभेद रहा है और रहेगा लेकिन उसके कारण उसकी सेवा में सन्देह नहीं हो सकता। शायद ही कोई ऐसा पत्र हो जो अपने मित्रों के विचारों को सारे प्रश्नों पर प्रकट कर सके। श्री चिन्तामणि और पण्डित कृष्णराम मेहता लीडर की [illegible] भी

दोनों से बाँटकर उसे चलाने का सौभाग्य प्राप्त किया है। लीडर के बढ़ते हुए प्रभाव का और उसकी सेवाओं को सारे प्रान्त ने स्वीकार किया है। आपको याद होगा जब असहयोग आन्दोलन का आरम्भ हुआ तब मेरे मित्र पण्डित मोतीलाल नेहरू ने इंडिपेंडेंट पत्र चलाया जिसमें वे अपने विचारों को और 'लीडर से मतभेद रखने वाले विचारों को फैला सकें। उस पर दो लाख पचास हजार रुपया खर्च किया गया जिसमें एक लाख स्वयं पण्डित मोतीलाल ने दिया और पचास हजार श्री जयकर ने दिया था। सरकारी अधिकारियों ने भी यह बात स्वीकार की कि लीडर सार्वजनिक प्रश्नों पर न्यायोचित दृष्टि से विचार करता है।

'लीडर' निकलने को तो निकल गया, श्री नगेन्द्रनाथ गुप्त और श्री चिन्तामणि उसके सम्पादक-मण्डल में नियुक्त हुए, पर 'लू ट' के बस बछड़ा नाच। उसकी आर्थिक व्यवस्था का खूँटा अभी इच्छा से जम न पाया था। त्रिपाठी कहते थे कि

अचिराधिष्ठितराज्यः शत्रुः
प्रकृतिष्वरूढमूलत्वात् ।
नवसंरोहणशिथिल
स्तरुरिव सुकरः समुद्धर्तुम् ॥

कालिदास-मालविकाग्निमित्र

(जो शत्रु अभी राजसिंहासन पर बैठा हो और जो प्रजा के हृदय में अपनी जड़ न जमा सका हो वह नये लगाये हुए पौधों के समान सरलता से उखाड़ा जा सकता है।)

जन्म लेने के साथ ही दो वर्ष के भीतर मूलधन समाप्त होने पर आ गया। जब बैंक में केवल पाँच हजार रुपया बच रहा (पौने तीन लाख रुपये से ही तो यह आरम्भ हुआ था) तो डायरेक्टरों ने उसकी अन्त्येष्टि क्रिया करने का निश्चय कर लिया। पर मार

चिन्तामणिजी के मुख से इन शब्दों के निकलने से कि 'the Leader will no die' (लीडर नहीं मरेगा) डायरेक्टरों में नयी प्रेरणा और स्फूर्ति आ गयी और चला टल गयी। इसका श्रेय पत्र के अन्नदाता मालवीयजी को है। यह न भूलना होगा कि वह लीडर का सब प्रकार उपकार उपादान बन गया है। तदनन्तर लीडर दिन दूना रात चौगुना उन्नति करता चला गया।

पण्डित मोतीलाल नेहरू स्वर्गवास लिमिटेड के अन्यतम लीडर के सर्वप्रथम चेयरमैन हुए। उनके बाद पण्डित मदनमोहन मालवीयजी दस वर्ष तक चेयरमैन रहे। तदनन्तर सर तेजबहादुर सप्रू, श्री सच्चिदानन्द सिनहा इत्यादि अनेक सम्भ्रान्त व्यक्ति इसके चेयरमैन हुए। इन सब के होते हुए लीडर के प्राण थे श्री सी० वाई० चिन्तामणि और पं० कृष्णराम मेहता। ये ही दोनों व्यक्ति उसके पूर्णरूप कर्णधार थे। मिलकर काम करने वाले थे।

कभी-कभी चिन्तामणि जी पंद्रह घंटे काम करते रह जाते थे। पहिली जुलाई सन् १९४१ को चिन्तामणिजी का देहावसान हुआ। ३० जून को ९ बजे रात्रि को अगले दिन के लीडर के लिए अग्रलेख लिख कर छोड़। यही उनकी महानिद्रा थी। उनकी मृत्यु का समाचार और मृत्यु के बाद का पूर्व लिखा हुआ अग्रलेख साथ साथ निकला।

चिन्तामणिजी के मरने से पण्डित कृष्णराम मेहता का दाहिना हाथ टूट गया। मालवीयजी का एक आधारस्तंभ चला गया। मैं तो उनसे यही कहूँगा कि

जाने वाला चल बसा पर अब तो—
याद कर घुट-घुट के मरने का गम हुआ।

कृष्णराम मेहताजी का भी देहान्त सन् १९४८ में हो गया। चिन्तामणिजी के मरने के बाद वे उन्हें ढूंढा करते थे।

जैसे—

अब तमन्ना बैठता हूँ अब मिटाई है पयाम।
जिन्दगी एक प्रश्न है बीता चला जाता हूँ मैं।

मई सन् १९४६ को प्रातःकाल उस दिन का लीडर पढ़ रहे थे। थोड़ी देर में उनके लड़के कमरे में आये तो देखते क्या हैं कि उनके पिता लीडर के मुखपृष्ठ पर अपना सिर टेके हैं। तुरन्त पता चल गया कि लीडर को यह उनकी अन्तिम श्रद्धांजलि है।
और, लीडर

Men may come and men may go
But I go on for ever

—Tennyson's Brook

(लोग चाहे आवें या जाय मैं हमेशा चलता रहता हूँ)

धर्मात्मा मालवीयजी

जब मनुष्य में बहुत से उत्कृष्ट गुणों का समूह होता है तब यह कह सकना कि उनमें कौन सबसे श्रेष्ठ है बड़ा कठिन होता है। सभी अपनी-अपनी प्रधानता के लिए जोर लगाते हैं और उनमें इतनी खींचा-तानी होती है कि निर्णायक बड़े असमंजस में पड़ जाता है और किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पाता। परन्तु यदि मुझे निर्णय करना ही पड़े तो मैं यही कहूँगा कि उनमें धर्म की प्रधानता थी। उनके अन्य गुणों को इस धर्म के झंडे के नीचे रहना पड़ता था। मालवीयजी सच्चे अर्थ में धर्मात्मा थे। 'आपस्तम्ब' के अनुसार उनके धर्म की व्याख्या थी

'यत् आर्याः क्रियमाणं प्रशंसन्ति स धर्मः'

(जिस कार्य को आर्य लोग कहें कि अमुक काम का करना प्रशंसनीय है वही धर्म है।)

जब महाभारत में यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा कि मनुष्य को

किस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए तो उसने तुरन्त उत्तर दिया —

वेदा विभिन्नाः स्मृतयो विभिन्ना
नासौ मुनिर्यस्य मतम् न भिन्नम् ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥

(धर्म क्या है इस पर सब वेदों का मत एक दूसरे से भिन्न है । स्मृतियों में इस सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है । जितने भी ऋषि और मुनि हैं वे धर्म की व्याख्या अपने-अपने ढंग से करते हैं । इन विभिन्न मतों के संघर्ष के कारण धर्म का तत्त्व अन्धकार में विलीन हो जाता है । ऐसी परिस्थिति में उसी मार्ग पर चलना चाहिये जिसका महाजन (बड़े लोग) अनुसरण करते हैं । वही धर्म है ।)

यही आपस्तम्ब के उपर्युक्त कथन की व्याख्या है । इसी धर्म का पालन महात्मा करते थे । वे कहा करते थे कि

अनुगन्तुं सतां वर्त्म कृत्स्नं यदि न शक्यते ।
स्वल्पमप्यनुगन्तव्यं मार्गस्थो नावसीदति ॥

(सत्पुरुषों के मार्ग का अनुसरण यदि मनुष्य किसी कारणवश पूर्ण रीति से नहीं कर सकता तो वह उस मार्ग पर थोड़ा ही थोड़ा चले । यदि वह उस मार्ग पर है तो उसको भय मानना नहीं होगा ।)

सन्मार्ग की व्याख्या आपस्तम्बजी के अनुसार इस प्रकार थी :—

सत्येनाचरणम् । अक्रोधेन क्रोधम् । ...
...। ... अपि ...। ...।
...।

(दान द्वारा कृपणता पर विजय प्राप्त करो। शान्ति द्वारा क्रोध पर विजय प्राप्त करो। श्रद्धा से अश्रद्धा पर विजय प्राप्त करो। सत्य से असत्य पर विजय प्राप्त करो। यही सन्मार्ग है। यही अमृत है। स्वर्ग की ओर जाओ। अमरता की ओर जाओ।)

इस अक्रोधेन क्रोधं पर एक बात याद आ गयी। सभी जानते हैं कि गुणों के भण्डार होते हुए भी मोतीलाल नेहरू में क्रोध की मात्रा अत्यधिक थी। वे विरोध सह नहीं सकते थे। कानपुर कांग्रेस में जब मालवीयजी उनके प्रस्ताव का विरोध करने के लिए खड़े हुए तो मोतीलालजी क्रोध मिश्रित होकर बोले। पण्डितजी ने महाभारत और भागवत कथा सुनी। मालवीयजी ने हँसकर तुरन्त उत्तर दिया, भाई मोतीलालजी ने यदि इन ग्रंथों को ध्यान और श्रद्धा से पढ़ा होता तो ऐसा न करते।" मोतीलालजी चुप हो गये। मालवीयजी के अक्रोध ने मोतीलालजी के क्रोध को जीत लिया।

मोतीलालजी मालवीयजी के अभिन्न मित्र थे फिर भी यह प्रकृति है कि एक तेजस्वी दूसरे तेजस्वी के तेज को सहन नहीं कर सकता।

किमपेक्ष्य फलं पयोधरान्
ध्वनतः प्रार्थयते मृगाधिपः।
प्रकृतिः खलु सा महीयसः
सहते नान्यसमुन्नतिं यया॥

भारवि

(बादलों के गर्जन को सुनकर जो सिंह दहाड़ता है तो क्या किसी फल की याचना करता है? नहीं। बड़े मानियों की यह प्रकृति है कि वे दूसरे का तेज सहन नहीं कर सकते।)

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के एक समारोह में श्री सी० वाई०

चिन्तामणि ने अपने वक्तव्य में यहाँ तक यह कहा था —

If Mr Mohan Das Karam Chand Gandhi can be called Mahatma Mohan Das Karam Chand Gandhi, Pandit Madan Mohan Malaviya can be aptly called Dharmatma Pandit Madan Mohan Malaviya.

(यदि श्री मोहनदास करमचन्द गांधी को महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी कहा जा सकता है, तो पण्डित मदनमोहन मालवीय को उपयुक्तता के साथ धर्मात्मा पण्डित मदनमोहन मालवीय कहा जा सकता है।)

महर्षि वाल्मीकि कहते हैं —

[illegible]।
[illegible] पुरुषोत्तम ॥

(अच्छा अथवा बुरा जो कुछ कर रहा है और मर्यादा न पालन करता है वह वीर पुरुष पुरुषोत्तम है।)

मालवीयजी एक वीर पुरुषोत्तम थे। गोस्वामीजी [illegible] कहें इसमें कौन सा आश्चर्य ?

गोस्वामीजी लिखते हैं —

न तो मालवीयजी [illegible] के पुजारी हैं, पुजारी [illegible] के वचन [illegible] जो कुछ [illegible] उस [illegible] का [illegible] मालवीयजी [illegible] सन् १८६० की [illegible] में [illegible] द्वारा किया था [illegible] विज्ञापन [illegible] पत्र [illegible] उसमें [illegible] माना जाय [illegible] भी [illegible] है [illegible] विचार में [illegible] है और — [illegible] मालवीयजी के [illegible] में कौन [illegible] कर सकता है। [illegible]

(दान द्वारा कृपणता पर विजय प्राप्त करो। शान्ति द्वारा क्रोध पर विजय प्राप्त करो। श्रद्धा से अश्रद्धा पर विजय प्राप्त करो। सत्य से असत्य पर विजय प्राप्त करो। यही सन्मार्ग है। यही अमृत है। स्वर्ग की ओर जाओ। प्रकाश की ओर जाओ।)

इस अक्रोधेन क्रोधं पर एक बात याद आ गयी। सभी जानते हैं कि गुणों के भण्डार होते हुए भी मोतीलाल नेहरू में क्रोध की मात्रा अत्यधिक थी। वे विरोध सह नहीं सकते थे। कानपुर कांग्रेस में जब मालवीयजी उनके प्रस्ताव का विरोध करने के लिए गए हुए तो मोतीलालजी बोल विक्षिप्त होकर बोले। पण्डितजी ने महाभारत और भागवत कथा सुनो। मालवीयजी ने हँसकर तुरन्त उत्तर दिया भाई मोतीलालजी ने यदि इन ग्रंथों को ध्यान और श्रद्धा से पढ़ा होता तो ऐसा न कहते। मोतीलालजी चुप हो गए। मालवीयजी के अक्रोध ने मोतीलालजी के क्रोध को जीत लिया।

मोतीलालजी मालवीयजी के अभिन्न मित्र थे फिर भी यह प्रकृति है कि एक तेजस्वी दूसरे तेजस्वी के तेज को सहन नहीं कर सकता।

कमलेषु कमाण्पयोधरान्
स्वनतः प्राथमन मृगाधिपः ।
प्रकृतिः खलु सा महीयसः
सहते नान्यसमुन्नतिं यया ॥

भारवि

(बादलों के गर्जन को सुनकर जो सिंह दहाड़ता है तो वह किसी फल की प्राप्ति करता है? नहीं। बड़े लोगों की यह प्रकृति है कि वे दूसरे का तेज सहन नहीं कर सकते।)

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के एक समारोह में श्री मा० मा॰

चिन्तामणि ने अपने वक्तव्य में पहिला वाक्य यह कहा था —

If Mr Mohan Das Karam Chand Gandhi can be called Mahatma Mohan Das Karam Chand Gandhi, Pandit Madan Mohan Malaviya can be aptly called Dharmatma Pandit Madan Mohan Malaviya.

(यदि श्री मोहनदास करमचन्द गांधी को महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी कहा जा सकता है, तो पण्डित मदनमोहन मालवीय को उपयुक्तता के साथ धर्मात्मा पण्डित मदनमोहन मालवीय कहा जा सकता है।)

महर्षि वाल्मीकि कहते हैं —

> शुभं वा यदि वा पापं यो हि वाक्यमुदीरितम् ।
> सत्येन परिगृह्णाति स वीरः पुरुषोत्तमः ॥

(अच्छा अथवा बुरा जो कुछ वह कह देता है और सत्यता से पालन करता है वह वीर पुरुष पुरुषोत्तम है।)

मालवीयजी इस वीर पुरुषोत्तम का गांधीजी जितना आदर करें इसमें कौन सा आश्चर्य ?

गांधीजी लिखते हैं —

मैं तो मालवीयजी महाराज का पुजारी हूँ। पुजारी कैसे स्तुति के वचन लिख सके ? जो कुछ लिखेगा उस सूरज का प्रदीप होगा। मालवीयजी के दर्शन मैंने सन् १८९० की साल में पिता द्वारा किया था वह पिता विलायत में भेजियो पत्र था मी० दादाभाई निवासमें थे उसमें गए। माना जाय कि वही हरि मैं चाहूँ भी ऐसा रहा हूँ जैसे उनके निवास में रह भी उनके विचार से देख बना जाता है और इस तरह से मैंने मालवीयजी और भक्ति पाई है। आज मालवीयजी के प्रति [illegible] में कौन मुकाबला कर सकता है। लोकमान्य के पश्चात्

करके आज तक उनकी देशभक्ति का प्रवाह अविच्छिन्न चलता आया है काशी-विश्वविद्यालय के मालवीयजी प्राण हैं का० वि० विद्यालय मालवीयजी का प्राण है यह सचीर हमारे लिये दीर्घायु हों विनायत चाहते हुए
मोहन दास गोधा
७-६-३१

मोतीलालजी ने तो श्रीमद्भागवत और महाभारत में मालवीयजी की दिल्ली को हंसी मजाक में उड़ा दिया परन्तु मालवीयजी का यह उत्तर कि यदि भाई मोतीलाल इन ग्रन्थों को पढ़े होते तो ऐसा न कहते बड़ा मारगर्भित है। इतना ही नहीं कि ये अमूल्य ग्रन्थ भारतीय संस्कृति के समुज्ज्वल प्रतीक है बल्कि प्राणीमात्र के लिए कल्याणकारी हैं। मनुष्य के जीवन में कोई भी विषय ऐसा नहीं है चाहे वह राजनीतिक हो अथवा सामाजिक भौतिक हो अथवा आध्यात्मिक जिस पर इन दोनों ग्रन्थों ने मानवता को पथ प्रदर्शन न किया हो। मालवीयजी श्रीमद्भगवद्गीता के इतने भक्त थे कि काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय में वे नियमित रूप से गीता प्रवचन करते थे। और प्रत्येक एकादशी को आर्ट्स कालेज अथवा संस्कृत महाविद्यालय के त्रिलोकीदत्त हाल में वे स्वयं श्रीमद्भागवत कथा कहते थे। विश्वविद्यालय के बहुत से प्राध्यापक एवं छात्र बड़ी रुचि के साथ उनकी कथा सुनते थे।

मालवीयजी ने अपने एक पत्र में जिसका अंश मैं इस संस्मरण माला में उद्धृत कर चुका हूँ लिखा था कि "बी० ए० पास होने के बाद मेरी बड़ी इच्छा हुई कि बाबा और पिता के समान मैं भी कथा कहूँ और धर्म का प्रचार करूँ। युवावस्था में उनके हृदय में पड़ा हुआ यह बीज काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पल्लवित और पल्लवित हुआ। व्यास-गद्दी पर बैठकर कथावाचक की वेश-भूषा में मालवीयजी अमृत की वर्षा करने लगे। इस प्रकार उन्होंने शैशव

से अपने हृदय में संजोई हुई साध को पूरी किया।

गीता-प्रवचन तो अब तक विश्वविद्यालय में जारी है। कोई न कोई विद्वान नियमित रूप से वहाँ गीता-प्रवचन करता रहता है। श्रीमद्भगवद्गीता का इतना बड़ा भक्त यह कैसे भूल सकता है कि वह ब्राह्मण है। मालवीयजी गीता में प्रतिपादित सदाचारी ब्राह्मण के लक्षण को कैसे भूल सकते थे?

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥

श्रीमद्भगवद्गीता १८-४२

(अन्तःकरण का निग्रह, इन्द्रियों का दमन, बाहर भीतर की शुद्धि धर्म के लिए कष्ट सहन करना, क्षमाभाव, मन इन्द्रिय और शरीर की सरलता, शास्त्र-विषयक ज्ञान, परमात्मतत्त्व का अनुभव और आस्तिक बुद्धि ये ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं।)

मालवीयजी ने गीता के उपर्युक्त श्लोक में वर्णित तत्त्व ज्ञान की व्याख्या करते हुए एक भजन में उल्लेख किया है। वह भजन इस प्रकार है —

घट घट व्यापक राम जप रे।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

मर्मदर्शी इन सब कर्मों का अपने जीवन में अभ्यास करते

दूते थे। आस्तिकय उनका इतना प्रबल था कि उसमें वे कभी नहीं गए थे। प्रयाग तो उनका जन्मस्थान था ही। पहिले वे भारती भवनवाले मकान में रहते थे। बाद में वे आर्जे टाउन वाले अपने मकान में रहने लगे। जब कभी उन्हें परदेश जाना होता था —और वे आये दिन परदेश जाते थे—तो स्टेशन जाते वक्त अपने शहर वाले मकान में जाते थे जहाँ उनके कुलदेवता राधाकृष्ण की जोड़ी प्रतिष्ठित थी। वहाँ अपने सम्पूर्ण वस्त्र उतार, एक धोती पहन, पहले वही भक्ति से देवता के सामने नत मस्तक होते थे। इसमें वे तनिक भी उतावली नहीं करते थे, चाहे कितने ही आवश्यक काम के लिए वे परदेश जा रहे हों और चाहे इन सब कामों को विधिपूर्वक करने में गाड़ी छूटने की नौबत क्यों न आ जाय। इतनी निष्ठा उन्हें राधाकृष्ण में थी। यह निष्ठा उनकी स्थिर थी।

मालवीयजी के अनन्य भक्त काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय में सदा उनके साथ रहने वाले श्री बी० ए० सुन्दरम् मालवीय पंचिका में लिखते हैं

१९१५। कलकत्ते का दृश्य है जहाँ कि ८२ वर्ष पूर्व महात्मा ने प्राण सर्वप्रथम मारण दिया था। एक नौजवान ब्रह्मचारी काली मन्दिर के समक्ष मनुवाँस रोगने के स्नानगृह में अपने प्राणों की बाजी लगाता है। आज उसका अनशन का २५ वाँ दिवस है। ब्रह्मचारी रामचन्द्र अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा है। उस पर मृत्यु का आवरण क्रमशः पड़ रहा है। मालवीयजी कलकत्ते पधारते हैं। आप ब्रह्मचारी की मृत्यु-शय्या के निकट बड़कर अत्यन्त विश्वास के साथ दुर्गा सप्तशती का पाठ करते हैं। पाठ समाप्त करने पर आप उस पर गंगाजल छिड़कते हैं। निराहार ब्रह्मचारी अपनी आँखें खोल देता है—उसकी प्राण रक्षा होती है। कलकत्ता नगर मालवीयजी की आश्चर्यजनक भक्ति पर दाँतों-तले अँगुली

जा सका है। गुरुजन उस कहानी को सुनकर पण्डित मालवीय की श्रद्धा से अत्यधिक प्रभावित होते हैं। भगवान् अपने भक्तों का अब नहीं चाहते — मालवीयजी का कथन था।

श्रीमद्भगवद्गीता के भक्त, मालवीयजी प्राय: कहा करते थे कि —

> क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
> कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

गीता—९ ३१

(वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है। वह सदा रहने वाली शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तुम निश्चयपूर्वक सत्य जानो कि मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता।)

तब भला ब्रह्मचारी रामनाथ की मृत्यु कब हो सकती थी? और यदि वह मर भी जाता तो उसका नाश नहीं हो सकता था।

> मर के मुर्दा है वही [illegible]।
> हो जिन्दा रहता है कबीर अमर बानी है॥

श्रीमद्भगवद्गीता पर मालवीयजी की असीम आस्था थी। सन् १९३४ में पण्डित बालीराम उपनाम 'मजबूर' मोगनवी ने भगवद्गीता का उर्दू पद्य में 'कलामे रब्बानी' के नाम से फ़ारसी लिपि में अनुवाद किया था। तब उन्होंने मालवीयजी को इन शब्दों में स्मरण किया था —

> ए बनारस के [illegible]
> [illegible]!
> है जिनके [illegible] को [illegible] हुए
> [illegible] के गुलज़ार रहे हैं जो हुए।
> है [illegible] है यु
> [illegible] का [illegible] है यु।

शायरी रौशे सख़ुन का ले मज़ाक़
तेरी चश्मे दिल में है असरा तराज़।
हिन्दुओं का दर्द तेरे दिल में है
तेरा सानी कौन इस महफ़िल में है ?
तेरा गौशा तेरा मतवाला 'नज़र'
दिल से तुमको चाहने वाला 'नज़र'
जानता है राज़दाने-हक़ तुझे
मानता है लाख नामे-हक़ तुझे।
इसलिये लाकर सुख़न पुर इन्किसार
तेरी ख़िदमत में तेरा मुख़्लिस गुज़ार
नज़्र करता है ये रूहानी कलाम
जिसपे जावेद नाज़ानी कलाम

मालवीयजी ने इन शब्दों में उस अनुवाद का आदर किया :—

'मेरा विश्वास है, कि संसार में भगवद्गीता के समान भक्ति और सात्त्विक धर्म की शिक्षा देने वाली कोई दूसरी पुस्तक नहीं है। इसलिए जितना ही इसका प्रचार हो उतना ही मनुष्यजाति का उपकार होगा। गीता का अनुवाद संसार की अनेक भाषाओं में छप चुका है। उर्दू भाषा में भी इसके कई प्रशंसनीय अनुवाद छप चुके हैं। मेरी राय में पंडित योगीराज (उपनाम नज़र सोहानवी) का किया अनुवाद जिसको उन्होंने नग़मये रूहानी के नाम से प्रकाशित किया है बहुत ऊंचा स्थान पाने के योग्य है। मेरे विचार में जब तक उर्दू भाषा रहेगी तब तक यह अनुवाद आदर के साथ पढ़ा जायगा। और सारे हिन्दुस्तान में और विशेषकर पश्चिम के प्रान्तों में हमारे हिन्दुओं और थोड़े समय के बाद हमारे मुसलमान भाइयों में भी आध्यात्मिक ज्ञान और सात्त्विक जीवन फैलाने का बहुत सुन्दर साधन होगा। इस अनुवाद को प्रकाशित कर पंडित योगीराज ने मनुष्य जाति की जो सेवा की है उसके लिए वे धन्यवाद

और सम्मान के पात्र हैं। मैं आशा करता हूँ कि उर्दू-साहित्य का जगत् पंडित योगीराज की इस उत्तम कृति का उचित आदर करेगा।

काशी

१७ जनवरी सन् १९३८ मदनमोहन मालवीय

पंडित योगीराज के उर्दू ग्रन्थ एवं मालवीयजी की उस पर टिप्पणी का विस्तार से उल्लेख इस उद्देश्य से किया कि हिन्दी के हिमायती और प्राण होते हुए मालवीयजी उर्दू के प्रति असहिष्णु नहीं थे बल्कि उसका उचित आदर करते थे। इसी प्रकार मुसलमानों में भी कितने उदारचेता व्यक्ति हो गये हैं और अब तक हैं जो हिन्दी का आदर करते हैं। अकबर इलाहाबादी मुसलमानों से कहते हैं —

दोस्तों तुम कभी हिन्दी के मुखालिफ न बनो।
बात करने के तरीका कि है यो काम की बात ॥

ब्राह्मणत्व, मालवीयजी की बपौती थी। इनके पिता व्रजनाथ चौबे एक परम भागवत वैष्णव थे। इनके पितामह पण्डित प्रेमधरजी मनसा वाचा कर्मणा एक ब्रह्मवर्चस सदाचारी ब्राह्मण थे। ये दोनों संयम धन महानुभाव अपनी सम्पूर्ण धर्म-सम्पत्ति मालवीयजी को दे गये थे। संस्कृत और पाश्चात्य साहित्य एवं दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् अंग्रेजी के शासन काल के बहुत समर्थक श्री बी० एन० मेहता लिखते हैं —

" ... he stands as a block of granite in the midst of a mass of shale and conglomerate. His beautifully modelled body every limb tingling with pulsating harmony within which has known the impulse without the prolonged aspere

साक़िये दौरे चमन का ये मज़ाक़
तेरी नज़्में दिल में हैं जैसा तराज़ ।
हिन्दुओं का दर्द तेरे दिल में है
तेरा सानी कौन इस महफ़िल में है ?
तेरा शैदा तेरा मतवाला 'नज़र'
दिल से तुझको चाहने वाला नज़र,
जानता है राज़दाने-कृष्ण तुझे
मानता है ख़ास शागिर्दे-कृष्ण तुझे ।
इसलिये बासद अदब बा इन्किसार
तेरी ख़िदमत में तेरा ख़िदमतगुज़ार
नज़्र करता है ये रब्बानी कलाम
जिसके जौहर लासानी कलाम

मालवीयजी ने इन शब्दों में उस अनुवाद का आदर किया —

'मेरा विश्वास है कि संसार में भगवद्गीता के समान भक्ति और सात्त्विक कर्म की शिक्षा देने वाली कोई दूसरी पुस्तक नहीं है। इसलिए जितना भी इसका प्रचार हो उतना ही मनुष्यजाति का उपकार होगा। गीता का अनुवाद संसार की अनेक भाषाओं में छप चुका है। उर्दू भाषा में भी इसके कई प्रशंसनीय अनुवाद छप चुके हैं। मेरी राय में पंडित योगीराज (उपनाम नज़र सोहराबी) का किया अनुवाद जिसको इन्होंने नग़्मा-ए-रब्बानी के नाम से प्रकाशित किया है बहुत ऊँचा स्थान पाने के योग्य है। मेरे विचार में जब तक उर्दू भाषा रहेगी तब तक यह अनुवाद आदर के साथ पढ़ा जायगा। और उत्तरी हिन्दुस्तान में और विशेषकर पश्चिम के प्रान्तों में हज़ारों हिन्दुओं और थोड़े समय के बाद हज़ारों मुसलमानों में भी आध्यात्मिक ज्ञान और सात्त्विक जीवन फैलाने का बड़ा सुन्दर साधन होगा। इस अनुवाद को प्रकाशित कर पंडित योगीराज ने मनुष्य जाति की जो सेवा की है उसके लिए वे धन्यवाद

प्रथम समर्थक थे। सन् प्रयाग में उन्होंने सनातन धर्म-सभा का एक बृहत् अधिवेशन किया। दूर-दूर से बड़े बड़े विद्वान पण्डित बुलाये गये। उसमें मालवीयजी ने अछूतोद्धार एवं हरिजनों को 'मंत्रदीक्षा' देने का प्रस्ताव रखा। मालवीयजी ने पहिले ही से मनु तथा अन्य ऋषियों के वचनों से प्रमाणित एक छोटा-सा प्रस्ताव तैयार कर रखा था। प्रस्ताव के रखते ही पण्डितों में एक सनसनी सी मच गया। एक पण्डित ने जिनकी जबान में लगाम नहीं थी उठ कर संस्कृत में इतना तक कह डाला कि मालवीयजी अपने को मनु से भी अधिक समझते हैं। उनके कहने से हरिजनों को मंत्र दीक्षा नहीं दी जा सकती। इसके उत्तर में मालवीय जी ने उठ कर संस्कृत में सरल शब्दों में नम्रतापूर्वक भाषण किया कि मैंने आप जैसे विद्वानों के चरणों में मनु एवं अन्य ऋषियों के सिद्धान्तों को समझ कर जैसा मेरी तुच्छ बुद्धि में आई प्रस्तुत की है। निर्णय तो आप लोगों के हाथ में है। जैसा आप निर्णय करेंगे उसका मैं पालन करूँगा, पण्डित लोगों ने उनकी मधुर एवं विनम्र वाणी तथा उनकी नम्रता से प्रभावित होकर उनके प्रस्ताव का एक स्वर से अनुमोदन किया और वह प्रस्ताव पास हो गया।

फिर क्या था मालवीयजी दीक्षा देने के काम में जुट गये। सन् १९२७ ई० में महाशिवरात्रि के दिन काशी के दशाश्वमेध घाट पर उन्होंने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र सभी को यहाँ तक कि चाण्डालों को—'ओं नमः शिवाय' 'ओं नमो नारायणाय' 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' आदि मन्त्रों की दीक्षा दी। सन् १९२९ ई० में मालवीयजी नासिक गये। वहाँ गोदावरी के तट पर उन्होंने कई सौ हरिजनों को दीक्षा दी। प्रयाग कलकत्ता तथा अन्य नगरों में भी कई बार उन्होंने दीक्षा दी। कहीं-कहीं इसका भी विरोध होता था, पत्थर भी बरसाये जाते थे पर मालवीय जी की वाणी से सब शान्त हो जाता था।

ties of तपस austerities his loftiness of purpose that in the words of Goethe speaking of Schiller words disdain to think any thing that was mean who that has known this Shanker of the XX century, the त्यागमूर्ति at its highest words fail to detect the Super Brahmin in him Like the peak of Kailas he stands a towering spetacle clothed in the effulgence of white like the primaeval lotus, which nothing can sully a beacon of hope often a portent never

(वह पौधों और कंकड़ों के समूह के बीच एक चट्टान की भाँति खड़े हैं। उनका सुन्दर साँचे में ढला सा शरीर जिसका प्रत्येक अवयव बाह्य-आन्तरिक सामंजस्य से स्पष्ट रहा है उनकी निरन्तर तप की भावना उनके हृदय का महानत्व जो गेटे के शब्दों में जिन्हें उसने शिलर के सम्बन्ध में कहा था कि वह किसी भी नीच विचार का तिरस्कार करता कौन ऐसा है जिसने इस बीसवीं शताब्दी के शंकर एवं पराकाष्ठा की त्यागमूर्ति को जाना है वह उसमें 'अति ब्राह्मण' को पहिचानने में चूक करेगा। कैलाश के शृङ्ग की भाँति उज्ज्वल वस्त्रों की आभा से आच्छादित वह एक ऊँचे भूमि के समान खड़ा है सृष्टि के आरम्भिक काल के कमल की भाँति जिसे कोई चीज दूषित नहीं कर सकती आशा निरन्तर आशा का ज्योतिपुञ्ज है किन्तु निराशा एवं आशङ्का का कभी नहीं।)

मिस्टर महोदय का उपर्युक्त कथन मालवीयजी को मूर्त कर देता है। अतः उसका मैंने यहाँ पर ज्यों का त्यों उद्धृत किया है।

मालवीयजी की धर्म की व्याख्या की परिधि बड़ी विस्तृत था। उसमें संकीर्णता की गन्ध भी न थी। उन्हें परिजनों के प्रति कट्टर सनातन धर्मावलम्बियों का व्यवहार कभी सहन न था। वे उस

अपना समझते थे। अतः प्रयाग में उन्होंने सनातन-धर्म-सभा का एक बृहद् अधिवेशन किया। दूर-दूर से बड़े बड़े दिग्गज पण्डित बुलाये गये। उसमें मालवीयजी ने अछूतोद्धार एवं हरिजनों को 'मंत्रदीक्षा' देने का प्रस्ताव रक्खा। मालवीयजी ने पहिले ही से मनु तथा अन्य ऋषियों के वचनों से प्रमाणित एक छोटा-सा प्रस्ताव तैयार कर रक्खा था। प्रस्ताव के रखते ही पण्डितों में एक तहलका सा मच गया। एक पंडित ने जिनकी जबान में लगाम नहीं था उठ कर संस्कृत में इतना तक कह डाला कि मालवीयजी अपने को मनु से भी अधिक समझते हैं। उनके कहने से हरिजनों को 'मंत्र दीक्षा' नहीं दी जा सकती। इतने में मालवीय जी ने एक घंटे तक संस्कृत में मधुर शब्दों में नम्रतापूर्वक भाषण किया कि मैंने आप एस विद्वानों के चरणों में मनु एवं अन्य ऋषियों के सिद्धान्तों की समीक्षा जैसी मेरी तुच्छ बुद्धि में आई प्रस्तुत की है। निर्णय तो आप लोगों के हाथ में है। जैसा आप निश्चय करेंगे उसका मैं पालन करूँगा। पण्डित लोगों ने उनकी मधुर एवं विनम्र वाणी तथा उनकी समीक्षा से प्रभावित होकर इनके प्रस्ताव का एक स्वर से अनुमोदन किया और यह प्रस्ताव पास हो गया।

फिर क्या था मालवीयजी दीक्षा देने के काम में जुट गये। सन् १९२७ ई० में महाशिवरात्रि के दिन काशी में दशाश्वमेध घाट पर उन्होंने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र सभी को यहाँ तक कि चाण्डालों को 'ॐ नमः शिवाय' 'ॐ नमो नारायणाय' 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' आदि मंत्रों की दीक्षा दी। सन् १९२१ ई० में मालवीयजी नासिक गये। वहाँ गोदावरी के तट पर उन्होंने बहुत से हरिजनों को दीक्षा दी। प्रयाग कलकत्ता तथा अन्य स्थानों में भी कई बार उन्होंने दीक्षा दी। कहीं-कहीं कुछ गड़बड़ भी होती थी पत्थर भी बरसाये जाते थे पर मालवीयजी की वाणी से सब शान्त हो जाता था।

मालवीयजी एक सद्गृहस्थ

स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः (कालिदास)

टेनिसन के शब्दों में Just as nature packs its blossom in its seedling जिस प्रकार प्रकृति एक छोटे से बीज में पुष्प का समावेश कर देती है उसी प्रकार कालिदास ने उपर्युक्त छोटे से वाक्य में मानो मालवीयजी के सम्पूर्ण गार्हस्थ्य जीवन को निहित कर लिया हो। सचमुच मालवीयजी अपने पूरे परिवार के पिता थे। अन्य पिताओं ने तो अपनी अपनी सन्तानों को केवल जन्म दिया था। मालवीयजी अतीव भावुक होते हुए भी एक विचारशील एवं विवेक-सम्पन्न सद्गृहस्थ थे। भावुकता प्रायः विवेकता को दबा लेती है परन्तु मालवीयजी जानते थे कि

"विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः"

(विवेक-शून्य व्यक्ति का पतन सब ओर से होता है।)

उनके जीवन का यह मूल मन्त्र था। वे बहुधा सोच समझ कर काम करते थे। वे बहुधा कहा करते थे—

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदाम्पदम्।
वृणते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः॥

भारवि—किरातार्जुनीय

संस्कृत साहित्य में बहुत से श्लोक ऐसे हैं जिन्हें विद्वान् लोग सार्वदेश्य कहते हैं अर्थात् जिनका मूल्य एक लाख रुपया आंका जाय। ऐसा ही भारवि का उपर्युक्त श्लोक है। इस सम्बन्ध में एक किंवदन्ती है। भारवि ने यह श्लोक माघ को सुनाया। कहा जाता है कि माघ एक धनाढ्य वणिक था। वह पण्डितों को लगाकर 'शिशुपाल-वध' महाकाव्य की रचना करा रहा था। वह एक प्रकार का 'एडीटर' (सम्पादक) था। शिशुपाल-वध की रचना हो जाने

पर उसने उस महाकाव्य को अपने नाम से छपवाया। ऐसा लगता है कि यह चाल केवल आधुनिक युग में ही नहीं चली जाती है, पहिले भी ऐसा होता था। जब शिशुपाल-वध की रचना हो रही थी तो माघ ने ने चाहा कि भारवि का उपर्युक्त श्लोक शिशुपाल वध में आ जाय और इसके लिए उसने भारवि को एक लाख रुपये देने का प्रलोभन भी दिया परन्तु भारवि ने उस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। इस किंवदन्ती में कोई ऐतिहासिक तथ्य है अथवा नहीं इसे तो संस्कृत साहित्यवेत्ता ही जाने परन्तु श्लोक लाख-टकिया' है इसमें सन्देह नहीं।

माघ तो उस श्लोक को एक लाख रुपये में भी न ले सका पर मालवीयजी ने बिना धेला-कौड़ी खर्चे उस मन्त्र को अपने काव्यमय हृदय में संजोकर केवल रख ही नहीं लिया वरन् उसे अपने जीवन का एक अंग बना लिया। मालवीयजी के परिवार की परिभाषा बड़ी विस्तृत थी। वह थी वसुधैव कुटुम्बकम्। इतने ही से यह कल्पना की जा सकती है कि उनके सिर पर कितना भारी बोझ था। परन्तु इस समय तो मैं उनके उस परिवार के सम्बन्ध में कहूँगा जो उनके घर के लोगों एवं आत्मीयों तक सीमित है। औरों का उल्लेख यथास्थान होता ही रहेगा।

काशी-हिन्दू विश्वविद्यालय के आरम्भ होते ही—जिसका उल्लेख आगे यथास्थल किया गया—मालवीयजी का प्रयाग में रहना बहुत कम हो गया। वे अपनी धुन में समूचे भारत में मारे मारे फिरते थे। फिर भी अपना थोड़े समय के लिए उनका प्रयाग में आना-जाना लगा ही रहता था। जब भी वे आते थे तो अपने आत्मीयों के दर्शन अवश्य करते थे। परिवार में यदि किसी लड़के का विवाह हुआ और यदि उन दिनों मालवीयजी प्रयाग में हुए तो बरातियों के साथ ज्योनार में अवश्य रहते थे। यह मैं पहले कह चुका हूँ कि समस्त परिवार की सम्पदा एक दूसरे सह

बियाँ मालवीयजी के परिवार में ब्याही हैं। उनके परिवार के जितने लड़के व्यास परिवार में ब्याहे गये हैं उतने बिरादरी के किसी एक परिवार में नहीं ब्याहे गये। एक तो स्वभावतः उस परिवार के नवयुवकों में ऐंठ की मात्रा कुछ अधिक है फिर यदि किसी दूसरे घराने में उनके यहाँ का कोई लड़का ब्याह गया तो फिर क्या कहना है। व्यास परिवार के नवयुवकों में ऐंठ तो नहीं थी पर आत्माभिमान उसी मात्रा में अवश्य था। दोनों ही परिवार के नवयुवक सुशिक्षित थे। इतनी बार मालवीयजी के परिवार की बरात हमारे दर्वाजे पर लगी कि बाजे वाले यह समझने लगे थे कि मालवीयजी के यहाँ की बरात हमारी ही गली में जायगी। और यदि किसी बार ऐसा न हुआ और बाजेवाले हमारी गली में घुमने लगे तो उनसे चिल्लाकर कहा जाता था कि अब की बार व्यासजी के यहाँ ब्याह नहीं है।

बहुत दिन की बात है। उस बार मालवीयजी के परिवार के किसी लड़के का विवाह हमारे यहाँ था। उन दिनों मालवीयजी प्रयाग ही में थे। हम लोगों को मालूम था कि बरात के साथ मालवीयजी ज्योनार में अवश्य आवेंगे। हमारी गदहपचीसी की उम्र थी। उस परिवार के नवयुवकों की ऐंठ से चोट खाये हुए, हम चारों भाइयों ने आत्माभिमान से करवट ली। हम चारों भाइयों ने दो-चार दिन पहिले आपस में गुप्त सलाह की अब की बार धर्मिष्ठ (मालवीयजी) के सामने उस मात्रा को प्रदर्शित करना चाहिए। पर यह किया कैसे जाय? यह एक समस्या था। हमारी बिरादरी में ज्योनार का यह नियम है कि जब सब बराती भोजन के लिए पंक्ति में बैठ जाते हैं तो गीता के एक अध्याय का पाठ आरम्भ हो जाता है और साथ-साथ भोजन परसा जाने लगता है। एक मंत्र एक पक्ष वाले पढ़ते हैं तो आगे वाला मंत्र दूसरे पक्ष वाले पढ़ते हैं। पढ़ने तथा उसी में शुद्धाशुद्ध उच्चारण और समझदारी की परीक्षा होती

है। उसी समय किसी कोठे में या अटारी पर स्त्रियाँ गाना गाती रहती हैं। गाली गाने की प्रथा तो अब बहुत कम हो गयी है। उसके स्थान पर अब विवाह सम्बन्धी गीत गाये जाते हैं। बक्सर के नगर तो अब भी लकीर के फकीर बने हैं। उनमें अब तक गाली गायी जाती है। अभी थोड़े ही वर्ष हुए मैं गाजीपुर एक सम्बन्धी की बरात में गया था। उसका वर्णन मैंने आल्हा छंद में लिखा था। उसका एक पद्य इस प्रकार था —

कहीं कहाई के समधी की इज्जत देना था उतार।
पर मेहरबान कुछ परिणाम लोगा बोला वैध होशियार॥

पर वे दिन धीरे-धीरे सदा जा रहे हैं। अस्तु।

जब बराती लोग भोजन कर चुकते हैं तब दोनों पक्ष एक दूसरे की विनती करते हैं। पहिले एक पक्ष का कोई व्यक्ति संस्कृत का प्रशंसात्मक श्लोक पढ़ता है और उसकी हिन्दी में व्याख्या करता है। तदनन्तर दूसरे पक्ष का भी कोई व्यक्ति ऐसा करता है। परन्तु चूँकि लोग भोजन कर चुके रहते हैं यह दंगल बहुत देर नहीं चल पाता। लोग उठकर चले ही जाते हैं। परन्तु मातृवियोग ज्योनार में सम्मिलित होंगे, इसलिए हम लोग इस अवसर को हाथ से जाने नहीं दिया चाहते थे। पद्यपंक्तियों का मैं समझता था। मैंने सोचा कि विनती में पराजय करना असम्भव है क्योंकि समधानाथ के कारण थोड़ बराबर पर छूट जायगी। ज्योनार में परास्त करना चाहिए। भगवान् की मर्जी। एक तरकीब सूझ ही तो पड़ी। ज्योनार में सब जगह गीता के द्वितीय अध्याय का पाठ होता है। यहीं सबका अभ्यास रहता है। यही हम लोगों को भी अभ्यास था। मैंने सुझाव दिया कि तृतीय अध्याय का पाठ गोल में कण्ठस्थ कर लिया जाय और ज्यों ही द्वितीय अध्याय समाप्त हो गई तृतीय का पाठ तुरन्त आरम्भ कर दिया जाय। बात तय हो गई। हम चारों भाइयों ने ठीक चार दिन के निरन्तर अभ्यास से तृतीय अध्याय को

आद्योपान्त कंठस्थ कर डाला। पयोमार का दिन आया। मालवीय-जी ने दल-बल सहित पदार्पण किया। पंक्ति पर बैठते ही वेदपाठ आरम्भ हो गया। जैसे ही द्वितीय अध्याय का अन्तिम मंत्र 'ऊर्ज्ज निपाण पुष्प इपाण सर्व सोमं इपाण' का पाठ उस पंक्ति में समाप्त किया मैं विनयावनत सो खड़ा ही था। तृतीय धारा माई 'आग्नु ज्ञिमानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम' (तृतीय अध्याय का प्रथम मंत्र) बड़े ठाट बाट से पढ़ कर चुप हो गये। जी तो धकधक कर रहा ही था कि कहीं ऐसा न हो कि उन लोगों को भी तृतीय अध्याय कण्ठस्थ हो पर भगवान् कृपा उस पक्ष में समाप्त रहा। तब मैंने अपने साथियों से कहा—जिसे सब लोगों ने सुना—ऐसा लगता है कि उस पक्ष को यह अध्याय याद नहीं है। आओ हमीं लोग पाठ कर डालें इतना कह कर बड़े विनमो-ल्लास से पूरे अध्याय का पाठ कर डाला। उस पक्ष के नवयुवक झेंपते नज़र आये। मालवीयजी बराबर मुसकिराते रहे थे। भोजन के बाद विनती (कविता पाठ) की बारी आई। तबीयत तो बढ़ी हुई थी ही। इसमें भी कुछ अपने उत्कर्ष का प्रदर्शन करना चाहता था। क्योंकि

> मेरे पैरों को है कुछ रौंदी हुई राहों से बैर।
> जिस तरफ कोई नहीं जाता उधर जाता हूँ मैं॥

मुन्ना

मैंने ऐसे अवसरों पर सैकड़ों बार पढ़े हुए आम श्लोकों को न पढ़ संस्कृत के एक प्रसिद्ध श्लोक को छोट-फरोद समयानुकूल बना कर पढ़ा। असली श्लोक इस प्रकार था:—

> श्वशुरो हृतवित्त इव रत्नाकरस्तव पतिः
> सोऽन्यश्चैव गिरिश तव ताताभिजन कोपनो रावणः।
> किं किं सर्व तवायं प्रतीयत इहा किं तु कन्दर्प रे वा
> ईदृशे ... ॥

(रावण जब राम को युद्ध में किसी तरह से परास्त कर सका तो इस प्रकार विचार करता है पहिले तो यही हमारे लिए लज्जा की बात है कि किसी को इतना साहस हो कि वह हमसे शत्रुता करे और फिर ये तपस्वी (राम-लक्ष्मण) और वे लोग लंका में घुसकर राक्षसकुल का नाश करें और फिर भी रावण जीता रहे (लज्जा से आत्मघात न कर ले)। धिक्कार है इन्द्रजित मेघनाद को। अब कुम्भकर्ण को जगाने से क्या लाभ? और फिर हमारी इन भुजाओं जिन्होंने स्वर्ग को जो एक छोटे से गाँव के समान उजाड़ डाला इनकी कौन गिनती है।)

मालवीयजी लाहौर कांग्रेस के सभापति हो चुके थे। उस अवसर को लक्ष्य कर उपर्युक्त श्लोक को मैंने परिवर्तित कर लिया और उसकी अन्तिम पंक्ति के स्थान पर [illegible] अलंकार का एक पद बनाकर उसे जोड़ दिया। वह परिवर्तित श्लोक जिसे मैंने विनती के रूप में प्रस्तुत किया था, इस प्रकार था —

न्यक्कारो ह्ययमेव मे यदरयस्तत्राप्यसौ [illegible]
सोऽप्यत्रैव [illegible] [illegible] [illegible]।
धिग्धिक् [illegible], प्रबोधितवता किं [illegible] वा
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]॥

(पहिले तो यही लज्जा की बात है कि कोई नरम दल का नेता कांग्रेस का सभापति हो और फिर वह [illegible] हो। खैर यह भी सही। परन्तु यह हमारे प्रान्त में आकर सभापतित्व करे और लोग मारे खुशी के नाचने लगें (यह असह्य है) अतएव इस को धिक्कार है। [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] को उभारना निरर्थक है। इन पुष्पों में प्राण [illegible] है इस [illegible] के मनुष्य को कौन रोक सकता है?)

मैं उपर्युक्त श्लोक की व्याख्या कार्यकर्ताओं के सामने करने जा रहा था कि मालवीयजी बोल उठे "हरे राम! स्वामीजी इसकी

व्याख्या न कीजिये'। मैं तुरन्त समझ गया और चुप रह गया। किसी संस्था अथवा व्यक्ति की निन्दा करना तो दूर रहा उसे सुनना भी मालवीयजी पाप समझते थे। विनती का ठाठा समाप्त होने पर मालवीयजी ने मुझे एकान्त में बुलाया और कहा 'व्यासजी! जब आपको मालूम था कि इस पक्ष के लोगों को स्त्री का तृतीय अध्याय मान्य नहीं है तो आपको पाठ नहीं करना था। आप अभी बालक हैं। आपको एक शिक्षा देता हूँ। किसी को नीचा दिखाकर अपने अभ्युदय की कभी चेष्टा न कीजियेगा। इससे आपका स्तर ऊंचा होगा। आपको उस श्लोक को भी न पढ़ना चाहिए था। किसी की निन्दा करना अथवा उसका उपहास करना बहुत बुरी बात है।' शिक्षा ऊंचे दर्जे की थी। शुद्ध हृदय से दी गई थी। घर कर गई। उस दिन के बाद से मैंने किसी को नीचा दिखाने की चेष्टा नहीं की। मालवीयजी के इस अमूल्य सम्पत्ति के दान से मैं उनसे कभी उऋण नहीं हो सकता।

मालवीयजी के प्रायः प्रवास में रहने के कारण उनका बन्धुवर्ग उनसे प्रेरणा ग्रहण करने से वंचित रहता था परन्तु मालवीयजी समय-समय पर पत्र-व्यवहार के द्वारा उन्हें अपने उपदेश से सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करते थे। गृहस्थी में आये दिन छोटी मोटी और कभी-कभी जटिल समस्यायें खड़ी रहती हैं। यदि छोटी-मोटी समस्यायें सुचारु रूप से सुलझती रहें और जटिल समस्याओं के सुलझाने के लिए धार्मिक पथ-प्रदर्शन रहे तो गृहस्थी की गाड़ी निर्बाध गति से चल सकती है। इस सम्बन्ध में मालवीयजी के पत्र बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। उनसे उनके हृदय एवं धर्मनिष्ठा की झांकी मिलती है। उनमें एक दो को उद्धृत करता हूँ। ये पत्र अपने परिवारवालों को लिखे गये थे। नाम देना अनावश्यक है। ये पत्र मेरे पास सुरक्षित हैं।

श्री

चि०—का आशीष

तुम्हारा पत्र पहुँचा। तुम भगवान से प्रार्थना करते जाओ और बुद्धि के अनुसार यत्न और प्रबन्ध करते जाओ। ईश्वर दया करेंगे।

तुमने [illegible] रुपया मंगाया यह भूल किया। हम चाहते हैं कि जितना कमीशन [illegible] एजेंसी में मिले उसीमें कानपुर की दूकान का खर्च चले। यदि तुम यहाँ से रुपया अभी मंगाओगे तो कर्जदार हो जाओगे और वह काम भी हाथ से जायगा और प्रतिष्ठा जायगी। [illegible] यदि अभी कुछ आमदनी नहीं हो सकती तो हमारी राय है कि तुम बहू को यहीं पहुँचा जाओ। जब कुछ मुनासिब आमदनी होने लगेगी तो फिर लिवा जाना। बिरला जी तथा और बड़े-बड़े व्यापारी बहुत दिनों तक अपनी गृहस्थी को परदेश नहीं लिवा गये यही ठीक व्यापार का मार्ग है। तुमको तो तपस्या के समान व्यापार करना है इसलिए हम आशा करते हैं कि हमारा कहना तुमको असह्य न होगा। समय के अनुसार काम को संभालना धर्म है।

और सब यहाँ कुशल है अपनी सोना की प्रसन्नता का समाचार लिखना। एक श्लोक सदा याद रखना

सुखार्थविमुखस्य [illegible] धनेन वा।
धनस्य [illegible] हस्ते [illegible] गुरु॥

किसी दशा में भी छोड़ना न हिम्मत बिसारना न राम।

प्रयाग तुम्हारा
४-६-२२ बापू जी

मालवीयजी अपने शरणार्थियों एवं पड़ोस-मित्रों की यथाशक्ति सहायता करते थे। यहाँ अपनी परिवार के लोगों तथा नौकरों को भी, जिन्हें आर्थिक सहायता की आवश्यकता होती थी, नियमित रूप से यथाशक्ति सहायता पहुँचाते थे। यह निम्नलिखित पत्र से जो

उन्होंने अपने छोटे भाई पं० श्यामसुन्दर मालवीय को लिखा था स्पष्ट है—

श्री

चि० सुन्दर आशीष

तुम्हारा पत्र पहुँचा चि० शचीकान्त का विवाह कुशलपूर्वक हो गया ईश्वर का अनुग्रह हुआ सब कामों में सबसे अधिक परिश्रम, तुम ही को पड़ा ईश्वर की दया हुई इससे तुमने सब निबाह लिया जो सहायता व्रजमोहनजी ने इस कार्यों में दी उसके लिए उनका बहुत-बहुत धन्यवाद करना।

जो २००) दो सौ भेजा है Insured Letter उसमें से नीचे अनुसार देना।

(एक बहू) को दो महीने का	५०	५०	=	१००)
(एक विवाहिता पुत्री)	२	२०	=	४०)
(एक विधवा भौजाई)	१५	१५	=	३०)
येनी को (एक पुराना भृत्य)	१०+१०		=	२०)
पंडित जी को (जो राधाकृष्ण की पूजा करते थे।	५+५)		=	१०)
				२००)

हम शीघ्र को काशी पहुँचना चाहते हैं हो सकता तो १ दिन के लिए प्रयाग आऊँगा। तबीयत अच्छी है।

मसूरी १२-७-८ म० मो०

चि० शचीकान्त के विवाह में सहायता करने के लिए मालवीय जी एक महान् व्यक्ति ने मुझ जैसे साधारण व्यक्ति को बहुत-बहुत धन्यवाद इस के लिए एक निजी पत्र में अपने छोटे भाई को लिखा। आपको आश्चर्य की सीमा न रहेगा जब मैं आपको बताऊँगा कि चि० शचीकान्त को मेरे छोटे सगे भाई की पुत्री ब्याही गयी थी।

आज हो बतावें कि मैंने सहायता की या मालवीयजी ने मुझे उबारा। बात यह है कि

> मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा
> स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
> परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं
> निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥

(मन वचन और शरीर में पुण्यरूपी अमृत से भरे हुए त्रिभुवन को अपने उपकारों से प्रसन्न करते हुए और दूसरे के अणु के समान छोटे से गुण को पर्वताकार बना कर जो अपने हृदय में उल्लास का अनुभव करते हैं ऐसे सन्त इने-गिने होते हैं।) मालवीयजी उन सन्तों में थे।

मालवीयजी का मुझे धन्यवाद देने का रहस्य उपर्युक्त श्लोकों में निहित है।

सन् १९४० की बात है। उनके एक पुत्र चि० मुकुन्द मालवीय को सांप ने काटा। चि० मुकुन्द को मेरी सगी छोटी बहिन ब्याही है। भगवत्कृपा से वे बच गये। बनारस में जब मालवीयजी ने यह सुना तो उन्होंने चि० मुकुन्द को यह पत्र लिखा।

श्रीः

बनारस
१९-१-४०

चि० मुकुन्द आशीष

ईश्वर की दया हुई जो सर्प का विष तुम्हारे शरीर में नहीं चढ़ा। मालूम होता है कोई भारी अरिष्ट था किन्तु ईश्वर की दया से वह थोड़ा ही कष्ट देकर निकल गया। इसके प्रायश्चित्त स्वरूप विष्णुसहस्रनाम का ११ पाठ कर लो यह संकल्प करके कि जो दोष हुआ हो उसको भगवान् क्षमा करें और सदा अपने चरणों में रक्षित रखें। अपनी माता से यह कहना कि उन्होंने जो चिट्ठी [illegible]

(उनकी एक पुत्री जो बनारस में ब्याही है) के पास भेजी थी उसे हमने सब पढ़ लिया अच्छा हुआ उन्होंने विस्तार से सब हाल लिख दिया था नहीं तो चिन्ता अधिक होती हम अमावस के लग भग आने का विचार करते हैं।

सब को आशीष

बापू जी

मेरी यह दृढ़ धारणा है कि मनुष्य का व्यक्तित्व जितना उसके लिखे हुए घरेलू पत्रों से निखरता है उतना और किसी चीज से नहीं। वे हृदय से निकलते हैं और अकृत्रिम होते हैं। यही पत्रों का महत्व है। अब मै आपके सामने मालवीयजी का एक सारगर्भित पत्र जो उन्होंने अपने एक पुत्र को लिखा था प्रस्तुत करता हूं।

श्रीः

चि०—आशीस

तुम्हारा लंबा पत्र आया तब से हम तुम को पत्र लिखने की इच्छा रहते हुये भी अब तक नहीं लिख सके। इसका कारण काम की भीड़ और स्वास्थ्य की दुर्बलता है।

तुम्हारी यह भूल है जो तुम समझते हो कि हम तुम से नाराज हैं तुम्हारी भूलों से हम दुखित अवश्य हैं पर अब जो हो गया वह लौट तो नहीं सकता हम चाहते हैं कि तुम नारायण की शरण में सच्चे भाव से रहो नित्य नम्रतापूर्वक प्रार्थना करो कि जो अप राध हो गया है उसको भगवान क्षमा करें दूसरे का धन अपना धन नहीं होता उस धन को इतना अधिक व्यय कर देना जितना तुमने कर दिया स बड़ी भूल हुई किन्तु पाप भी हुआ और बड़ा पाप हुआ अब उसके विषय में विलाप लिखने से कोई लाभ नहीं स्मरण रखो

इदमेव हि पाण्डित्य मियमेव विदग्धता।
अयमेव परो धर्मो यन्नायासाधिको व्ययः॥

यही पाण्डित्य है, यही चतुराई है, यही परम धर्म है कि जितना आय हो उससे अधिक व्यय न हो, परन्तु भूल बहुतों से हुई है और होती है।

हम तुम्हारे हृदय की शुद्धता को जानते हैं। यदि तुम ऋण से ग्रस्त न होते तो हम तुम को अपने पास रखते, उस में हम को सुख होता है, किन्तु अब तुम्हारा यही धर्म है कि भगवान की प्रार्थना करते हुये और यह विश्वास रखते हुए कि उन्होंने करोड़ों पतितों आर्तों दुखियों को उबारा है। तुम को भी उबारेंगे, ऐसा मन लगा कर व्यापार करो कि जिसमें सब लोग इस बात की प्रशंसा करें कि तुम व्यापार पर पूरा ध्यान देते हो और धर्म भाव से व्यापार में तत्पर हो। यदि शुद्ध भाव से काम हो, कर प्रार्थना करते जाओगे और उत्साह और विश्वास के साथ परिश्रम और उद्योग करते जाओगे तो परमात्मा प्रसन्न होंगे। उनके प्रसन्न होने पर तुम्हारी माता तुम्हारे पिता समस्त भाई बंधु और मित्र सब प्रसन्न होंगे। बस इस समय इतना ही लिखते हैं फिर और लिखेंगे किन्तु इतने में सब तत्त्व आ गया है। तुम्हारा बाबू

इस पत्र का प्रत्येक शब्द अमृत धारा के समान है। इस पर टिप्पणी निरर्थक है। यह मनन करने की वस्तु है।

सन् १९२१ की बात है। इधर कुछ समय से मालवीयजी चिन्तित रहते थे कि यह सामाजिक प्रथा जिसमें आपस में खान पान एवं विवाह सम्बन्ध प्रचलित है बहुत संकुचित है। इसकी परिधि बढ़ाई जानी चाहिए। सबसे कठिन समस्या तो लड़कियों और लड़कों के विवाह की थी। कहीं अच्छा घर नहीं बनता, कहीं लड़का अच्छा मिल गया तो लड़की वैसी मिलनी कठिन। और यदि कहीं दोनों ठीक बन गए तो लड़की के भावी श्वसुर के घर में भोजन का ठिकाना नहीं। समय तेजी से बदल रहा था। लोग युधिष्ठिर की युग की परिभाषा को मानने के लिए तैयार न थे।

दिवसस्याष्टमे भागे शाकं पचति यो नरः ।
अनृणी चाप्रवासी च स पृथिव्यां सुखी नरः ॥

(दिन के आठवें पहर भी यदि रूखा-सूखा भोजन मिल जाय, ऋण न हो और परदेस मारे मारे न फिरना पड़े तो वह मनुष्य सुखी है।) युधिष्ठिर की यह सीख गले तले नहीं उतरती थी। इसका उत्तर वे यह देते थे —

जो अक्लो-नक्ल से वाकिफ़ है उनसे दिल की है रोका ।
मुबारक हो तुम्हीं को चाटना लड्डू के चोटों का ॥

अकबर

परन्तु लाचारी थी। समाज की परिधि ही सीमित थी। छोटी सी गढ़ैया में बहुत देर तक छप-छप करने पर भगवत्कृपा से किसी बगुले को यदि एक दाना मिल भी गया तो उससे अन्य सैकड़ों बुभुक्षित बगुलों का तो पेट नहीं भर सकता था। और फिर वह भाग्यवान् पुरुष यह भी तो नहीं कह सकता था कि 'मोरी मानी निकस आई ढेमी का बरघा उपकर पड़े' क्योंकि उसके और भी तो लड़कियाँ थीं। बिरादरी में कम थोड़े से भाग्यवान् हैं जो इस कहावत को जबान पर ला सकें। साधारण मनुष्य प्रकृति से आलसी होता है। वह झंझट से भागता है। उदर-पोषण के लिए नौकरी तलाश करना एक झंझटी काम है। परन्तु उससे भी अधिक झंझट कन्या के लिए सुयोग्य वर का ढूंढना है। मुझे अच्छी तरह से याद है कि एक बार मामचीयजी ने मुझे बुलाया और कहा भ्राता जी! गुड्डू (उनका पुत्र) की दोनों लड़कियां बड़ी होती जा रही हैं। अपनी बहिन (उसकी बहू) से कहते नहीं कि उनके ब्याह में ढिलाई न करें। आपको स्वयं इसकी चिन्ता होनी चाहिए। मैं दरियागंजी रघुनाथ का प्रश्नी मेरे मुंह से निकल पड़ा महाराज आप ही लोगों में इतनी शक्ति है कि आप इतने समय तक लड़की

रोक सकते हैं। मेरी लड़की होती तो उससे बहुत पहिले यदि वर न मिलता तो पीपल से ब्याह रचता। मालवीयजी तुरन्त बोल उठे 'श्रीराम! श्रीराम! ऐसी बात मुंह से न निकालिये। लड़की के लिए सुयोग्य वर तो मिलना ही चाहिये।' आजकल को देखते हुए लड़कियाँ कुछ ऐसी बड़ी नहीं हो गयी थीं। यही कोई बीस इक्कीस वर्ष की रही होंगी। आज दिन जब मैं स्वयं उस मसले को नहीं सुलझा पा रहा हूँ तो मुझे अपनी गर्वोक्ति पर कबीर का वचन याद आता है

कबिरा गर्व न कीजिये कबहुँ न हँसिये कोय।
अजहूँ नाव समुद्र में को जाने का होय॥

भगवत्कृपा और मालवीयजी की पुण्याई से उन दोनों लड़कियों का विवाह हो गया और वे सुखी हैं।

मालवीयजी दूरदर्शी थे। उन्होंने इस समस्या के सुलझाने का एक ही उपाय समझा। जाति की परिधि को बढ़ाना। इतने छोटे समाज में, जिसकी कुल जनसंख्या दस हजार से अधिक न हो, ऐसी समस्याओं का आए दिन खड़ा रहना और समय की तीव्र गति के कारण नई नई समस्याओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। तब उन्होंने सोचा कि हम लोग मालवा से ५०० वर्ष हुए किसी कारण अपना देश छोड़कर चले आये थे। पर वहाँ तो हमारे जाति का अवश्य होगा। इसका पता लगा कर उन्हें मिलाना चाहिए। अतः उनकी प्रेरणा से और बिरादरी की अनुमति से दिसम्बर १९२१ में मालवीयों का एक डेप्युटेशन जन्मस्थान मालवा भेजा गया। इस डेप्युटेशन में पाँच सात सज्जन कर सम्मिलित हुए थे। उनमें बड़े-बड़े लोग थे। कुछ तो विद्वान् थे और कुछ चतुर। मैं भी उस डेप्युटेशन का एक सदस्य था। मैं विद्वान् तो नहीं था चतुर भले ही कहें। मालवीयजी के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रमाकान्त मालवीय डेप्युटेशन के नेता थे। वपु प्रकार और वेशभूषा

उनकी पृथक सम्मति थी। दूर से देखने से स्वयं मालवीयजी का भ्रम होता था। दूसरे विशिष्ट सदस्य थे पण्डित पुरुषोत्तम दुबे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् एवं मालवीयजी के स्नेहपात्र। यह सोचा गया कि सम्भव है वहाँ कोई उस ओर का व्यक्ति सभा में संस्कृत में व्याख्यान देने लग जाय तो उसका उत्तर संस्कृत ही में देने वाला होना चाहिए। दुबेजी इसके लिए पर्याप्त थे। उस डेप्युटेशन का विस्तार से वर्णन इस लेख की परिधि के बाहर है। अतः थोड़े ही में कहूँगा। डेप्युटेशन खण्डवा होता हुआ २४ दिसम्बर को इन्दौर पहुँचा। वहाँ दो-तीन दिन अन्वेषण का कार्य कर घाँटा बिल्लौद एवं धार होता हुआ उज्जैन गया। सभी जगह खूब सभाएं हुईं। उज्जैन सभा में एक बड़ी मनोरंजक बात हुई। उसके कहने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता। सभा में लगभग दस हजार श्रोता उपस्थित थे। रमाकान्त मालवीय बड़े ठाठ-बाट से अपना व्याख्यान दे ही रहे थे कि एक उजड्ड सा आदमी उठ खड़ा हुआ और रमाकान्त जी से कहने लगा "आप मिलने-मिलाने का बहुत व्याख्यान दे रहे हैं कहते हैं कि हम और आप एक हैं पर यह तो बताइये कि आपका उपकंठ क्या है।" रमाकान्तजी जब इसका उत्तर न दे सके तो वह व्यक्ति फिर उठ खड़ा हुआ और बोला "जब आपको अपना उपकंठ ही नहीं मालूम तो फिर मिलने-मिलाने की सब बात फजूल है।" मैं तुरन्त उठ खड़ा हुआ। मैंने कहा कि आप मुझसे पूछें। वक्ता महोदय दूसरे शास्त्र के पण्डित हैं। हमारा उपकंठ है 'हृदय'। मेरा यह कहना था कि वह व्यक्ति भीड़ को चीरता हुआ आकर मुझसे लिपट गया और जोर से चिल्लाकर कहा 'हम और आप लोग सब एक हैं।' तत्काल तालियाँ बज गयीं। 'डेप्युटेशन' के सम्बन्ध की बाधाएँ गिर गयीं। एक व्यक्ति ने उठकर संस्कृत में व्याख्यान दिया। सभा सफलतापूर्वक समाप्त हो गयी।

बाहर आते ही रमाकान्त जी ने पूछा 'बाबमोहन! यह उपकंठ

क्या है और तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि तुम्हारा 'चहहरा' उपरंठ है? हमने कहा — क्षमा! जहाँ विद्वान् मूक हो जाते हैं वहाँ चतुर आदमी काम आते हैं। मालवीयजी ने मुझे निरर्थक थोड़े ही चुना था। जब ११।। गोत्र के ब्राह्मण मालवा से भागे तो निश्चित स्थान पर निर्विघ्न पहुँच जाने के लिए उन्होंने रास्ते में 'पाड़े बाबा' की पूजा की। चूँकि पूस के महीने में भागे थे अतः पूस के महीने प्रति वर्ष हर घर में पाड़े बाबा की पूजा होती है और उसे 'पाड़े पूजा' कहते हैं। जब हमारे यहाँ पूजा होती थी तो हमेशा हमारे पितामह पाड़ बाबा की वेदी के सामने यह मंत्र पढ़ा करते थे— 'आशा पूर्ण रेणुका मारे, गोरे, चोहहरे के पंचवपूजनमहं करिष्ये।' उपरंठ उस स्थान को कहते हैं जहाँ के वे मूल निवासी हैं। हमारी देवी आशा पूर्ण रेणुका है और हमारा उपरंठ 'चोहहरा' है जो उज्जैन से पाँच मील पर एक गाँव है। यह सुनकर रमाकान्तजी फड़क उठे और बोले 'यार तुम बड़े घाई हो।'

जब डेप्युटेशन प्रयाग लौट कर मालवीयजी से मिला और उन्होंने इस घटना को सुना तो बड़े प्रसन्न हुए। मुझसे अपनी मन मोहिनी हँसी में बोले शाबाश। थोड़े दिन बाद मालवा के बहुत से लोगों को आमंत्रित कर मालवीयजी के सभापतित्व में एक महती सभा में सर्वसम्मति से निम्न प्रस्ताव स्वीकृत हुआ —

नमो ब्रह्मण्यो देव।

शान्ति और धर्म की रक्षा और उन्नति के लिए यह परम आवश्यक और न्यायसंगत है कि जो मालवीय गौड़ या श्रीगौड़ ब्राह्मण भिन्न भिन्न प्रांत में बसे हैं और जिनका धर्मसम्बन्धी आचार और व्यवहार समान है उनमें परस्पर सम्मिलित सम्बन्ध अर्थात् भोजन और विवाह का सम्बन्ध किया जाय। यह प्रस्ताव अखिल भारत वर्षीय श्रीगौड़ महासम्मेलन प्रयाग में मेरे सभापतित्व में

सर्वसम्मति से मि० वैशाख शुक्ल १० सं० १९९० को स्वीकृत हुआ।

५ मई सन् १९३३	मदनमोहन मालवीय
प्रयाग	सम्मेलन सभापति

सम्मेलन के समाप्त होने पर मालवीयजी ने सब उपस्थित सज्जनों को जिनमें मालवा से आये हुए बन्धुगन भी थे अपने निवासस्थान पर सहभोज के लिए निमंत्रित किया।

दूसरे दिन सायंकाल मालवीयजी के साथ सम्मेलन में उपस्थित सज्जनों की एक फोटो ली गयी और रात्रि में उनके निवासस्थान पर भिन्न-भिन्न प्रान्तों से आये हुए मालवीय सज्जनों ने और प्रयागस्थ मालवीय भाइयों ने जिनमें मालवीयजी भी सम्मिलित हुए, एक साथ भोजन किया। मुझे ठीक से याद नहीं कि यह ज्योनार 'कच्ची' (रोटी-चावल) थी या पक्की (घृतपक्व पूड़ी)। यह ज्योनार हो पायी और बिना काम गड़े हुए निर्विघ्न समाप्त हो गयी। इससे समझ लेना चाहिए कि यह अवश्य ही 'पक्की' रही होगी। क्योंकि जब हम लोग 'डिप्युटेशन' में इन्दौर गए थे तो वहां पर उन लोगों से सहभोज के लिए निमंत्रित होने पर हम लोगों ने धुले हुए पीताम्बर पहिन कर 'सानी' खायी थी। 'सानी' से इसके भ्रम को दूर करने के लिए यह बतला देना आवश्यक है कि दूध से सने हुए आटे की घृतपक्व पूड़ी को सानी कहते हैं। खान पान की बारीकियों के समझने में निष्णात पण्डित रमाकान्त मालवीय के रहते के बीच इसमें कम से समझौता नहीं हो सकता था। परन्तु समय एव करोति बलाबलम्। इस सम्मेलन में उन्हीं लोगों ने उन्हीं लोगों के साथ बिना धुली हुई धोती पहिन कर मालवीय जी के मेहतर में सहभोजन किया। यह कोई साधारण घटना नहीं था। जिस कैनेडी संघ और डा॰ इपन संघ का मिला कर शान्ति स्थापना

में मेहरूजी सब तक असमंजस रहे उस अंतिम समय को या छो
आज से २५०० वर्ष पूर्व महर्षि पाणिनि ने एक सूत्र के द्वारा 'श्वानं युवानं मघवानम्' में ऐक्य स्थापित कर दिया था या सन् १९१९ में मालवीयजी ने भिन्न-भिन्न सभा के विभिन्न मानसिक स्तरों के मनुष्यों से संयुक्त सलाम दर्शों को मिला दिया।

प्रस्ताव तो पारित हो गया परन्तु उसको पुष्ट करने के लिए मालवीयजी ने थोड़े ही दिन बाद प्रयागस्थ मालवीयों की एक सभा बुलाई और एकत्र एवं साथ में मिलकर भोजन करने पर इन्होंने एक सारगर्भित व्याख्यान दिया। अन्त में मुझे धन्यवाद देने के लिए कहा गया। मैंने उन्हें समझाने दिखलाने के लिए धन्यवाद देते हुए कहा कि मालवीयजी ने जो कुछ कहा है उसका यह निचोड़ है कि :

साबित में पोर में सरीर में न दाग मेर
    छिपकर जो छपाई को उघारै तो उघरि जाय ॥
ऐसो दाग लागै तो मिसाइ बदमाश लिये
    तोर कै जुर वा उघारै तो उघरि जाय ॥
'कापुर' कहत कछु दलित न बाकी काम
    छिपाकर लिये है कहो कब वा सुधरि जाय ?
सारि बने आपु बिना हैं बातों बोल नहिं
    भेद को छपाइ के उघारैं तो उघरि जाय ॥

मालवीयजी इसे सुन कर फड़क उठे और बोले शाबाश ! इसे फिर पढ़िये। मैंने फिर पढ़ा और सभा समाप्त हो गयी।

इस सम्मेलन में जो प्रस्ताव पास हुआ था वह एक प्रकार से thin end of wedge था (यह समाचोलनार पत्तनह जिस लेकर दरार का परिणाम है) क्योंकि उसमें अन्तर्जातीय विवाह का कोई विरोध न था। केवल बाहुल्य होना और समाज

आधार व्यवहार होना पर्याप्त था। अतः सर्वप्रथम मालवीयजी ने उस प्रस्ताव का मान रखते हुए अपनी एक पौत्री का विवाह अन्य जाति के एक सम्भ्रान्त कुल में एक सुयोग्य वर से निश्चित किया। हर बिरादरी में प्रायः दो दल होते हैं। एक दल ने इस सम्बन्ध का घोर विरोध किया। हमारे परिवार के न सम्मिलित होने की मालवीयजी को आशंका थी कारण एक सिद्धान्त की बात पर। बहुत दिनों से मालवीयजी के रहते हुए दोनों परिवारों का सम्बन्ध विच्छेद हो गया था और दोनों परिवारों के हिमायती दिमाग सम्बन्धी दो दलों में विभक्त हो गये थे। थोड़े दिन यह चलता रहा। अब इस अन्तर्जातीय विवाह का प्रश्न उठा मालवीयजी गंगा किनारे स्थानीय शिवकुटी महादेव के निकटस्थ रायबहादुर लालचरणदास के बाग में वायाकल्प कर रहे थे। मालवीयजी ने वहाँ मुझे बुलवाया। वे एक बगलिया में रहते थे। बगलिया के चारों ओर के बरामदे ईंट से चुन दिये गये थे। केवल भीतर जाने के लिए एक छोटा-सा हिस्सा खुला था। थोड़ा सा झीना प्रकाश ऊपर के रोशनदान से आ रहा था। मैं बरामदे में घुसा। आगे चलकर घुप्प अन्धकार था। थोड़ा खड़े रहने से मार्ग दिखाई देने लगा। एक कमरे में जिसके प्रायः सभी दरवाजे बन्द थे मालवीयजी एक चारपाई पर बैठे थे। सामने थोड़ी दूर पर एक चौकी पर एक लम्प रखा था जिसकी चिमनी लाल थी जैसे फोटो खींचनेवालों के डार्क रूम में होती है। मालवीयजी ने मुसकिरा कर मुझसे एक सामने रखी हुई कुर्सी पर बैठने के लिए इंगित किया। मेरा बैठ जाने पर वे गम्भीर हो गये और बोले "श्यामजी! आजकल मैं थोड़ा चिन्तित हूँ। मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह अन्तर्जातीय विवाह जो मैं कर रहा हूँ उसमें आपका परिवार मेरा साथ देगा या नहीं। इस प्रश्न पूछने का कारण स्पष्ट था। मेरे उनके परिवार का सम्बन्ध विच्छेद बहुत दिनों से चला आ रहा था और

जिसका प्रारम्भ उन्हीं के परिवार में किया था। मैंने थोड़ा मुसकि-राकर तुरन्त उत्तर दिया : "महाराज! अब तक मेरा परिवार मेरे नेतृत्व में है। मैं अपने सम्बन्धी को किसी भी परिस्थिति में नहीं छोड़ सकता, वह चाहे मुझे छोड़ दे।" इस उत्तर में व्यंग्य तो था ही, थोड़ा सा उपालम्भ भी था, क्योंकि उन्हीं के परिवार ने मेरे एक परिचित सम्बन्धी को जाति से बाहर कर छोटी सी बात पर छोड़ दिया था और वह तो बड़ी भी बात थी। मालवीयजी ने अवश्य ही इस व्यंग को समझ लिया होगा। वे बहुत प्रसन्न हुए और अपनी सुन्दर मुस्कान में बोले : "स्वामीजी! मेरी चिन्ता दूर हो गयी। आपको और आपके परिवार को ईश्वर सदा धर्म में दृढ़ रखे।" फिर उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जब मैंने पूछा तो उन्होंने कहा कि मैं कायाकल्प दो कारणों से कर रहा हूँ। एक तो यह जानने के लिए कि इस आयुर्वेदिक प्रयोग में कुछ तथ्य है या नहीं। और यदि है तो अन्य लोग इससे प्रेरणा ग्रहण करें और मुझे अधिक स्वास्थ्य और समय देशसेवा के लिए मिले। और दूसरे यह कि यदि कोई हानि हो तो वह मुझी तक सीमित रहे। फिर मैं चला आया।

निर्धारित समय पर मालवीयजी के यहाँ सर्वप्रथम यह अन्तर्जातीय विवाह हुआ। जैसा मैंने उन्हें वचन दिया था, मेरा उस सम्पूर्ण परिवार उसमें सम्मिलित हुआ। वैवाहिक उत्सव समाप्त होने पर मालवीयजी ने मुझे एक अत्यन्त स्नेहपूर्ण पत्र लिखा जिसमें उन्होंने यह भी लिखा कि "इस विवाह में आपके नेतृत्व में जो आपके परिवार ने हम लोगों का साथ दिया है उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। अपनी माताजी से मेरा प्रणाम कहियेगा।"

इसके बाद तो फिर दरवाजा खुल गया। उनके परिवार में, मेरे परिवार में तथा बिरादरी के अन्य परिवारों में कई अन्तर्जातीय विवाह हुए।



कुमारी मालती का विवाह

इसे लिखते लिखते एक बड़ी सुखद घटना सहसा याद आ गयी जो इससे बहुत पुरानी है। परन्तु क्या किया जाय संस्मरणों की यह प्रकृति ही है। ये पूर्वापर की अवहेलना करते हुए अनाहूत आते हैं। उनके इस अल्हड़पन ही में उनका सौन्दर्य है। यह बात मालवीयजी की एक पुत्री के विवाह की है। यह विवाहोत्सव मालवीयजी के शहर वाले नये मकान में सम्पन्न हुआ था।

विवाह के दिन प्रातःकाल ही से घर में बड़ी चहल-पहल है। मालवीयजी सभी कार्य विशेष कर मंगल कार्य विधिवत् करते थे। 'सर्वार्थे अक्षता समर्पयामि' व कभी नहीं होने देते थे। जैसे-जैसे विवाह का मुहूर्त निकट आता जाता था कर्मचारी लोग समस्त वैवाहिक वस्तुओं के सम्पादन करने में व्यस्त दिखाई देते थे।

वैविध्यभाजं विधिमुद्यतेभ्य
क्रियासु दक्षा कुशलेतरेभ्य ।
आनिन्युर वैवाहिकमग्रतोऽस्य
वस्तूनि भृत्या विदधुर्विधानम् ॥

कुमारदास जानकीहरण ७-४७

(भावार्थ —काम करने में दक्ष और चतुर कर्मचारी वैवाहिक सामग्री को जुटाने में बड़े उद्यत थे।)

अब वैवाहिक कृत्य आरम्भ हो गये। बन्धुवर्गों एवं मित्रमण्डल से घर ठसाठस भरा हुआ है। मालवीयजी स्वयं अपनी कन्या का दान करेंगे इस पावन दृश्य को देखने के लिए सभी उत्सुक हैं। प्रांगण के बीच में विवाह मंडप के नीचे 'पियरी' पहिने मालवीयजी बैठे हैं।

उस समय उनकी ऐसी शोभा हुई जस—

> स तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः
> कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः ।
> विदिद्युते वाडवजातवेदसः
> शिखाभिराश्लिष्ट इवाम्भसां निधिः ॥
>
> माघ-शिशुपालवध १—२०

(वे तपे हुए सुवर्ण के समान चमकते हुए वस्त्र पहिने थे) उनकी छवि पूर्णचन्द्र के लाञ्छन के समान थी। इस प्रकार वे उस उस समुद्र के समान सुशोभित हुए जिसको बड़वाग्नि की ज्वाला घेरे हो।)

उनके वक्ष की उपमा जिस पर श्वेत पुष्पों की माला लटक रही थी तभी दी जा सकती है यथ—

> उभौ यदि व्योम्नि पृथक् प्रवाहा-
> वाकाशगङ्गापयसः पतेताम् ।
> तेनोपमीयेत तमालनील-
> मामुक्तमुक्तालतमस्य वक्षः ॥
>
> माघ शिशुपालवध १-८

(यदि व्योम में आकाशगंगा दो धाराओं में बहे तभी उनके समान नीलवर्ण की जिस पर शुभ मोतियों का हार लटक रहा है उपमा दी जा सकती है।)

मन्दिर के भीतर यज्ञ-स्थान में शुभ पीठों पर बैठे व निरत पड़े हैं। सामने हवन-वेदी में निकलता हुआ धूम वातावरण एवं उपस्थित जन-समूह के अन्तःकरणों को पवित्र कर रहा है। वेदी के चारों ओर कुशासन बिछी हुई है। ऐसा शाकुन्तल का दृश्य लोगों के सामने आता था—

> अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः
> समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः ।

अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धैः
वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु" ।

अभिज्ञान-शाकुन्तलम् ४।१०

(वेदी के आस-पास चारों ओर का स्थान विभिन्न कार्यों के लिए निर्धारित है। एक ओर समिधा रखी है। वेदी के चारों ओर कुशा बिखरी है और समीप हवन वेदी पर जलती हुई हवि की गंध दिशाओं को पवित्र कर रही है। इस प्रकार से यज्ञ की अग्नि तुम्हें पवित्र करे।)

मैं मण्डप के एक कोने पर खोया-खोया सा मालवीयजी के सामने खड़ा इस सुधा-मधुर दृश्य को निर्निमेष आँखों से पी रहा था। मालवीयजी देख रहे थे कि इस समय मैं इस दृश्य से बड़ा प्रभावित हो रहा हूँ। परन्तु जब पुरोहित ने मांगलिक आभूषणों से युक्त कन्या का हाथ वर के हाथ पर रखा तो मेरे मुँह से सहसा निकल पड़ा —

समयः स वर्तत इवैष यत्र मां
समनन्दयत् सुमुखि गौतमार्पितः ।
अयमागृहीतकमनीयकंकण-
स्तव मूर्तिमानिव महोत्सवः करः ॥

भवभूति उत्तररामचरित

(रामचन्द्र सीता को उन चित्रों को दिखला रहे हैं जिनमें उनकी जीवन सम्बन्धी घटनायें चित्रित थीं। एक चित्र दिखलाकर राम कहते हैं — हे सुमुखि! यह वही समय है, जब गौतम शतानन्द ने सुन्दर कमनीय कंकणों से अलंकृत हाथ को मेरे हाथ में दिया था। उस समय तुम्हारा हाथ मूर्तिमान् महोत्सव लगता था।)

मालवीयजी गद्गद हो गये, मेरी ओर स्निग्ध दृष्टि से देखकर बोले वाह। इस एक छोटे से शब्द में उन्होंने अपने हृदय में मेरे

हुए वात्सल्य का उल्लेख किया और फिर मेरा श्लोक भी दो या मन टकिया।

एक बहुत पुरानी बात याद आ गयी। लगभग साठ वर्ष पुरानी। अपनी लड़कियों के लिए योग्य वर अनेक लोगों को वर्षों तक खोजते हुए सभी देखते रहते हैं परन्तु अपने पुत्र के लिए योग्य लड़की पाने के लिए विरले ही प्रयत्नशील हैं। यह जानते हुए कि घर जितना गृहिणी से बनता बिगड़ता है उतना लड़कों से नहीं फिर भी अच्छी लड़की ढूँढ निकालने में इतनी उदासीनता क्यों समझ में नहीं आती। मालवीयजी जानते थे कि लड़कियाँ रत्न होती हैं और वे यह भी जानते थे कि इन रत्न मणियों को सम्भवतः [illegible] स्वयं ढूँढने नहीं निकलता यह [illegible] हो जाता है। वे सदर्थवेत्ता थे इस बात को कि 'पुरन्ध्रियाँ' स्त्रियाँ ही घर को सम्हालने वाली होती हैं खूब जानते थे।

एक दिन की बात है। मालवीयजी मेरे पूज्य दादाजी स्वर्गीय डा० जयकृष्ण व्यास के पास गये और कहा "व्यासजी! मैं आपकी पुत्री विद्या को अपने पुत्र मुकुन्द के लिए चाहता हूँ।" हमारे परिवार में और भी लड़कियाँ थीं परन्तु उन्होंने विद्या ही को चुना। यह भी उनकी सब बातों को समझ बूझकर चुनने की प्रतिभा का परिचायक था। वह कभी धनी लड़की की तलाश में नहीं थे वे चाहते थे कि घर भले पर की भी हो उनकी ही लड़कियाँ आके घर आवें मगर [illegible] न करें। दादाजी इस अनोखी दृष्टि से प्रसन्न हो गये और उन्होंने तुरन्त मालवीयजी के उस प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए अपनी कृतज्ञता प्रकट की। दादाजी पण्डित बालकृष्ण भट्ट के अनन्य मित्रों में थे और संस्कृत के प्रेमी थे। उन्होंने मौका देखा तो मालवीयजी से वही उक्ति [illegible] कहा था—

> कन्याया: [illegible] [illegible] आत्मगुणाश्च [illegible]
> [illegible] [illegible] [illegible] मे [illegible]

कामैमावरणम्प्यपात् परिणते मन् स्नेहसारैं स्थितं
मा प्रम मुनानुपसम बचमप्येवेन कन्याप्यते ॥"

—भवभूति

(संसार का यह क्रम है कि कन्या-परिवार के लोग वर पक्ष वालों के अनुनय विनय में लगे रहते हैं पर आप तो उलटे कन्या पक्ष का आगमन करते हैं । दूसरी एक विशेषता आप में यह है कि जितना आपके परिवार से सम्बन्ध बढ़ता जाता है उतना ही आपस में स्नेह घनिष्ठ होता जाता है ।)

विवाह सम्पन्न हो गया । विदा दान लेकर बहू को वे हमारे घर से लिवा ले गये । मालवीयजी का प्रिय "motto" 'विषयान्मृतमप्नुत' (विष से अमृत की प्राप्ति होती है) सार्थक हुआ । समय से मालवीयजी के इस सम्बन्ध से एक पौत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम चि० लक्ष्मीधर मालवीय है वह हिन्दी में एम० ए० पास करके देवर्षि पर परिशोध कार्य का प्रयाग विश्वविद्यालय में दीक्षित हुआ है । भगवत्कृपा हुई तो निकट भविष्य में पी-एच० डी० हो जायगा । मालवीयजी यदि इस समय होते तो अपने पौत्र की प्रतिभा और हिन्दी का अनुराग देखकर फूले न समाते—परन्तु यह सौदा मालवीयजी को बहुत महँगा पड़ा । एक विधवा का दान लेकर उन्हें जीवन भर विधाप्रपात करना पड़ा ।

इस प्रसंग में एक और घटना याद आ गयी । सन् सम्वत् मुझे याद नहीं है और न मैं उसके याद करने में माथापच्ची किया चाहता हूँ । No-Rent Campaign (लगान विरोधी आन्दोलन) में मालवीयजी के परिवार ने बड़ा जोरदार भाग लिया । सौभाग्यवती विद्या तत्सम्बन्धी एक मीटिंग में सभानेत्री थीं । शासन का दमन चक्र चल ही रहा था । सौभाग्यवती विद्या अरेस्ट कर ली गयी और उन्हें सजा भी हो गयी थी । उस समय मालवीयजी के सुपुत्र पं० गोविन्द मालवीय ने मुझे काशी से टेलीफोन किया कि मैं तुरन्त

तीन कमिश्नर मिस्टर बाम्फर्ड से अनुरोध करूं कि सौभाग्यवती विद्या जैन से 'ए' क्लास में रखी जाय। उन दिनों मैं प्रयाग युनिवर्सिटी का एक्जीक्यूटिव मेम्बर था और कमिश्नर बाम्फर्ड पर मेरा विश्वास जमा था। हम दोनों हम क्लास थे। मेरे पास यहीं होने के सिक्के थे और उन्हें सिक्कों का रोग था। वे मेरे मकान पर आते थे और घंटियों में सिक्के पर चर्चा करते थे और उन्हें (decihper) पढ़कर सोच जाते थे। वे Numismatic Society of India (भारतीय मुद्रा-तत्व समिति) के सभापति भी थे वे कहा करते थे कि I hate to be baffled by coins (मुझे सिक्कों से पराजय होने से घृणा है)। मैं उनके पास गया और ज्यों ही मैंने उनसे कहा कि यही महिला का लगान-विरोधी सभा के आयोजन करने के अपराध में भी महीने की सजा हो गयी है तो वे चौंक और आश्चर्यान्वित होकर बात सुनने लगे। मैंने कहा कि वह महामना मालवीयजी की पुत्रवधू है तो वे तुरन्त बोल उठे "That explains it" (तो बात समझ में आती है)। मेरे अनुरोध करने पर कि सौ० विद्या को 'ए' क्लास में रखा जाय वे बोले कि यह बात कमिश्नर के हाथ में है तुम उनसे कहो। मैंने कहा कि [illegible] साहब ([illegible] कमिश्नर) तो आज कल छुट्टी पर हो गए। मैं उनसे एक बार भी नहीं मिला। वे मुझे कुछ आदमी समझते होंगे। कहा कि मेरा नाम कह सुनने लगा। कमिश्नर [illegible] और स्थानीय अफसर जनता के विशिष्ट व्यक्तियों की राजनीतिक विचारधारा से पूर्ण रीति से परिचित रहता है।

दूसरे दिन मैं कमिश्नर से मिला। [illegible] था और [illegible] की उम्र [illegible]। ज्यों ही मैं सामने कुर्सी पर बैठा वैसे ही उन्होंने एक मामूली शिष्टाचार [illegible] और मुझसे प्रश्न पूछने और मेरा उत्तर संक्षेप में लिखने। मेरा नाम क्या है, मैं पिछले दिनों

स एक्जीक्युटिव आफिसर हूँ मैं किन-किन संस्थाओं से सम्बद्ध हूँ इत्यादि-इत्यादि। मुझे ऐसा लगा जैसे इजलास पर खुदा को हाजिर नाजिर जानकर मेरा बयान कलम-बन्द किया जा रहा हो और मैं कोई हिस्ट्री शीटर हूँ। जब यह अग्नि परीक्षा समाप्त हुई तो उन्होंने रजिस्टर को बन्द कर बगल में रख दिया और पहिला सवाल जो उन्होंने पूछा वह यह था "मिस्टर श्याम! मैं इतने समय से यहाँ हूँ तुम एक बार भी मुझसे मिलने नहीं आये। इसका क्या कारण है?" मुझे इतना साहस न था कि मैं कह दूँ कि मुझे तुम्हारे शासन में दूषण है इसलिए नहीं आया। मैंने केवल इतना कहा कि म्युनिसिपैलिटी के काम में इतना व्यस्त रहता हूँ कि नहीं आ सका। तब उन्होंने मुझसे आने का प्रयोजन पूछा। मैंने उनसे कहा कि मेरी बहिन को सम्मान विरोध के अपराध में सजा हो गयी है। उसके त्याग के लिए मैं अनुरोध करने आया हूँ। इस पर फिर वे उस मोटे रजिस्टर को खोलकर फिर लिखने लगे। जिस प्रकार अन्धे के मुकदमे में तलाशी में कोई सबूत न मिलने पर यदि घर में पाव भर भाँग निकल आवे तो पुलिस उसको ही रस्सी में बाँध कर उसका चालान करती है ठीक उसी प्रकार मेरे खिलाफ कुछ न निकलने पर मेरी बहिन को सजा होना और वह भी ऐसे गुनाह पर जिसमें शासन का शासन होना दोष होता है मुझे जहन्नुम में भेजने के लिए पर्याप्त था। उस कलक्टर साहब ने मेरी हिस्ट्री शीट में दर्ज कर लिया ताकि वह समय पर काम आवे और वक्त जरूरत पर काम आवे। मुझे कलक्टर साहब की तहकीकात पर मन ही मन हँसी आयी। रजिस्टर फिर बन्द कर कलक्टर साहब बोले "मिस्टर श्याम! मुझे खेद है कि मैं आपकी कोई सहायता नहीं कर सकता। मैं जानता हूँ कि मालवीयजी का पूरा परिवार कांग्रेसी है। मेरी तो धारणा है कि इन राजनीतिक कैदियों को भी सजा देना चाहिए खिलाफ इनके जिन पार्टी के नेताओं के जैसे गांधीजी, मालवीयजी

मोतीलालजी और मेरे ही दो-एक और। बाकी सबको भी क्लास। जो लोग कानून तोड़ते हैं उन्हें शासन का दिया हुआ दंड बिना चीं चपड़ किये भुगतना चाहिए। मैं जानता हूँ कि अंग्रेजी शासन की नीति इसके विरुद्ध है पर जब तक मुझे ऊपर से कोई आदेश न मिले तब तक मैं तो अपने ही मत के अनुसार अपना सुझाव दूँगा। मैं तो आपकी बहिन के लिए भी क्लास की सिफारिश कर चुका हूँ। इतना सुनकर मैं यह कहकर चला आया कि इसके बाद मुझे कुछ नहीं कहना है। दो ही तीन दिन बाद यह पता चल गया कि सरकार ने कलक्टर साहब की सिफारिश नहीं मानी और मेरी बहिन को 'ए' क्लास दिया गया है जैसा कि मालवीयजी के परिवार के अन्य लोगों को दिया गया था।

सौभाग्यवती विद्या ने जेल में रहकर किन किन कठिनाइयों से मालवीयजी के यहाँ प्रचलित स्नान-ध्यान पूजा-पाठ इत्यादि का निबाह [illegible] उसे लिखने की आवश्यकता नहीं है। इतना कहना पर्याप्त होगा कि वहाँ उनके व्यवहार और आचरण से किसी भी पिता और श्वसुर को गर्व होता।

मालवीयजी का हृदय स्नेह से कितना ओत-प्रोत था उसके दो एक उदाहरण देता हूँ। मालवीयजी मध्याह्न में स्नानादि नित्य कर्म से निवृत्त होकर भजन गाते गाते घर की कचहरी पर भोजन करने जाते थे। प्रायः मेरी बहिन सौभाग्यवती विद्या ही रसोई बनाती थी। मालवीयजी रेशमी वस्त्र पहिने माथे पर चन्दन लगा, यह पद गुनगुनाते आते थे —

[illegible] को सुखद [illegible]
[illegible] को मन [illegible] को
रामायण [illegible] कहाई।

[illegible] पर पहुँचकर वे यह ही [illegible] स्वर में [illegible] के समझते! [illegible] [illegible] उनकी

कुन्दनदेवी तुरन्त आ जातीं और उनके लिए आसन बिछा देतीं। यद्यपि मेरी बहिन बहुत अच्छी रसोई बनाती हैं परन्तु एक दिन दाल में नमक ज़रा अधिक हो गया। वे कुछ नहीं बोले। कुन्दन देवी तो वहाँ बैठी ही थीं। मालवीयजी मौके की ताक में थे। जैसे ही कुन्दनदेवी की आँख दूसरी ओर फिरी मालवीयजी ने थोड़ा सा जल दाल में मिला दिया। सिर्फ मेरी बहिन ने देख लिया। उनके नेत्रों में अपनी त्रुटि और श्वसुर के स्नेह पर आँसू बहने लगे। कुन्दनदेवी का स्वभाव मार्दव और स्निग्धता का विचित्र सम्मिश्रण था। मालवीयजी की सेवा में तनिक भी त्रुटि उन्हें असह्य थी। यदि उन्हें पता चल जाता कि दाल में नमक अधिक पड़ जाने के कारण मालवीयजी को दाल में जल मिलाना पड़ा तो वे मेरी बहिन को छठी का दूध याद करा देतीं।

एक बार मालवीयजी और उनके पुत्र पं० राधाकान्त मालवीय साथ साथ रसोई में भोजन करने के लिए गये। लकड़ी खराब थी। चूल्हा ठीक नहीं जल रहा था। बहुत फूँकने पर भी लकड़ी से कोयला कम हुआ। अतः रोटी कम फूलती थी और उसमें बहुत सी चित्तियाँ पड़ जाती थीं। राधाकान्त स्वभाव के उग्र हैं और भोजन में क्या सभी बातों में बहुत मीन-मेख करते हैं। मालवीयजी मौजूद थे इसलिए कुछ बोल तो न सके पर लगे रोटी पर से चित्तियों को छाँटने और इस प्रकार उन्होंने थाली के नीचे रोटी के टुकड़ों का एक ढेर लगा दिया। मालवीयजी से न रहा गया। बोले भैया! ऐसा नहीं करना चाहिए। अन्न का अनादर अनुचित है। जब लकड़ी ही खराब है तो वह बेचारी क्या करे। रोज़ तो ऐसा नहीं होता।

करुणावतार मालवीयजी।

शास्त्र कहता है कि असल एक रस है और वह है करुण रस। अन्य जितने रस हैं वे इस रस के रूपान्तर हैं।

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान् ।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारा-
नम्भो यथा सलिलमेव तु तत्समस्तम् ।

—भवभूति

(रस केवल एक है और वह करुण है। निमित्तभेद के कारण उसमें अनेक रूपान्तर होते हैं। जल भँवर बुद्बुद तरङ्ग ये सब जल ही के रूपान्तर हैं।)

मालवीयजी का करुण रस बड़ा प्रबल था। वे दुखियों को देखकर द्रवित हो जाते थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की बात है जब वे वहाँ के वाइस-चांसलर थे। उसी समय मेरे परम मित्र भाई श्रीकृष्णदास विश्वविद्यालय में छात्र थे। दासजी उग्र विचारों के एक क्रान्तिकारी थे। मालवीयजी उनकी प्रतिभा एवं उत्साह के कायल थे। और मालवीयजी ने दासजी के हृदय में घर कर लिया क्योंकि दासजी उनके घनिष्ठ सम्पर्क में आ चुके थे। एक बार मालवीयजी ने एक राजनीतिक विद्वान् अंगरेज को विश्वविद्यालय में निमंत्रित किया। विद्वान् महोदय ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया था। परन्तु दासजी की पार्टी ने मालवीयजी से स्पष्ट कह दिया कि वह व्यक्ति निमंत्रण के योग्य नहीं है और उनकी पार्टी उन्हें विश्वविद्यालय में घुसने न देगी। मालवीयजी ने कहा कि सन्ध्या समय विश्वविद्यालय के सब छात्रों की एक वृहद् सभा करो और जो वह निश्चय करेगी उसका मैं पालन करूँगा। दासजी ने स्वीकार कर लिया। सन्ध्या समय एक बड़ी मीटिंग हुई। मालवीयजी ने उसमें जोरदार व्याख्यान दिया। उसके बाद श्रीकृष्णदास बोले। परिणाम यह हुआ कि विद्यार्थियों की जीत हुई। मालवीयजी तनिक भी दुःखी नहीं हुए और यही पर बात [illegible] कि वक्तव्य का आदर करेंगे। तदनन्तर मालवीयजी ने निमंत्रित महानुभाव से क्षमा

माँगी और उन्हें जाने से रोक दिया। दूसरे दिन मालवीयजी ने दासजी को बुलवाया और पीठ पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिया और कहा तुमने हमसे मोर्चा लेकर हमें हराया हम तुमसे बहुत प्रसन्न हैं। तुम जीवन में बहुत कुछ काम कर सकोगे। तुम लोग शायद मुझे माडरेट समझते हो। तुम्हें एक बात बताऊं। १८८२ में अजमेर कान्सपिरेसी केस में मेरे ऊपर वारंट निकल चुका है। दासजी का कण्ठ अवरुद्ध हो गया और आँखों से अश्रु बहाते हुए वे मालवीयजी के चरणों में नत मस्तक हो गये।

इसके कुछ समय बाद एक विचित्र घटना घटी। दासजी स्वयं शान्तिवादी विचारों के तो थे ही उनके कई मित्र भयंकर क्रान्तिकारी थे। उनके नाम वारंट था और वे प्रच्छन्न (Under ground) रहते थे। ऐसा एक मित्र अपनी पत्नी के साथ बनारस आ रहा था। पत्नी आसन्नप्रसवा थी। रास्ते में उसके पेट में दर्द हुआ और वह चलने फिरने में असमर्थ हो गयी। मित्र महोदय ने अपनी पत्नी को बनारस से कई मील दूर पर एक वृक्ष के झुरमुट में छिपा दिया और दासजी को खबर भेजी कि वे मोटर का प्रबन्ध कर उनकी पत्नी को लिवा जाय और किसी औरतों के अस्पताल में प्रसव के हेतु तुरन्त भरती करा दें। दासजी ने जब यह सुना तो उनके होश उड़ गये। भागे-भागे मालवीयजी के सेक्रेटरी पंतजी के पास गये और उनसे मालवीयजी की मोटर माँगी। पंतजी ने देने से इन्कार कर दिया और कहा कि बिना मालवीयजी की आज्ञा के मोटर नहीं मिल सकती। दासजी दौड़े-दौड़े मालवीयजी के निवास स्थान पर गये। उनके पुत्र वहाँ मौजूद थे। उन्होंने कहा मालवीयजी विश्राम कर रहे हैं अभी भेंट नहीं हो सकती। दासजी ने आव देखा न ताव दरवाजा ढकेलकर भीतर घुस गये। मालवीयजी लेटे थे। दासजी को देखकर बड़ी स्निग्धता के साथ कहा दासजी! इतना घबराये हुए क्यों मालूम होते हो! आओ बैठो। दासजी

ने खड़े ही खड़े थोड़े में सब वृत्तान्त कह डाला। उसे सुनते ही भाईजी उठ बैठे और जोश में आकर बोले — तुम्हें शरम नहीं आती। तुम बड़े अविचारी बनते हो। यहाँ पर बहू आसन्नप्रसवा है और पीड़ा से पेट के नीचे पड़ी है और तुम पंजाब में और हमसे मोटर माँगते फिर रहे हो। क्या अभी तुमने मोटर अवश्य ही ले लिया और खुद ड्राइव कर बहू को क्यों अब तक अस्पताल नहीं ले गये? हमारी मोटर जल्दी लेकर जाओ और उसे अस्पताल में भर्ती कराओ। जब तक शान्ति-पूर्वक प्रसव न हो जाय तुम अस्पताल ही में रहना। खर्चे के लिए चाहे जो रुपया लेते जाओ। और जो कुछ खर्च लगेगा हम देंगे। और हम स्वयं उसकी देख रेख के लिए आवेंगे। डाक्टर फौरन मोटर लेकर गये और बहू को अस्पताल के प्राइवेट वार्ड में भरती करा दिया। वहाँ उसका शान्तिपूर्वक प्रसव हुआ। जब तक बहू अस्पताल से विदा नहीं हुई प्रतिदिन पोद्दारजी उसका हाल-चाल लेने जाते थे। और कुल खर्च उन्होंने अपने पास से दिया।

हम पोद्दारजी को 'भाईजी' कहें या महामानव

हम पूज्य पोद्दारजी के समझने के लिए बार बार फिर याद कर लें कि उनका परिवार एक परम भागवत परिवार था और यह भगवान् से निर्मित उस परिवार की कई पीढ़ियों की पवित्र परम्परा थी जिसके बल पर वहाँ सुख और शान्ति सदा बनी रहती थी। संस्कृत साहित्य बताता है कि लक्ष्मी (सुख-सम्पत्ति) कहती है

[illegible]

[illegible]

कि हे इन्द्र! जिस परिवार में प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्न है जहाँ पर भी मानसिक प्रसन्न-वदना रहती है और जहाँ सदा देवार्चन-निरत मैं रहती वहाँ मैं निवास करती हूँ।

और मालवीयजी भी पाली सुत्तनिपात के धनिय गोप की भाँति विघ्न-बाधाओं से विचलित न होते हुए सुखपूर्वक जीवन-यापन करते थे। धनिय नाम का एक पवित्र परिवारवाला बलिष्ठ गोप था। घनघोर वृष्टि हो रही है। धनिय नाम का गोप गार्हस्थ्य जीवन के सरस सुखों की प्राप्ति के कारण अपनी मस्ती में निश्चिन्त बैठा हुआ देवराज इन्द्र को चुनौती दे रहा है—

पक्कोदनो दुद्धखीरोहमस्मि
अनुतीरे महिया समानवासो।
छन्ना कुटि आहितो गिनि
अथ चे पत्थयसी पवस्स देव॥

मेरा यहाँ दूध खीर और पका हुआ भोजन यथेष्ट है। नदी किनारे मैं अपने परिवार के साथ एक ही बनी हुई कुटियों में रहता हूँ। मेरी कुटी खूब छाई हुई है और उसमें अग्नि प्रज्वलित है। हे देव! तुम जितना चाहो बरसो। मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

अन्धकमकसा न विज्जरे
कच्छे रूळ्हतिणे चरन्ति गावो।
वुट्ठिम्पि सहेय्युं आगतं
अथ चे पत्थयसी पवस्स देव॥

मेरे यहाँ न मक्खियाँ हैं न मच्छर। मेरे कछार में गायों के लिए हरी-हरी घास लहलहा रही है। यहाँ चरती हुई मेरी तगड़ी गायें वर्षा का वेग सहने में समर्थ हैं। देव! तुम जितना चाहो बरस लो।

गोपी मम अस्सवा अलोला
दीघरत्तं संवासिया मनापा।
तस्सा न सुणामि किञ्चि पापं
अथ चे पत्थयसी पवस्स देव॥

मेरी पत्नी सुन्दर है। उसका मन शुद्ध है। यह बहुत दिनों से मेरी सहधर्मिणी है और मुझमें अनुरक्त है। उसके विषय में मैंने कभी कोई अनुचित बात नहीं सुनी। हे देव! तुम जितना चाहो बरसो।

अत्तवेतनभतोऽहमस्मि
पुत्ता च मे समानिया अरोगा।
तेसं न सुणामि किञ्चि पापं
अथ चे पत्थयसी पवस्स देव॥

मैं अपनी कमाई से अपना भरण-पोषण करता हूँ अर्थात् हलाल का खाता हूँ हराम का नहीं। मेरे पुत्र और पुत्रियाँ स्वस्थ एवं नीरोग हैं। उनके सम्बन्ध में भी मैंने कभी कोई अनुचित बात नहीं सुनी। देव! तुम जितना चाहो बरसो।

अत्थि वसा, अत्थि धेनुपा
गोधरणियो पवेणियो च अत्थि।
उसभो पि गवम्पती च अत्थि
अथ चे पत्थयसी पवस्स देव॥

मेरा गोठ बछड़े-बछियों से भरा है। गाभिन गायें भी उसमें हैं। उसमें साँड़ भी है। देव! तुम जितना चाहो बरस लो।

खिला निखाता असम्पवेधी
दामा मुञ्जमया नवा सुसण्ठाना।
नहि सक्खिन्ति धेनुपापि छेत्तुं
अथ चे पत्थयसी पवस्स देव

गायों के खूँटे ज़मीन में गड़े हुए हैं। मूँज की खूब बटी हुई रस्सियाँ नई और मोटी हैं। साँड भी उन्हें नहीं तोड़ सकता। देव! तुम जितना चाहो बरस लो।

यदि इस संस्मरण के लिए उपयुक्त एक ही दो स्थान पर्वत के पर यह प्राचीन भारतीय पद्धति के अनुसार था। [illegible]

एक सुखी एवं सन्तुष्ट ग्रामीण परिवार की इतनी सुन्दर झाँकी है और फिर मालवीयजी के सुखी परिवार से उसका इतना साम्य है कि मैं उसके पूरे का पूरा उद्धरण करने का लोभ नहीं संवरण कर सका। पाठक मुझे क्षमा करेंगे।

मालवीयजी की एक सगी बड़ी बहिन थी। उनका नाम सुभद्रा था। सम्पूर्ण परिवार उन्हें आदर से बिट्टी बुआ कहता था परिवार व बाहर के लोग भी उन्हें बिट्टी बुआ के नाम से ही पुकारते थे। मैं भी उन्हें बिट्टी बुआ ही कहता था और बहुत दिन तक नहीं जानता था कि वे मालवीयजी की सगी बहिन हैं। यह तो उ संस्मरण लिखने बैठा तो मैंने अपनी बहिन सौभाग्यवती विन बतलाया। बिट्टी बुआ मिर्जापुर में ब्याही था और बाल-विधवा थीं। विधवा होते ही उनके पिता पं० ब्रजनाथजी उन्हें अपने घर लिवा लाये और अपने इष्टदेव राधा-कृष्ण की जोड़ी के सामने खड़ी कर कहा कि 'बेटी! अब तुम्हारे यही पति हैं और यही तुम्हारे पुत्र हैं।' निर्बोध बच्ची मीराबाई की भूमि लेखा गड़ी रही जैसे कह रही हो—

अब न रह मेरी गुरुर चलों पर।
हूँ भी आँसू बहाये जाते हैं॥

और उसने अपना अनुपम निष्ठा के आश्रय को अपने जीवन का छोर मान बाँधकर जीवन-पर्यन्त निभाया। ८६ वर्ष की अवस्था में उनका देहान्त हो गया। बचपन की उस मस्ती और दुर्भाग्य अवधि में बिट्टी बुआ ने अपने व्यवहार एवं आचरण से कभी कोई ऐसी बात नहीं की जिससे परिवार का मस्तक नत हो।

उनके देहान्त के थोड़े ही दिन बाद की दो एक छोटी-छोटी घटनायें हैं। उनसे परिवार के स्निग्ध वातावरण पर प्रकाश पड़ता है अतः उन्हें लिखता हूँ। मेरी बहिन सौभाग्यवती विन को व बहुत प्यार करती थीं। पिता के बाद दो सन्तान की ओर से दोनों

कन्यायें थीं। मालवीयजी की बड़ी इच्छा थी कि पिता के भी एक पुत्र हो जाय जैसे उनके अन्य पुत्रों के थे। सम्भवतः उनका यह ख्याल रहा हो कि पुत्र न होने से श्री० पिता का जी छोटा रहता हो। परन्तु पौत्र की प्रतीक्षा करते मालवीयजी को काफ़ी दिन बीत गए। तत्पश्चात् एक दिन यह अवसर आ ही आ गया। घर की सभी स्त्रियाँ गुपचुप अपनी चर्चा करने लगीं। किन्तु यह बात के देर से बात नहीं छिपी थी। उन्होंने मालवीयजी से कहा मानो ये लोग गुप-चुप बात करता है। कहीं कुण्डली से नाम लिखता है। मालवीयजी का प्रसन्न हुए यद्यपि भीतर से आ घुर घुर करता था। बिट्टी बुआ से इस शुभ समाचार को सुनकर धीरे से बात उस करते ही से कहने लगे 'पुत्रपौत्रवती आयुष्मती भवताम्' (सन्तति आयुष्मती (जिता) की गोद में पुत्र से भरी रहे)। उनकी मुराद से जिनकी कम पूरी हुई। समय से सत्यनारायण का जन्म हुआ। तब तक बिट्टी बुआ बहुत थक गयी थीं। दिन गये राधिकाजी के पुराने कपड़ों की गठरी रख के नीचे और ऊपर गहने निकालने लग। वैसे मौसम की पुरानी रस्मा थी कि वह राधिकाजी के कपड़ों को धो दे और गहना को चमचमा दे। राधिकाजी को रख रख कर मन्नी मनाना उनके कपड़ों को धोना और रस्मा को मनाना रखना उनका अपना मन से नित्य का काम था। परन्तु अब वे चार पाई से लग गयी थीं। इन कामों के लिए उन्हें दूसरे का मुँह ताकना पड़ता था। सत्यनारायण जब बारह दिन का हुआ तो उन्होंने कहा कि अब बच्चा पकाओ नहला दो और स्नान भी दो। पसावा (निश्चय निमन्त्रण) का समय आने पर जिस दिन सावन समारोह की विधि निश्चित हुई थी उस दिन बिट्टी बुआ गर्भिणी था के घर के अन्दर उनके कमरे में जा बसा। श्री० सत्यनारायण का विवाह हो गया है और उस घर में मुन्नी की पौत्री सौभाग्यवती ... एम० ए० सर्वोत्तम शास्त्री हैं।

एक छोटी-सी घटना जो मालवीयजी के पुत्र पं० गोविन्द मालवीय के विवाह से सम्बन्धित है याद आ गयी। उसे लिखता हूँ। चि० गोविन्द का विवाह पं० बालकृष्ण भट्ट की पोती से मालवीयजी की पत्नी के मर्जी के खिलाफ तय हुआ था। मालवीयजी ने उसे स्वीकार कर लिया था अतः पतिधर्मेमा सौ० कुन्दन देवी ने विरोध नहीं किया। जब नववधू सौ० ऊषा घर में आई तो सास को परछन करना चाहिए था पर सौ० कुन्दन देवी सर झुकाकर बैठी रहीं। परछन के लिए नहीं उठीं। एक भौजाई ने तुरन्त चुटकी ली बाबी "भइन! कैकेयी कोप भवन में बैठी हैं। पहिले उन्हें तो मनाओ कि उठकर परछन करें तब आगे टिकुना (वैवाहिक रीत रस्म) चले।" मालवीयजी ने ईषत्-हास्य से कहा तो हाँ, हाँ पर अपनी पत्नी से कुछ नहीं कहा और वे 'चित्रार्पितारम्भ' सर झुकाये बैठी रहीं। भौजाई ने उठकर परछन कर दिया। सौ० कुन्दन देवी की बात रह गयी। क्रमशः सौ० ऊषा ने उन्हें अपनी सेवा से इतना मोह लिया कि वे अपनी पतोहुओं में सबसे अधिक उसे प्यार करने लगीं।

मालवीयजी जब कभी प्रयाग से बाहर जाते थे—और वे आये दिन जाते थे—तो वे सर्वप्रथम अपने घर परिवार के इष्टदेव राधाकृष्ण के मन्दिर में जाकर नतमस्तक होते थे। तदनन्तर वे अपनी बहिन चिट्टी बुआ से थोड़ी देर तक उन्हें दुलारते थे। इस कार्यक्रम में कभी फर्क नहीं पड़ा।

अभी कल ही की बात है। मैंने अपनी बहिन सौ० विद्या से कहा कि मैं मालवीयजी के संस्मरणों में तुम्हारी माता की 'शाबिद' शब्दों में लाभगा। बोली "भैया! तुम्हें तो उनसे कभी काम नहीं पड़ा। तुम उन्हें कैसे समझ सकते हो? उनका चित्रण करना सहज काम नहीं है। यह तुम्हारे बस का नहीं है।" मैंने कहा तुमसे हम सब पूछ लेंगे। बोली 'भैया लिखने पूरा दरबार नहीं जाते। दुग्गा

हम न करो। हमें तो इसी में सन्देह है कि बापूजी (मालवीयजी) उनका ठीक-ठीक मूल्यांकन कर सकें।" पर अब उसने मुझ पढ़ि बढ़ देखा तो मुझसे बहुत देर बातें कीं और मैं सन्तुष्ट होकर घर लौटा।

संस्मरण के कुछ पात्र ऐसे ढीठ होते हैं कि बार-बार आपकी राह में अनाहूत आकर खड़े हो जाते हैं। यद्यपि आप उनके सम्बन्ध में थोड़ा-बहुत लिख चुके हैं परन्तु इससे उनको सन्तोष नहीं होता। इसमें दोष उनका नहीं है। दोष संस्मरण-लेखक का है। यदि आप किसी अतिथि को पेट भर भोजन देते तो चाहे वह थोड़ी देर के लिए थमा जाय पर वह फिर आपका दरवाजा पीटेगा और आपको उसके लिए दरवाजा खोलना पड़ेगा चाहे उनके कारण अन्य सम्भ्रान्त अतिथियों को थोड़ा रुकना पड़े।

ऐसी ही एक पात्र हैं सौभाग्यवती कुन्दन देवी। उनके सम्बन्ध में पहिले कुछ लिख चुका हूँ पर अब देखता हूँ कि वह पर्याप्त न था। जिस पात्र का संस्मरण लेखक के साथ जीवन-पर्यंत चोली दामन का सा रहा हो जिससे सौख्य एवं साहचर्य से उसे अपनी कर्मभूमि में निरंतर प्रेरणा और उत्साह मिलता रहा हो जो उसके गार्हस्थ्य जीवन का सहारा रहा हो उसके लिए आपको दरवाजा खोलना पड़ेगा चाहे जितनी बार और जिस समय वह आवे।

सौभाग्यवती कुन्दन देवी में गृहिणी की सी शासन शक्ति थी भी का सा मान्य था माता का वात्सल्य था। थोड़ा मधुर बरे और गर्वी नाम सर्व का अभाव था। जिसने ६० वर्ष बिना किसी आगे के गंगास्नान करके अपने शरीर एवं आत्मा को परिपूत किया हो और सर्वोपरि पति का मुख जोहना जिसका परम धर्म हो ऐसी एक कुशाग्रिका पत्नी पाकर मालवीयजी उस हुलासते थे तो इसमें क्या आश्चर्य था।

कुन्दन देवी अपनी स्पर्धा पर इस प्रकार हावी था [illegible]

ममवृत्तिरर्पीनि मार्दवं समये यस्य तनोति तिग्मताम् ।
प्रविधिव्छति लोकमोजसा स विवस्वानिव मेदिनीपतिः ॥

सूर्य जिसकी रश्मियाँ साधारणतया प्रातः एवं सायंकाल में मृदु होती हैं पर मध्याह्न में उन्हें कोई सहन नहीं कर सकता।

मालवीयजी और स्त्री-शिक्षा

स्त्रियों की शिक्षा की ओर उनका क्या दृष्टिकोण था इसको विचार करने में यह न भूलना चाहिए कि जो कुछ काम वे करते हैं जो कुछ विचार उनके मन में आते थे चाहे वे शिक्षा-सम्बन्धी हों अथवा सामाजिक या राजनीतिक उन सबको वे धर्म की कसौटी पर कसते थे और जब वे उस पर खरे उतरते थे तभी उसके अनुसार वे काम करते थे। स्त्रियों और बालिकाओं की शिक्षा के सम्बंध में उनके दृष्टिकोण की परिधि बड़ी विस्तृत थी। केवल स्कूल और कालिजों के भीतर सीमित नहीं थी। लड़कियों के चरित्र निर्माण पर वे विशेष जोर देते थे। जब कभी कोई लड़का या लड़की आटोग्राफ बुक पर मालवीयजी से हस्ताक्षर करने के लिए कहता था तो लड़कों के आटोग्राफ पर मैं यह लिखकर हस्ताक्षर करते

सत्येन ब्रह्मचर्य्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्यात्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव ॥

(सत्य से ब्रह्मचर्य से व्यायाम से विद्या से देशभक्ति से और आत्मत्याग से सर्वदा सम्मान पाने के योग्य बनो।) और बालिकाओं के आटोग्राफ बुक पर लिखते थे

सा ही पूजो होय तो होता सभी समान।
अथवा नारिको चरित्र रूप शील-गुण-मान ॥

ये दोनों पद मालवीयजी के ही बनाये थे। स्पष्ट है कि वे बालिकाओं के चरित्र निर्माण पर विशेष जोर देते थे। मालवीयजी के रूप शील गुण मान पर एक

आ गयीं। एक बार माघ मेले के अवसर पर वे गंगास्नान करने गये थे। साथ में ईश्वरशरणजी थे और मैं था। बाँध के नीचे हम लोग पैदल चल रहे थे। ईश्वरशरणजी भीड़ के कारण कुछ पीछे पड़ गये थे। हम दोनों से थोड़ी ही दूर पर एक अतीव सुन्दरी सत्रह-अट्ठारह वर्षीया पंजाबी लड़की आँखें नीचे किये हुए विष्णुसहस्रनाम का कण्ठस्थ पाठ करते मन्दगति से चली जा रही थी। जैसे ही उस लड़की के पाठ की मधुर ध्वनि मालवीयजी के कानों में पड़ी मालवीयजी ने उसकी ओर देखा और तुरन्त मुड़कर बोले ईश्वरशरण! जल्दी आओ। देखो उस लड़की को। जब हमारी बहुएँ और बेटियाँ ऐसी होंगी। मालवीयजी की परिभाषा में उस लड़की का सौन्दर्य उसकी गम्भीरता उसका सकुचा दुबला बदन उसकी नीची निगाहें उसका स्वास्थ्य उसकी मधुर कण्ठध्वनि से विष्णु सहस्रनाम का पाठ सभी भारतीयता के आदर्श अंग थे। वे सहसा बोल उठे

यथा [illegible] कण्ठे कलयति रत्ना।
तथैव [illegible] [illegible]॥

—राजशेखर

जैसे पुत्र जन्म के संस्कार से किसी का सच्चा सुहित होता है उसी तरह चरित्र-निर्माण का श्रीगणेश अच्छे कर्मों के अभ्यास से होता है।

सन् १९४१ की बात है। एक दिन दीक्षान्त-भाषण के अवसर पर उन्होंने छात्र छात्राओं एवं अध्यापकों को उपदेश दिया इस बात का सब विद्यार्थी व अध्यापक जितना भी पढ़ना चाहें पढ़ें परन्तु साथ साथ चरित्र बनाना है। धन और चरित्र दोनों का मेल कर देने से संसार में मान होगा तथा लोक परलोक होगा।" एक दूसरे अवसर पर उन्होंने प्रयाग के विद्यार्थी छात्रों और अध्यापकों से कहा। मालवीयजी ने कहा था— विश्वविद्यालय में शिक्षा पाने का उद्देश्य

अवश्य यह है कि व्यायाम करके शरीर बनावें। पहिले स्वास्थ्य सुधारें, फिर विद्या पढ़ें। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन रहे तो जीवन का लाभ उठा सकते हैं। नित्य सबेरे-शाम नियम से व्यायाम करें। शाम को खेलें। मैदान में विचरें। जल्दी भोजन करें और नियम से नित्य अध्ययन करें। धार्मिक उत्सवों एकादशी-कथा गीता प्रवचन आदि में उपस्थित रहें और विद्वानों का उपदेश लें। उनका अनुभव ग्रहण करें और आशीर्वाद लें। अपनी रक्षा आप करें। समय की पाबन्दी रखें। व्यर्थ समय नष्ट न करें। माता पूज्य है। हम माता से शिक्षा लें और उनके उपदेश सुनें। ऐसे मालूम नहीं कितने उपदेश उन्होंने छात्रों और छात्राओं को समय-समय पर दिये हैं जिनसे स्त्री-शिक्षा की ओर मालवीयजी की पवित्र भावना का पता चलता है। एक स्थान पर आप लिखते हैं

शास्त्र बतलाता है कि धर्मार्थ काममोक्षाणां आरोग्य मूलकारणम् (धर्म काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों के साधन का मूल कारण आरोग्य—नीरोगता तन्दुरुस्ती है बिना इसमें से एक का भी साधन नहीं हो सकता। प्रत्येक स्त्री और पुरुष को उचित है कि किसी न किसी प्रकार का व्यायाम नित्य करे जिसमें धन के साधन धन के कमाने सुख के भोगने और अन्त में परमात्मा को प्राप्त करने के लिए उसकी काया प्रसन्न और मन निर्मल बना रहे।

दूध पियो, कसरत करो नित्य जपो हरि नाम।
हिम्मत से कारज करो पूरेंगे सब काम॥

समस्त हिन्दू सन्तान के हित शास्त्र के अनुसार मैंने संक्षेप में हिन्दू धर्म का शुद्ध उपदेश लिख दिया है। जो प्राणी श्रद्धा और भक्तिपूर्वक इस उपदेश को बरतेगा वह इस लोक में सुख और मान पावेगा और परलोक में परम पद को पहुँचेगा।

मालवीयजी के इस उपदेश को कि 'माता पूज्य है। हम माता से शिक्षा लें और उनके उपदेश सुनें' पढ़कर मुझे Victor H

(विक्टर ह्यूगो) का यह वाक्य सहसा याद आ गया । "To form the mind of a young girl all the nuns in the world are not equal to one mother (कन्या के मन को बनाने के लिए दुनिया के कानवेंट की सब भिक्षुणियाँ मिलकर एक माँ के बराबर नहीं हैं ।)

महामनाजी स्त्रियों को पुरुषों से गौण स्थान नहीं देते थे जो शिक्षा वे पुरुषों के लिए उपयोगी समझते थे उन सबको वे स्त्रियों एवं बालिकाओं के लिए उचित समझते थे । वे चाहते थे कि यह स्त्रियाँ और स्त्रियाँ सीता और अरुन्धती के समान ही पवित्र हों । वे चाहते थे कि आजकल की लड़कियों पर भी उनके पिता को वैसा ही गर्व हो जैसा महर्षि जनक को था और जो सीता की अग्नि-परिशुद्धि का नाम सुनकर क्रोध से गरज उठे थे— आह ! कोऽयमग्निर्नाम अस्मत्प्रसूतिपरिशोधने' (ओह ! अग्नि की क्या मजाल है कि वह हमारी सन्तान की परिशुद्धि करे ।) और तब अरुन्धती ने उनका क्रोध यह कहकर शान्त किया था — सम्यगेतत् । वत्सां प्रति अग्निरिति प्रतिवचनमयाचित । सीतायां पर्याप्तम् । (भवभूति)

(भाव यह कहते हैं । सीता के सामने पवित्रता में अग्नि कम रहती है । सीता कह देना ही पवित्रता कह देना है ।)

मालवीयजी चाहते थे कि उनकी लड़कियाँ गार्गी और आत्रेयी की तरह विदुषी हों जो वाल्मीकि के आश्रम को छोड़कर अगस्त्य के विद्याश्रम में पढ़ने के लिए आ गयी थी । क्योंकि वाल्मीकि के आश्रम में लव और कुश के लालन-पालन में महर्षि के व्यस्त रहने से विद्याध्ययन में अड़चन पड़ता है । आत्रेयी स्वयं कहती है—

अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे
भूयांस उद्गीथविदो वसन्ति ।

तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां
वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि ॥

भवभूति

आत्रेयी वनदेवता से कहती है कि इस अगस्त्य के विद्याश्रम में बहुत से उद्गीथ जानने वाले ऋषि रहते हैं। उनसे वेदान्त विद्या पढ़ने के लिए मैं महर्षि वाल्मीकि के पास से यहाँ आ रही हूँ। (क्योंकि वहाँ अध्ययन में बड़ी अड़चन पड़ रही है।)

मालवीयजी तो इस प्रकार की ऊँची एवं पवित्र स्त्री-शिक्षा की कल्पना कर रहे थे। अतः उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में स्त्रियों और लड़कियों के लिए एक स्वतंत्र कालिज की स्थापना की जहाँ हर विषय में ऊँची से ऊँची शिक्षा के साथ छात्राओं को धर्म की शिक्षा दी जाती है।

एक समय किसी अधिवेशन में वहाँ की प्रधानाचार्या ने अपने भाषण में कहा था— मालवीयजी छात्रों को पुत्रवत् और छात्राओं को अपनी पुत्री के समान मानते थे और उनके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य तथा चरित्र संगठन पर पढ़ाई से अधिक जोर देते थे। वे कहते थे कि यही तो गौरव-निष्ठा का पावन स्रोत है। [illegible] होने से शिक्षा विकृत होकर हानि पहुँचाती है। छात्राओं के शिक्षण और चरित्र संगठन का उत्तरदायित्व वे अध्यापकों पर रखते थे और उनसे बहुत सारे समाचार सुनते थे। थोड़े में यह कहना काफी होगा कि मालवीयजी एक धर्मनिष्ठ एवं आदर्श शिक्षाशास्त्री थे जो स्त्रियों और बालिकाओं का सर्वांगीण अभ्युदय चाहते थे और उसके लिए सदा परिश्रम और प्रयत्न करते थे।

सन् १९०४ में मालवीयजी ने स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्ट और राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन के सहयोग से प्रयाग में गौरी पाठशाला की स्थापना की जो आजकल उच्चतर माध्यमिक कालिज हो गया है और उसमें लगभग एक हजार लड़कियाँ पढ़ती हैं।

जन्मशताब्दी समारोह

२५ दिसम्बर सन् १८६१ प्रयाग के [illegible] में [illegible] हुआ। उस दिन को सं० वि० सं० १९१८ पौष कृष्ण ८ बुधवार का प्रादेशिक [illegible] बजकर ५४ मिनट पर मालवीयजी का जन्म हुआ था।

मालवीयजी की जन्मकुंडली की विशेषता है गुरु-चान्द्र योग। मनकारक चन्द्रमा एवं ज्ञानदाता गुरु दोनों का योग पराक्रम स्थान में है। मेरी तुच्छ बुद्धि में तो इसी पर से उनके गुण और शक्ति इस बात के द्योतक हैं कि मालवीयजी का चन्द्र शुद्ध हृदय का मन्दिर में गुरु अर्थात् निर्मल दृष्टि और धैर्य के आगार या इसलिए उनमें मर्यादा-पालन के लिए वे जीवन भर मार मारे फिरते रहे। इन ग्रहों के प्रभाव की गणना का साक्षी इस [illegible] को कहीं का [illegible] है। [illegible] गुरु का मनका सभी है मानो नहीं आती। [illegible] के प्रभाव को कोई माने या न माने के मार्ग पर मार्गों के द्वारा मनता [illegible] है। विक्टर ह्यूगो कहते हैं—

"God makes visible to men his will in events, an obscure text written in a mysterious language. Men make their translations of it forthwith; hasty translations, incorrect, full of faults, omissions and misreadings. Very few minds comprehend the divine tongue. The most sagacious, the most calm, the most profound decipher

slowly and when they arrive with their text, the need has long gone by" there are already twenty translations in the public square.

(ईश्वर घटनाओं के द्वारा अपने विचार को व्यक्त करता है। यह विधान एक ऐसा दुर्बोध मूल पाठ है जिसकी अभिव्यक्ति रहस्यमयी भाषा में रहती है। लोग इस घटनात्मक मूल पाठ की व्याख्या तुरन्त करने लग जाते हैं। यह व्याख्या हड़बड़ी में की जाती है जो गलत, दोषों से भरी अपूर्ण एवं अशुद्ध पाठयुक्त होती है। बहुत ही थोड़े मस्तिष्क विधि की भाषा को समझ सकते हैं। बड़े-बड़े कुशाग्रबुद्धिवाले शान्त भाव से विचारक और अगाध मनन करने वाले, बड़े प्रयत्न से छान-बीन कर धीरे धीरे उस रहस्य को खोलते हैं और जब उन घटनाओं से मूल-पाठ का पुनर्निर्माण करते हैं तब तक मैदान में उस समय उसके बीसों अनुवाद पहिले से मौजूद रहते हैं, जिससे इस पुनर्निर्मित मूल-पाठ की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।)

माननीयजी के जन्म के समय विधि ने उनके ललाट पर यह भी लिख दिया था कि इस महापुरुष का देहावसान विक्रम २००३ मार्गशीर्ष कृष्ण तृतीया को होगा। परन्तु ललाटलिखितं विधिना तथाप्यन्ने उसे पढ़ सका उलमती में नहीं हो सकता। दस वर्ष वर्ष के जीवन में माननीयजी के कार्यक्षेत्र में ललाट-लेख के अनुसार अनेकानेक घटनायें हुईं। उनकी अनेक व्याख्यायें भी हुईं। कितनी व्याख्यायें जल्दबाजी में बिना समझे-बूझे गलत-सलत। फिर भी इन सब समालोचनाओं को पर्दे की ओट में छोड़कर यह स्पष्ट पुरुष युग की मांग का आदर करते हुए आगे बढ़ता ही गया। परन्तु गर्भी तो ऐसे नहीं थे जो उन घटनाओं की अस्पष्ट अधूरी व्याख्या कर दें। वे उन घटनाओं की गहराई तक गये और उसे अच्छी तरह

मथकर उसमें से नवनीत निकाल लिया। वह एक विचारक थे पण्डित जवाहरलाल नेहरू।

मालवीयजी के जन्मशताब्दी समारोह के उद्घाटन करने के समय जो २५ दिसम्बर १९६१ को एलफ्रेड पार्क इलाहाबाद में स्थित प्रयाग संगीत समिति के विशाल हाल में हुआ था नेहरू जी ने महा-लेखा-परीक्षक (Auditor-General) की भांति मालवीयजी सम्बन्धी उन घटनाओं की Balance sheet (आय व्यय का लेखा) और Profit and loss account (लाभ और हानि का लेखा) को जनता के सामने रखा और उसके समर्थन में कहा —

भारतीय राजनीति में मालवीयजी एक ऐसे मनुष्य थे जिन्होंने न केवल राष्ट्रीय-आन्दोलन में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। अपितु कांग्रेस के उदारमना तथा अग्रगामी वर्ग को मिलाने की एक कड़ी के रूप में कांग्रेस की या भारतीय स्वतंत्रता के प्रतीक के रूप में सर्वमान्य रही-सदा की।

मालवीयजी का स्वभाव मीठा और मृदु सुसंस्कृत था। निर्माण के लिए वे निरन्तर प्रयास करते रहे परन्तु उनके करने का ढंग ध्वंसात्मक नहीं था। परिवर्तन की ओर उनका झुकाव था। इस सन्दर्भ में महामना मालवीयजी का राष्ट्रपिता गांधीजी से विचार-साम्य था।

महामनाजी शिक्षा की मात्रा के हिमायती भले थे यद्यपि उन्होंने हिन्दी तथा संस्कृत भाषा की उन्नति के लिए अविस्मरणीय काम किया। वे भारतीय संस्कृति के पोषक तथा पुरस्कर्ता थे। भारतीय संस्कृति की वास्तविक परम्परा यथावत् रखने के लिए सतत प्रयत्न शील रहे। उन्होंने ग्रामीणों में पददलित की भावना के अतिरिक्त भार से मुक्त होकर अपनी संस्कृति और वेश-भूषा के प्रति आदर भाव का उदय किया। महामना ने देशी भाषा और पा[illegible]

संस्कृति के भारतीयों को यह शिक्षा तथा प्रेरणा दी कि यदि वे भारतीय संस्कृति की उपेक्षा करेंगे तो उनकी मौलिकता समाप्त हो जायगी और वे विदेशी संस्कृति की कार्बन कापी मात्र रह जायेंगे।

मालवीयजी का मत था कि भारत को भूल जाना अपने को भूल जाना होगा। देश की समृद्धि के लिए आवश्यक है कि विज्ञान में बढ़ते हुए चरण के साथ देश की पुरानी संस्कृति को सम्बद्ध किया जाय। महामना के इन विचारों से नसीहत लेनी चाहिए।

महामना का लक्ष्य था देश के लोगों को स्वराज्य के लिए तैयार करना, ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करना जो अपने पर भरोसा रखे तथा सर ऊंचा कर चल सके। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था देश के भावी निर्माताओं को तैयार करना जो योग्य और सक्षम हों।

महामना कितने महान् राजनीतिज्ञ, दूरदर्शी तथा देशभक्त थे, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हमें इसी से मिल जाता है कि अंग्रेजी तथा विज्ञान को उन्होंने बनारस हिन्दू-विश्वविद्यालय में राष्ट्र के हित में प्रमुख स्थान प्रदान किया।

बचपन में ही मुझे महामना मालवीयजी के सम्पर्क का अवसर मिला। मैं मालवीयजी का अत्यधिक आदर करता था। युवावस्था में मैं जब विलायत से लौटकर आया तो भारती भवन पर उनसे मिलता था, प्रणाम किया करता था और वे मुझे समझाया करते थे। कभी-कभी मैं महामना से उलझ जाता था पर वे सदैव बड़े मीठे, परन्तु पुरअसर तरीके से मेरी शंकाओं का समाधान कर दिया करते थे।

हम नौजवान महामना के प्रति शिकायत करते थे कि वे धीमे चलते हैं। जवानी के जोश में हमें ऐसा ही लगता था।

इस दुनिया का किसी साकोतिदे उत्सुकता की बात ॥
जब कोई करता है कुछ उससे तो प्यार करता हूँ मैं ॥

संध्या में मैंने उस अल्बम शीट को रखा जिस मैत्रेयजी ने अपने अनुभव से मामाजीयजी का अतिनिकट सम्पर्क से लेख-सुनकर उस दिन जनता के सामने प्रस्तुत किया। इस अल्बम शीट को देखकर प्रसिद्ध और सागरतीर में प्रसिद्ध-ही-प्रसिद्ध रहा। साम का कहीं पता नहीं। अब मामाजीयजी की किस से प्यार सीमा को स्पष्ट ठिकाना मिला।

दूसरे दिन अर्थात् ३० दिसम्बर को मामाजीयजी का जन्म-दिवस था। यद्यपि उनका जन्म संध्या समय ए बजकर चौसठ मिनट पर हुआ था पर अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करने के लिए सार्वजनिक जलसा प्रातः ही बजे से आने-जाने लगी थी। मामाजीयजी के परिवार की स्त्रियाँ पहिले से भगवान् राधा-कृष्ण का शृङ्गार कर रही थीं। एक नहीं बड़ी तन्मयता से रच रचकर राधिकाजी के चरणों में मेंहदी लगा रही थी। मैं तो वहीं अपने मित्रों के साथ समारोह के प्रबन्ध में व्यस्त बना ही रहा था। इस मेंहदी के लगाने की प्रक्रिया को देखकर थोड़ी देर के लिए अवाक् और खोया-खोया सा रह गया। मुझे तत्काल बिट्टी बुआ (मामाजीयजी की बहिन) की याद आ गया, जिन्होंने अपने जीवन भर राधिकाजी के चरणों में मेंहदी लगाई थी। शायद बिट्टी बुआ के मरने के बाद आज ही उनके चरणों में इस तन्मयता के साथ मेंहदी लगी हो। यहाँ मेरा था जब मेंहदी लगवाने के लिए राधिकाजी आगे पर बढ़ाने लगी हों और बिट्टी बुआ

जहाजा जपचरणार्पित
जिनेन्दु-वर्तित वजमोजन ।

—हरिप्रसाद

*२३ साहित्यों के लिए [illegible] दुःख में पूर्ण-चन्द्र आदान ह

राधिकाजी के दाहिने मंजुलाभरणों से अलंकृत भगवान् कृष्ण खड़े राधिका के चरणों में मेंहदी लग जाने की प्रतीक्षा में होठों में मुरली लगाये खड़े हों। उनके सिर पर रत्नों से जगमगाता मुकुट ऐसे देदीप्यमान हो रहा था जैसे—

> *बिभ्राणमिरत्नशोभिरि मौलिमाजां*
> *भाभिरलोनामनलोपशीमि ।*
> *अनेकधातुच्छुरितावरासे-*
> *गोवर्धनस्याकृतिमञ्चकारि ॥*

—माघ

(भगवान् श्रीकृष्ण के मस्तक पर विराजमान मुकुट की मणियों की किरणें एवं रंग-बिरंगी रश्मियाँ अनेक धातुओं के सम्मिश्रण से रंग-बिरंगी शिखाओं से समृद्धवान गोवर्धन पर्वत की शोभा का अनुकरण कर रही थीं।)

मैं इस करुण एवं माधुर्य-मिश्रित कल्पना में डूब उतरा ही रहा था कि एक कार्यकर्ता ने मुझे पुकारा और मैं इस दुनिया में आ गया। अब मालवीयजी के जन्म का मुहूर्त निकट आ रहा है और घड़ी के हाथ सौ वर्ष पीछे पलटकर ६ बजकर ५४ मिनट के निकट धीरे-धीरे अग्रसर हो रहे हैं। मैं लपककर सूतिका-गृह के सामने गया। कोठरी के भीतर फूल मालाओं से सुसज्जित मालवीयजी का तैल-चित्र रखा था। सामने वेदी पर एक बड़ी थाल में रखे हुए १०१ दीपक जल रहे हैं। बाहर ठीक उस कोठरी के सामने हवन कुंड के चारों ओर मालवीयजी ही की धर्मज्ञानोपदेश पाठशाला के १२ वेदपाठी ब्राह्मण सस्वर वेदपाठ कर रहे हैं। मालवीयजी के चित्र की ओर मन मस्तक होकर मैंने उनका इस प्रकार अभिनन्दन किया—

> *प्रतापं मार्तण्ड हेमरत्न-*
> *सुभाय पूर्णकिरणं पूर्णं सुधे ।*

शरीरभाजां भवदीयदर्शनं
व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम् ॥

—माघ

हे भगवन् ! आपका दर्शन शरीरधारियों को तीनों कालों (भूत, वर्तमान और भविष्य) में योग्यता को देता है। वर्तमान काल में दर्शन करते ही पापों का नष्ट करता है। भविष्य के कल्याण का कारण होता है और भूतकाल में किए गए पुण्यों का परिणाम होता है।

जब ही मैंने अभिवादन समाप्त किया तो देखता क्या हूँ कि श्री प्रमुख ब्रह्मचारी कामता माधुमंगलजी एवं मण्डल के साथ पार्श्व में प्रवेश कर रहे हैं। आते ही सर्वप्रथम के गन्धकुटी के निकट के सामने नमस्कार हुआ और मूर्तिका-गृह में रखे हुए मानस्तम्भ के जिन के सामने विनयावनत होकर काष्ठ के आसन पर बैठ गये। हवन प्रारम्भ हो गया और अग्निकुण्ड में आहुतियाँ पड़ने लगीं। आरम्भ के समय पुरोहित का ब्रह्मचारीजी आह्वान पढ़ रहे। ऐसा लगता था जब भगवान् ऋषभदेव के पुरोहित यज्ञ कर रहे हों। सब पढ़ ! की मूर्ति पुन मन्त्र के साथ प्रतिष्ठा पढ़ने लगी। मन्त्रो द्वारा हवन हुआ। हवि का धूम वातावरण को पवित्र एवं जनता के अनिष्ट को नष्ट कर रहा है। यह पर ऐसा लग रहा था जैसे—

क्षणोत्सवाङ्गैर्दीपवाता-
ह्रियोज्ज्वलीर्णा नगरीव दिव्या।

—[illegible]

(यह कोई स्वर्ग की नगरी है जो समृद्धि के साथ में पृथ्वी पर उतर आयी हो)।

पर के भीतर तथा बाहर प्रांगण एवं मन्दिरों में, स्याद्वाद है फिर महिमनाओं को ध्यानपूर्वक श्रवण करने [illegible]

८

आमन्त्रित जनता का तांता बंधा है। इतनी भारी भीड़ इस छोटे-से स्थान में समा गयी।

इतने में घड़ी की सुई ६ बजकर ५४ मिनट पर आ गयी। घर के भीतर [illegible]। शंख और घंटे घड़ियाल बज उठे। वेद पाठ सुस्पष्ट स्वर में होने लगा। स्त्रियां मंगलगान गाने लगीं और प्रयाग विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष पण्डित सरस्वतीप्रसाद चतुर्वेदी ने जिन्होंने मालवीयजी के ही धर्मज्ञानोपदेश पाठशाला में अक्षरारम्भ से लेकर संस्कृत की उच्चतम शिक्षा पायी थी मालवीयजी के प्रतीक उनके चित्र की आरती उतारी। यह पं० सरस्वती प्रसादजी का सौभाग्य था। सरस्वती ने मालवीयजी की आरती उतारी यह समुचित ही था। इस शंखनाद से बाहर प्रतीक्षा करती हुई भीड़ को पता चल गया कि जन्म हो गया। बाहर प्रांगण में समारोह समिति की ओर से रेवड़ी लुटायी गयी उसी समय नगरप्रमुख श्री बालकृष्ण राव भीड़ के बीच से, मालवीयजी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करने के लिए, उनके घर की ओर जा रहे थे। सहसा हाथ उठाकर उन्होंने बहुत-से पैसे लूट लिये। निकट में खड़े हुए एक सम्भ्रान्त व्यक्ति ने कहा—'राव साहब आप बड़े भूखे हैं।' राव साहब प्रत्युत्पन्नमति हैं। तुरन्त बोल उठे—भूखन के लिए और यह कहकर और सम्भवतः अपनी ओर से कुछ मिलाकर वहीं लुटा दिया। पता नहीं उस सम्भ्रान्त व्यक्ति ने राव साहब के हास्य में कहे गये इस उत्तर की गम्भीरता को समझा या नहीं।

इस बीच मालवीयजी के गृह से संलग्न एक विशाल कमरे में भजन-कीर्तन का व्यापार निरन्तर चलता रहा। यज्ञ समाप्त करने के बाद प्रमुख व्रतधारी भी भजन मण्डली में सम्मिलित हो गयी और वहीं धूम से कीर्तन होने लगा। यह [illegible] (दिन रात निरन्तर चलने वाला मंगल-समारोह) व्यापार

समझा ही रहा कि इतने में समारोह समिति के प्रधान मंत्री, पण्डित पद्मकान्त मालवीय के साथ इन्दिराजी आती हुई दिखलायी पड़ीं।

देखो वह—

परिपाण्डुदुकूलवसनोत्तरीयं
दधती विलोलकचलोलमाननम् ।
करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी
स्वयमागतेव पुरमेति 'इन्दिरा' ॥

(भावार्थ—पाण्डु एवं श्वेत साड़ी से सुन्दर, केश-सम्भार से अलंकृत मुख धारण करने वाली मूर्तिमती करुणा के समान अपनी माता कमला के समान मुस्काती इन्दिराजी मालवीयजी के गृह की ओर आ रही हैं)। घर के भीतर प्रवेश कर उन्होंने प्रथम मालवीयजी के कुल-देवता को प्रणाम किया और फिर मूर्तिकागृह में प्रतिष्ठित मालवीयजी के चित्र पर बड़े आदर से पुष्पोपहार द्वारा अपनी श्रद्धांजलि अर्पण की।

थोड़ी देर वहां से वहीं ठहरकर इन्दिराजी घर से बाहर आईं। द्वार ही पर प्रसाद-वितरण हो रहा था। उन्होंने आदरपूर्वक प्रसाद ग्रहण किया और थोड़ा सा अपने लिये हाथ में लेकर शेष वहीं पर बच्चों को बाँट दिया।

भीड़ धीरे-धीरे छंटने लगी और लोग सुविधा से घर के अन्दर जाकर अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करने लगे। यह क्रम रात को बहुत देर तक जारी रहा।

लगभग ग्यारह बजे रात्रि को श्री[illegible]जी आये। उन्होंने मालवीयजी के समय में काशी-हिन्दू विश्वविद्यालय में शामिल हो एम० ए० तक सब परीक्षायें पास की हैं। उस क्रान्तिकारी प्रवृत्ति के होते हुए और आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में राजनीति[illegible] को

मतों में मतभेद रखते हुए भी मालवीयजी उनको बहुत प्यार करते थे और दासजी उनके अनन्य भक्त थे। वे अस्वस्थ थे पर यह कैसे हो सकता था कि इस पुण्य अवसर पर वे अपनी श्रद्धांजलि न अर्पण करें। अस्वस्थ होते हुए भी जब जी न माना तो वे आ ही गये। तब तक भीड़ छट गयी थी। वे आकर ठीक मालवीयजी के चित्र के सामने बैठ गये और उनको एकटक निहारने लगे। सहसा उनके हृदय में क्या टीस उठी कि उनकी आँखों से टप-टप आँसू झरने लगे। मैं खड़ा यह व्यापार देख रहा था। मैंने मन ही मन उनसे कहा—

अयं ते बाष्पौघस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो
विसर्पन्धाराभिर्लुठति धरणीं जर्जरकणः।
निरुद्धोऽप्यावेगः स्फुरदधरनासापुटतया
परेषामुन्नेयो भवति चिरमाध्मातहृदयः॥

— भवभूति

(यह तुम्हारे आँसुओं का समूह टूटी हुई मोती की माला की भाँति जर्जरित होकर पृथ्वी पर गिर रहा है और यद्यपि तुमने अपने हृदय के आवेग को बहुत कुछ रोकने का प्रयत्न किया है परन्तु तुम्हारे नाक और होठों के फड़कने से यह आवेग स्पष्ट हो जाता है।) मुझे दासजी पर दया आ गयी! मैंने कहा— दासजी! अब रोना बन्द करो। थमो। दासजी कातर नेत्रों से मेरी ओर देखने लगे मानो कह रहे हों

अपने-अपने अँखियों आँसू।
पर रोना है कोई हँसी नहीं है॥

मालूम नहीं कौन-कौन सी मालवीयजी से सम्बन्धित, मधुर स्मृतियाँ उनके हृदय को मथ रही थीं।

इस प्रकार था मालवीयजी का काशी-विश्वविद्यालय के छात्रों

पर बाढ़ के मयूर शान्तिकारी हो क्यों न हों। सुना है, स्वामी रामतीर्थ के सामने सिंह भी दुम दबाकर बैठ जाता था।

मैंने इस समारोह का वर्णन विस्तार से इसलिए किया कि इतना पुनीत एवं हृदयग्राही समारोह प्रयाग के इतिहास में पहिले कभी नहीं हुआ था। इससे पता चलता है कि जनता के हृदय में मालवीयजी के प्रति कितनी असीम श्रद्धा कितना आदर कितना प्रेम था।

भीड़ और भीड़ के हृदय में प्रायः अन्तर होता है। फारसी की एक कहावत है कि 'परखेही चोठे रिगार सामाम चीचे दीग रन्द' — शरीर का इकट्ठा होना एक चीज है उसमें सूजन होना बिलकुल दूसरी चीज है। इस समारोह की भीड़ तगड़ी थी इसमें सूजन नहीं थी। अतः उसके विस्तृत वर्णन को अनावश्यक समझना मेरा दोष है। अभी तो इस समारोह का एक एक [illegible] आँखों के सामने नाच रहा है। आगे चलकर मैं ही काल के प्रभाव से [illegible] हो जाऊँगा।

समारोह समाप्त हो गया। सब लोग अपने अपने घर चले गए। घर का शून्य वातावरण एकदम शान्त हो गया। भगवान् कृष्णचन्द्र भी अपने स्थान से उत्सव पश्चात् [illegible] चतुर्वेदी को [illegible] विश्राम करने चले गए। मन्दिर का द्वार बन्द हो गया। भीतर केवल भगवान् कृष्ण और राधिकाजी रह गयीं। उस समय उस एकान्त मन्दिर में क्या शोभा हुई उस

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

—[illegible]

([illegible] के दोनों में [illegible])

भवन में बस भगवान् विष्णु और लक्ष्मी से शोभित युगान्तकालिक समुद्र के समान लगने लगा।)

मैं घर लौट आया। देर तक नींद नहीं आई। इस सब व्यापार को देखकर मेरा मन सहसा ५० वर्ष पीछे लौट गया। उस समय ब्रजनाथजी और महामनाजी दोनों ही जीवित थे। प्रत्येक वर्ष कृष्णजन्माष्टमी पर इसी घर में धूम-धाम से जन्मोत्सव होता था। पिता और पुत्र दोनों ही बड़े चाव से इन उत्सवों में सम्मिलित होते थे। भजन-कीर्तन का अच्छा आयोजन होता था। नगर के नामी गवैये बुलाये जाते थे। सूतिका-गृह में चिकें डालकर स्त्रियों का समूह बैठता था। मालवीयजी की धर्मपत्नी सौभाग्यवती कुन्दन देवी उनका समाजन करती थीं। प्रांगण में महामनाजी सब लोगों को आदर से बिठाते थे। इन अवसरों पर मेरे एक अति निकट सम्बन्धी संगीत के मर्मज्ञ एवं नगर के प्रमुख रईस पं० ब्रजमोहन दुबे हारमोनियम बजाते थे। बहुत अच्छा बजाते थे। नगर के दूसरे रईस—नाम भूलता हूँ—याद आ गया लाला दुर्गाप्रसाद थे—इनका गायन बड़ा मधुर होता था। ये दोनों व्यक्ति प्रतिवर्ष उत्सव में सम्मिलित होते थे। मालवीयजी इन दोनों का बहुत आदर करते थे। ठाकुरजी के ठीक सामने दालान में ब्रजनाथजी अपनी बहुत सी बांसुरी लेकर उनके छिद्रों को रेत-पात कर और बजा-बजाकर हारमोनियम के स्वर से मिलाते रहते थे। इसमें बड़ी देर लगती थी। तबले का मिलाना उसके आगे मग मारे। उपस्थित लोगों का धैर्य छूटता रहता था परन्तु मालवीयजी का धैर्य असीम था। वे अपनी सहज मुस्कान से मृदुल स्वरों में पिता से कहते जाते थे उस छिद्र को थोड़ा और रेत दीजिये तो ठीक हो जायगी। राम राम करके मुरली का स्वर मिल गया। ब्रजनाथ जी ने बांसुरी के परीक्षार्थ दो एक मिनट उसे बजाया और फिर वात्सल्य भरे नेत्रों से अपने पुत्र को निहारकर उन्होंने

बाँसुरिया को ओठ में रख लिया और ऐसा प्रफुल्लित हुआ जैसे मधुर [illegible] में उनकी लीन हुई हो। लोगों की जान में जान आयी और गायन आरम्भ हो गया।

प्रत्येक वर्ष मैं इन उत्सवों के लिए उत्सुक ही नहीं आतुर सा रहता था। [illegible] पहिले ही से उसकी प्रतीक्षा करता रहता था। [illegible] में तृप्ति सी होती ही है। यदि किसी वर्ष उसी समय बादल उमड़ आये और मुझे खबर मालूम दी तो जी धुक-धुक करने लगता था। मेरे मकान और मालवीयजी के इस पवित्र गृह के बीच में केवल [illegible] का फासला है। इस ही उनके घर में उत्सव पर [illegible] पड़ी। मैं मयूर की भाँति नृत्य [illegible] सुनने लगता था और यह जानकर कि गायन आरम्भ होने ही वाला है मैं जल्दी-जल्दी उनके घर की ओर [illegible] खड़ा होता था।

एक वर्ष उस उत्सव में बड़ी मजेदार बात हुई जिसको मैं कभी भूल नहीं सकता। गायन के लिये सभी साज तैयार हो चुके थे परन्तु बाँसुरिया नहीं आया था। [illegible] रहे थे। लोग [illegible] हो रहे थे। परन्तु मालवीयजी अपना मधुर [illegible] लगाये थे। इतने में एक व्यक्ति ने जिसकी [illegible] घर में प्रवेश किया। दूर ही से उस [illegible] उत्तर दिया— "अभी तक कहाँ मर गए थे। [illegible] बिना बाँसुरी के।" यह व्यक्ति [illegible] खड़ा रह गया। [illegible] ही [illegible] था क्योंकि [illegible] उस [illegible] के दरबार थे जिसमें [illegible] निर्भीकता [illegible] पानी [illegible]। [illegible] दोनों [illegible] [illegible] गया था। [illegible] बाँसुरिया [illegible] [illegible] फूट [illegible]। [illegible] की [illegible] में [illegible] [illegible]। मुझे तो प्रसन्नता हुई कि [illegible] पं० [illegible] हुए [illegible] से [illegible] मालवीयजी

ने हँसकर उनसे क्षमा याचना की और उन्हें बड़े आदर से बैठाया। मुंशीजी पानी-पानी हो गये।

मालवीयजी—एक महान् पुरुष

महान् संस्कृत का एक छोटा-सा शब्द है जिसके पर्यायवाची शब्द तो अनेक हैं पर इस शब्द की व्याख्या करना असम्भव है। कारण महत्व का आरम्भ उस स्थान से होता है जहाँ पर साधारणता समाप्त होती है। इस स्थान से वह कितने ऊपर उठ जायगा यह बुद्धि से परे है। किसी महान् पुरुष की तुलना किसी दूसरे महान् पुरुष से नहीं की जा सकती। महानता वैयक्तिक होती है अतएव अनुपमेय है। सागर की उपमा नहीं दी जा सकती। सागरः सागरोपमः। ईश्वर के पर्यायवाची शब्द अनेक हैं। पर उससे व्याख्या नहीं हो सकती।

हरिर्यथैकः पुरुषोत्तमः स्मृतो
महेश्वरस्त्र्यम्बक एवं नापरः।
तथा विदुर्मां मुनयः शतक्रतुं
द्वितीयगामी न हि शब्द एष नः॥

इसका अर्थ है कि जिस प्रकार हरि को पुरुषोत्तम कहते हैं और महेश्वर को त्र्यम्बक उसी प्रकार मुनि लोग मुझे शतक्रतु के नाम से जानते हैं। यह शब्द किसी दूसरे के लिए प्रयुक्त नहीं हो सकता। उर्दू शायर भी कहता है—

वह पूछते हो खुदा क्या है।
खुदा क्या है और क्या है॥

इसी प्रकार महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय जी की तुलना किसी अन्य महान् पुरुष के साथ नहीं की जा सकती है। हम उनके महत्त्व का थोड़ा-बहुत ज्ञान उनके संस्मरणों से कर सकते हैं। वह भी अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार। महामनाजी में

सभ्या की या नम्रता थी—

लज्जन्ते न गणिनः प्रि यतो
वसुरेव जननि यथार्थतः।
श्रीहर्षेन तव प्रियं वदन्
ह्रीमयाव अवनत मुखे ॥

(भावार्थ—जन की यदि अत्यधिक प्रशंसा की जाय—चाहे वह उसके योग्य हो अथवा न हो—उसको लज्जा नहीं मालूम होती। प्रशंसा करने वाला ही लज्जित हो जाता है। परन्तु आपकी प्रशंसा करने में हमें तनिक भी लज्जा नहीं लगती। कारण आप इतने महान हैं कि हम कितनी भी आपकी प्रशंसा करें वह थोड़ी ही होगी। इसके प्रतिकूल अपनी नम्रता के कारण आप ही लज्जा का अनुभव करने लगते हैं।) यही कारण है कि इसके उन्हें बड़े प्रिय थे। मालवीयजी जब नैनीताल जाते थे तो पण्डित सुन्दर लालजी के साथ ठहरते थे। सुन्दरलालजी नगर के एक प्रमुख वकील और हाईकोर्ट के चोटी के वकील थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापन में वे मालवीयजी के दाहिने हाथ थे। एक बार जब मालवीयजी नैनीताल गये उस समय सुन्दरलालजी का मकान कुछ दूरी पर [illegible] था। मालवीयजी बूढ़े हो जाने पर भी प्रतिदिन नियम से स्नान करते थे और सन्ध्यादि भी यथा नियम करते थे। एक दिन [illegible] [illegible] कर रहे थे कि [illegible] [illegible] का [illegible] था। मालवीयजी साथ लेकर चले [illegible] [illegible]। [illegible] सुन्दरी [illegible] थी। कन्या [illegible] को पास ही [illegible] था। मालवीयजी [illegible] आप ही आप [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] बुड्ढा [illegible] गया बुड्ढा [illegible] [illegible] [illegible] सन्ध्या में बिलकर के पास बैठ [illegible] करते थे।

कसरत तक निकली।

एक दिन की बात है। मेरे मकान से संलग्न गंगुवा तेली की दुकान थी। प्रातःकाल व्यायाम कर उठा था। मालिश करने के लिए उस तेली की दुकान से तेल लेने के लिए मैंने अपना नग्न हाथ बढ़ाया। (16 inches round the biceps) १६ इंच डंड की नाप थी। गली से दो पयागवाल चले आ रहे थे। उन्होंने मेरे तगड़े हाथ को देखा। एक ने अपने साथी से कहा "—बड़ा तगड़ा है।" यह वाक्य एक गाली के शब्द से पुरस्कृत था जिसका उच्चारण अथवा लेखन सभ्यता के कारण मैं नहीं कर सकता। परन्तु अंगरेजी में उसे brother-in law the loser और हिन्दी में पत्नी का भाई कहते हैं। ऐसा विशिष्ट व्यक्ति जिसके सामने सारी दुनाई एक नन्हा रहती हो उसका इतना अपमान कि उसकी गाली में गणना की जाय !! समय एक कटोति बलवान समय बलवान् को निबल कर देता है। खैर, गाली के शब्द प्रयोग करने पर भी मैंने उनसे मन में कहा जाओ तुम्हें माफ किया क्योंकि वह प्रशंसात्मक गाली थी। यदि अन्य किसी अवसर पर उसने ऐसा कहा होता तो उसके दाँत जमीन पर दिखाई पड़ते। अस्तु।

प्रत्येक व्यसन का चाहे वह अच्छा हो अथवा बुरा एक वातावरण और उसकी अलग्यता निराली होती है। मैं भी पहलवानों की तरह गरदन में काला गंडा और बाजूबंद दाहिनी कलाई में काला गंडा यहाँ तक कि दाहिने पैर में काला गंडा बाँधता था। एक दिन मालवीयजी की नजर पड़ गयी। उस समय उनके साथ कई आदमी भी थे। मालवीयजी ने अंग्रेजी में मुझसे कहा Vyasjee take off that black chord round your neck. It used to be the fashion of times gone by (व्यासजी गरदन से काला गंडा उतार डालिए। यह बात जब

इसका ध्यान था, बीत गया) मालवीयजी ने अंग्रेजी में इसलिए मुझे डांटा क्योंकि जो लोग उस समय उनके साथ थे व अंग्रेजी नहीं जानते थे। मालवीयजी मुझे सबों के सामने अपमानित नहीं किया चाहते थे। डांटने के समय भी उन्होंने इसका ध्यान रखा कि लोग यह न जान पावें कि मुझ पर डांट पड़ रही। महानता इसको कहते हैं। मैं कुछ नहीं बोला। उनका उपदेश मेरे गले के नीचे नहीं उतरा। यद्यपि मालवीयजी का माहात्म्य मुझे नमाता था फिर भी मैंने उनके उपदेश का आदर न किया।

गुल का पसन्द [illegible] है लेकिन
इसको [illegible] आये ॥

मैंने मन ही मन कहा

[illegible] मुझ [illegible]
[illegible] कहां है [illegible] हाज़िर है ॥

पश्चात् [illegible]

अब आप ही इन्साफ करें। [illegible] हजार १८ [illegible] कर गूंगा पानी को मैंने लिया पितामह की फटकार—और [illegible] मानो नव-विवाहिता पत्नी के सामने हैस [illegible] की। [illegible] प्रयाग [illegible] की [illegible] मैंने सुनी। और मालवीयजी डांटते हैं कि "Take off that black chord" [illegible] भी कोई बात है। उस वक्त मैं सोचने लगा

[illegible] है [illegible] को भी [illegible] है।
[illegible] ॥

फिर [illegible] ही तो [illegible] है। परन्तु [illegible] में जवानी के जोश में हम लोग को ऐसा ही मालूम था कि मालवीयजी [illegible] पर [illegible] हैं। [illegible]

[illegible]
[illegible]

महदुपजनयति भयमशिथिलं पुनरभ्यस्य ।

कादम्बरी—शुकनासोपदेश

(यौवन के आरम्भ में शास्त्रों के अध्ययनरूपी जल के प्रक्षालन से निर्मल बुद्धि भी प्रायः कलुषित हो जाती है। अभागे को गुरुजनों का वचन कितना भी हितकर और स्वच्छ क्यों न हो कान में पड़े हुए निर्मल जल के समान कष्टदायक होता है) जवानी का उफान उतर जाने पर मैंने स्वयं ही मेरा को उतार डाला।

भारतीय संस्कृत साहित्य महान् पुरुष की इस प्रकार परिभाषा करता है—

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥

(आपत्ति पड़ने पर धैर्य अभ्युदय होने पर क्षमा सभा में वाक्चातुर्य लड़ाई छिड़ जाने पर शूरता यश में रुचि धर्म एवं धर्मशास्त्र में व्यसन ये महान् पुरुषों के स्वाभाविक लक्षण हैं) अब मैं मालवीयजी को इन्हीं गुणों की कसौटी पर कसूंगा।

विपदि धैर्य—आपत्ति के समय धीरता।

मालवीयजी का जीवन संघर्षमय था। बचपन ही से अर्थाभाव बड़े होने पर गृहस्थी में बच्चा जनने के कारण चालीस महीने पर अध्यापकी करना इत्यादि का सामना करना पड़ा पर उनके चेहरे पर शिकन नहीं आयी। उनका तो स्वभाव था—

बना आता है इतना खेलना कहीं-हवादिस में।
अगर आसानियाँ हों जिन्दगी दुश्वार हो जाये ॥

इस ईश्वरीय स्वभाव के सामने सभी कठिनाइयाँ नत-मस्तक हो जाती हैं। इस सम्बन्ध में एक मार्मिक घटना अभी-अभी याद आयी था पर पत्थर रखकर दिल में उसे लिख पाऊं, वह दिमाग

निकल भागी। ये संस्मरण कभी-कभी ऐसे गायब हो जाते हैं जैसे महाजन के सामने से कर्जदार। परन्तु महाजन के सामने कर्जदार की क्या हस्ती। कब तक वह मुंह छिपायेगा? 'कालोह्ययं निरवधि' कभी न कभी तो पकड़ जायगा ही।

कठिनाइयों में [illegible] विपत्तियों का सामना करना कठिन होता है विशेषकर दवा बीमारियों का। परन्तु मालवीयजी [illegible] कि

देह धरे का दंड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगते ज्ञान से, मूरख भुगते रोय॥

सन् १९४२ की बात है। उन दिनों मालवीयजी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में रहते थे परन्तु बीच बीच में प्रयाग आते जाते रहते थे। उनकी धर्मपत्नी सौभाग्यवती कुन्दन देवी प्रयाग ही में रहती थीं। उन दिनों वे अस्वस्थ रहा करती थीं। हमारी छोटी बहिन सौभाग्यवती विमला (मालवीयजी की पुत्र-वधू) उनकी सेवा में तत्पर रहा करती थी। माघ का महीना था। विमला जब-जब गंगा स्नान करने के लिए कभी जाती थी पर मन का ध्यान लगा रहता था। जल्दी ही लौट आती थी। एक दिन कुन्दन देवी ने [illegible] मुकुन्द (मालवीयजी के पुत्र) [illegible] कि तुम [illegible] हो तो बुढ़ऊ (मालवीयजी) का भी दिन [illegible] है। [illegible] बनारस [illegible]।" विमला ने [illegible] कहा। [illegible] हमारा [illegible]। कुन्दन देवी को [illegible] और उनका दोनों के [illegible] आंसू आ गये।

एक दिन विमला गंगास्नान करने गई थी। कुन्दन देवी आग [illegible] थीं। उन्हें पता न चलने पाया और उनके कपड़े में आग लग गया। [illegible] तो थी ही। [illegible] में बन गया। बहुत [illegible] पर [illegible] कोई पास [illegible] थी। गंगा

बच्चा (मदनीधर—किशा का पुत्र) उस समय लगभग सात-आठ वर्ष का था। दौड़ा-दौड़ा पुराने भारती भवन के चबूतरे पर गया। उसी समय किशा गंगा-स्नान से लौटकर आ रही थी। देखकर रोते हुए चिल्लाकर मदनीधर ने कहा "अहमा बहुत जल गयी है।" किशा भागी भागी घर आयी। देखा अहमा काँपी जा रही है और बराबर "राजाराम सीताराम" कह रही है। मालवीयजी को तुरन्त तार दिया गया। टेलीफोन किया गया। खबर पाते ही मालवीयजी आ गये। यह कहना निरर्थक है कि अच्छा-अच्छा उपचार होने लगा। परन्तु यहाँ आने पर उनको जाँघ में एक भीषण कार्बंकिल (जहरीला फोड़ा) निकल आया। वे चलने-फिरने से लाचार हो गये। कुन्दन देवी ऊपर के कमरे में पड़ी थीं। मालवीयजी के पुत्र लोग उन्हें कुर्सी पर बैठाकर अटारी पर ऊपर ले जाते थे। इस प्रकार वे घण्टे डेढ़ घंटे प्रतिदिन अपनी पत्नी के पास बैठकर उनका दुःख-दर्द पूछते थे।

सेवा करते समय एक दिन कुन्दन देवी की कथा ने कहा "अहमा! तुमने तो अपने जीवन में कभी कोई पाप की बात नहीं की। फिर तुम्हें क्यों इतना कष्ट मिल रहा है?" अहमा ने धीरे धीरे कहा "बहू! एक ही जन्म का पाप नहीं देखा जाता। मालूम नहीं किस जन्म में हमसे पाप बन पड़ा है, उसका भोगमान भोग रही हैं। तुम्हें महाभारत की एक कथा सुनायें। जब धृतराष्ट्र के सौ पुत्र युद्ध में मारे गये तो उन्होंने व्यासजी से पूछा 'भगवान्! हमने कौन-सा पाप किया कि हमारे सब पुत्र मारे गये। हम अपने २१ जन्म की बातें तो जानते हैं। उनमें हमने कोई पाप-कर्म नहीं किया। फिर क्या हमें यह दारुण दुःख भोगना पड़ रहा है।' व्यास देव बोले 'राजन्! यह पाप उससे भी पहले का है। एक बार तुम बहुत बीमार पड़े। वैद्यों ने कहा कि यदि प्रतिदिन चार सौ हंस के बच्चे का शोरबा पियें तो थोड़े दिनों में आप अच्छे हो सकते हैं।

इस प्रकार हृदय से दो बच्चों का लोभ्या पीकर आप मस्ते हुए हैं। उर्मीला यह धन्य है। इतना कहने के बाद कुन्दन देवी चुप हो गयीं और सास-बहू दोनों की आँखों से आँसू झर-झर गिरने लगे।

कुन्दन देवी जिस दिन आयीं उस दिन से प्रतिदिन उनके पास एक डलिया गुलाब का फूल उनकी रसूलाबादवाली बगिया से आता था। उसमें सर्वप्रथम थोड़े-से फूल निरालाजी परिवार के इष्टदेव राधा-कृष्ण पर चढ़ाने के लिए भेज देती थीं। फिर बचे हुए फूलों में से एक-एक दो-दो फूल बच्चों और बहुओं को देती थीं। मरने के तीन-चार दिन पहिले जब मालवीयजी [illegible] उनके पास आये तो कुन्दन देवी ने उनसे अपना पैर चारपाई पर रखने के लिये इशारा किया। यद्यपि फोड़े के कारण मालवीयजी के पैरों में दर्द था फिर भी अपनी पत्नी का मन रखने के लिए उन्होंने अपने पैरों को चारपाई पर रख दिया। कुन्दन देवी लेटे लेटे फूलों की डलिया में हाथ डालकर टटोलने लगीं और उसमें से दो ताजे गुलाब के फूल चुनकर मालवीयजी के पैरों पर रख दिये और अपने हाथ को अपनी आँखों में लगा लिया।

गुरुजनेऽप्यनुमितोऽनामाऽ [illegible] करपल्लवो [illegible]
[illegible] [illegible] न [illegible] [illegible] ॥

अर्थ—दीप जलाना पड़ने से व्यथित कमल के समान उसके नेत्रों में अश्रु आ गये। यद्यपि उसकी आँखों में उसके हृदय का भाव प्रकट हो रहा था पर अमंगल के भय से उसने अपनी आँखों को नहीं मीचा। (कि कहीं मीचने से अश्रु न गिर पड़े और अमंगल हो जाय)

कुन्दन देवी की आँखों में आँसू आ गये पर उन्होंने आँखों को बन्द नहीं किया कि कहीं आँसू टपक न पड़ें। फिर वह धीरे-धीरे बोलीं—तुम हमें [illegible] [illegible] आज के दिन मना कर दिया रहा। हम तुम्हारी बात मान न सके। अब इस [illegible] के देख लो

चली आयी। मालवीयजी थोड़ी देर चुप रहे। फिर अँगोछे से आँख पोंछकर बोले—'अब तुम्हारा समय आ गया है। अब तुम जाव।

पाठकों को दो दफा मना करने का रहस्य बता दूँ। सन् १९०१ में प्रयाग में प्लेग का भयंकर प्रकोप हुआ। लगभग तीन चार सौ आदमी मरते थे। गिलटी निकली फिर बचना असंभव हो जाता था। नगर के अधिकांश मकानों में ताले पड़ गये। जिसे जहाँ जगह मिली भाग निकला। मालवीयजी का परिवार सिविल लाइन के एक मकान में चला गया। मालवीयजी ने पीड़ितों के दवा-दारू और मुर्दों के जलवाने का यथाशक्ति प्रबन्ध किया पर इतने भयंकर प्राकृतिक प्रकोप में सब योजनायें व्यर्थ हो जाती हैं। ठेलों में भर भर कर लाशें यमुना में फेंक दी जाती थीं। मैंने अपनी आँखों से बलुआघाट के किनारे यमुना में दो-तीन सौ लाशें उतरते और मल्लाहों को डाँड़ से हटाकर स्नान के लिए ले जाते देखा है। उन्हीं दिनों सिविल लाइन वाले बँगले में कुन्दन देवी को तीव्र ज्वर हो आया और दोनों जाँघों में प्लेग की गिलटियाँ निकल आयीं। इस आपत्ति के सहसा आ पड़ने पर मालवीयजी उद्विग्न तो हो गये पर उन्होंने अपना धैर्य नहीं छोड़ा। कुन्दन देवी की भरपूर चिकित्सा होती रही। एक दिन जब उनकी हालत बहुत बिगड़ी तो मालवीयजी ने रुआँसे होकर उनसे कहा—तुम अभी जाओगी तो इन छोटे बच्चों को कौन सम्हालेगा? हमें अभी बहुत काम करना है। तब हम किसके सहारे करेंगे? तुम न जाव।" कुन्दन देवी आँख बन्द किए बचन इतना धीरे से बोलीं—तुम चिन्ता न करो। हम न जावें। रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि। वे धीरे धीरे अच्छी हो गयीं।

दूसरी घटना सन् १९२० की है। कुन्दन देवी इतनी बीमार पड़ीं कि बचने की कोई आशा न थी। इस बार भी मालवीयजी ने

उनसे न जाने के लिए कहा और वे चली गयीं। इन दोनों बार मामा साहबजी और कुन्दन देवी के पत्रोत्तरमय में क्या छिपा रहस्य निहित था यह तो भगवान् ही जाने।

अबकी बार सन् १९४२ में अकस्मात् काल के अन्य नियम की भाँति कुन्दन देवी पर दयाशील हो गयी और वे मामासाहबजी के चरणों पर स्वच्छ पुष्प व श्रद्धांजलि अर्पण करने के बाद उनकी आज्ञा लेकर चार दिन के भीतर [illegible] दुर्भाग्य[illegible] में सुखदा के लिए वह मौन हो गयीं। मामासाहबजी उनके मृत शरीर को [illegible] से दफन करके घर गये जहाँ वह रहते थे।

अब तमन्ना बेमजा है अब निगाहें बेपनाह।
जिसको एक पल है जीना क्या जाना है मैं॥

मुन्ना

उनका ध्यान तब टूटा जब सुरेन्द्र कुमार—जोशी की एक प्रौढ़ा थी जो मामाजीसाहबजी के परिवार के प्राणी के समान था— उनके माँग में सेंदुर भर के जैसे पति लिए बनाय के मार के साथ ही काल माँग में सेंदुर भर के इन्हें विदा किया। हमारी बहिन सौभाग्यवती विद्या ने कुन्दन देवी के बीमारी के बाद को उठाकर उन्हें स्नान [illegible]। विद्या सुमन शर्मा थी— भया! यद्यपि मरने के समय माता की आयु ७२ वर्ष की थी परन्तु वे सुन्दर गोरा नारी तो थी ही [illegible] पश्चात् लगभग १८-२० वर्ष की युवती मालूम होती थी। मामासाहबजी जब सौभाग्यवती कुन्दन देवी की माँग में सेंदुर भरने लगे तो उनका [illegible] के [illegible] पर रोने लगे। [illegible] माता कुन्दन देवी की चिता पर [illegible] श्रद्धांजलि थी। माँग भर जाने पर [illegible] पतिव्रता कुन्दन देवी [illegible] जीवन भर [illegible] कभी

रहती है और टिक्की पूजती फिरती है।

सहसा यह संस्मरण जो महाजन के सामने कर्जदार की तरह भाग निकला था स्वयं आकर भुगतान करने के लिए महाजन का दरवाजा खटखटाने लगा। वह यह है कि बहुत दिन की बात है। कुन्दन देवी नियम से प्रतिदिन गंगा स्नान करने जाती थीं। उस दिन माता-पिता का भक्त उनका पुत्र चि० मुकुन्द साथ में था। कुन्दन देवी ठीक गंगा-यमुना के संगम पर स्नान कर रही थीं। गंगा के प्रवाह से उनका पैर फिसल गया और वे यमुना में गले तक पानी में आ गयीं। निकट में एक मल्लाह ने उन्हें डूबने से बचाने के लिए उनका हाथ पकड़कर गंगा की ओर खींचना चाहा पर कुन्दन देवी ने उसका हाथ झटक दिया और अपने प्रयत्न से छिछले जल में चली आयीं। आकर मुकुन्द से कहने लगीं — हमें डूबने से बचाने के लिए मल्लाह ने हमारा हाथ पकड़ लिया पर हमने उसे झटक दिया। सिवाय तुम्हारे पिता के और किसी को हमारा शरीर छूने का अधिकार नहीं है। उन्होंने ठीक ही कहा

केहरि कच भुजग मणि, वनिता को मान।
शूर वचन की लाज धन मरे परत है हाथ॥

ऐसी मेधाविनी पतिव्रता स्त्री के मरने पर गंगी जो उनका दर्शन करने आयी हों तो इसमें क्या आश्चर्य है ?

जब कुन्दन देवी की अरथी बाहर निकली तो मालवीयजी ने हृदय की व्यथा से उसी फोड़े की पीड़ा को दबा लिया। उन्होंने अरथी में कंधा लगाया और फिर लड़खड़ाते-लँगड़ाते गली की मोड़ तक पहुँचाकर लौट आये। कुन्दन देवी की अरथी जब दृष्टि से ओझल हो गयी तो वे लौट आये और बाहर चबूतरे पर बैठ गये। आने पर वे उनका स्मरण कर के बालक की तरह चीत्कार छोड़कर रोने लगे।

पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया।
शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते॥

भवभूति

'जब तड़ाग जलाशय भर जाता है तो उसके बाँध को टूटने से बचाने के लिए उसमें से जल का निकल जाना ही एकमात्र उपाय होता है। हृदय जब शोक के उद्वेग से भर जाता है तो रोने ही से थमता है नहीं तो वह फट जाय।'

अर्द्धांगिनी कमला देवी के देहावसान से मालवीयजी का मानो पंख कट गया। धार्मिक लोग भगवती दुर्गा की स्तुति करते हैं—

पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम्।
तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम्॥

मार्कण्डेय पुराण—अर्गलास्तोत्र

(हे देवि! मुझे ऐसी पत्नी दो जिसमें मेरा मन रमे जो मेरे मन के अनुसार चले जो अच्छे कुल में उत्पन्न हो और मुझे संसार रूपी दुर्गम समुद्र से तार दे।)

भगवती ने मालवीयजी को उक्त गुणों से सम्पन्न पत्नी तो दी पर भगवान् की माया वह उन्हें संसार-सागर के पार पहुँचाने के पहले ही बीच में छोड़ कर चली गयी। उनके परिवार के सुख-दुख के जानने का अधिकारी कोई न रहा। अब उनका प्रयाग में रहना कम होने लगा। ठीक ही कहा है—

का कहे की मात अरु और न कहे की ओर।
[illegible] और कहु [illegible] ओर॥

[illegible] प्रयाग का [illegible] में भगवान का [illegible]

[illegible]
[illegible]

[illegible] है।

यह कोरी शायरी नहीं है। इसके भीतर एक शाश्वत सत्य निहित है। तभी तो महात्मा अरविंद घोष ने विवाहोपरान्त अपनी पत्नी को एक पत्र लिखा था जिसमें उन्होंने अपनी पत्नी से पूछा था कि भारत माता की सेवा में जिस प्रकार का जीवन मैं व्यतीत करना चाहता हूँ उसमें क्या तुम हमेशा साथ दे सकोगी। यदि दे सको तो मुझे बड़ा सहारा मिलेगा और मैं सब प्रकार का कष्ट सुख से झेल सकूँगा। पत्र बहुत लम्बा है यह उसका सारांश मात्र है।

कुन्दन देवी के मरने पर मालवीयजी प्राय काशी ही में रहते थे और अपना कर्तव्य-पालन जैसे-तैसे करते जाते थे। इस दैवी विपत्ति से व्यथित होने पर भी उनमें धैर्य की मात्रा इतनी अधिक थी कि बाहर से कुछ पता नहीं चलता था।

मालवीयजी की मनोव्यथा पुटपाक के सदृश थी। जिस प्रकार पुट के भीतर भरा हुआ रस भाप न निकलने के कारण भीतर-ही-भीतर खौलता रहता है और बाहर से नहीं पता चलता उसी प्रकार उनके हृदय की व्यथा अविषम गाम्भीर्य के कारण बाहर नहीं प्रकट होती थी।

प्रभुत्वे क्षमा—प्रभुता होने पर क्षमा

शुक्राचार्य का कथन है —

दण्ड एव नीतिः। तस्यामायत्ता लोकयात्रा। तस्मात्लोकयात्रार्थी नित्यमुद्यतदण्डः स्यात्। न ह्येवं विधं वशोपनयनमस्ति भूतानां यथा दण्डः।

कौटिल्यीय अर्थशास्त्र

दण्ड ही नीति है। इसी पर व्यवहार अवलम्बित है। अतः व्यवहार में सफल होने की इच्छा रखने वाले को सर्वदा दण्ड देने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए। प्राणियों को वश में लाने के लिए और कोई वैसा साधन नहीं है जैसा कि दण्ड) चाणक्य कहता है—

नैति लोकस्य। तीक्ष्णदण्डो हि भूतानामुद्वेजनीयो। मृदुदण्डः परि

मुयते । यथार्हदंडः पूज्यः सुविज्ञातप्रणीतो हि दंडः प्रजाः धर्मार्थकाम-
र्योजयति ।

कौटलीय अर्थशास्त्र

(चाणक्य का मत भिन्न है । उनके तीव्र दण्ड से लोग विषण्ण हो जाते हैं । बहुत हल्का दण्ड देना निरर्थक हो जाता है । जितना दण्ड आवश्यक हो वही पूज्य है । खूब समझ कर दण्ड का प्रयोग करने से वह आश्रितों को धर्म अर्थ और काम में लगाता है ।)

मानवीयता की नीति इन दोनों से पृथक थी । उनकी साम्य की नीति थी । वे जानते थे कि It s good to have a giant s strength but it is bad to use it like a giant

(दानव के समान शक्ति होना अच्छा है पर उस दानव के समान उपयोग करना बुरा है)

धर्म में अनुराग होने के कारण वे समझते थे कि—

> शुचि भूत्वा धनं [illegible]
> [illegible] [illegible] ।
> [illegible] [illegible]
> स [illegible] ॥

([illegible] शान्ति [illegible]

साहबी नहीं करते। वे छात्रों से पिता के समान व्यवहार करते थे—उस पिता के समान जो अपने वात्सल्य से उन्हें सन्मार्ग में प्रवृत्त करता है दण्ड से नहीं। वे अपनी मन मोहिनी मुसकान से सब समस्याओं का समाधान कर देते थे। छात्र रोनी सूरत लेकर उनके कमरे में जाता था और हँसता हुआ बाहर निकलता था। अध्यापकगण का वे आदर करते थे और यही कारण था कि वे लोग बिना कुछ कहे सुने छात्रों के अध्यापन कार्य में संलग्न रहते थे। इनका विशेष परिचय मुझे तब मिला जब सन् १९२१ में मैं विश्वविद्यालय का एग्जेक्युटिव आफिसर नियुक्त हुआ।

इस नियुक्ति का एक छोटा सा इतिहास है जिसको बतलाना मैं आवश्यक समझता हूँ। अपने जीवन में मालवीयजी ने कई बार मुझसे अपनी इच्छा प्रकट की कि मैं विद्यालय के उस विभाग का पूर्ण भार ले लूँ जिसमें म्युनिसिपैलिटी से सम्बन्धित काम है। उन्होंने मेरे छोटे भाई स्वर्गीय डाक्टर गोकुलनारायण व्यास से भी डाक्टरी विभाग का भार लेने के लिए कहा था। परन्तु हम दोनों भाइयों में से कोई भी उनकी इच्छा पूर्ति उस समय न कर सका। मेरा भाई उस समय आगरा मेडिकल कालेज का प्रिन्सिपल था। विलायत का एम० आर सी पी हिन्दुस्तान का एम० डी० और Consulting physician to the Victory था। खैर, यह कोई बड़ी बात न थी। अनोखी बात उसमें यह थी कि एक कोटि का चिकित्सक होते हुए वह नितान्त निर्लोभ भगवद्भक्त और संत था। ऐसा व्यक्ति मालवीयजी को आकृष्ट करे, यह स्वाभाविक ही था। परन्तु उसकी अपनी गृहस्थी थी। इच्छा होते हुए भी ऐसा न कर सका। मैं प्रयाग में म्युनिसिपैलिटी का एग्जेक्युटिव आफिसर था। उसे छोड़कर विश्वविद्यालय में जाना मेरे बूते की बात न थी। मालवीयजी का प्रस्ताव जहाँ का तहाँ पड़ गया। सन् १९४६ में जब मालवीयजी का देहावसान हुआ उस समय मैं

प्रयाग के लीडर प्रेस का असिस्टेन्ट मैनेजर था। सन् १९२० में मैंने उसका भी कार्यभार ग्रहण कर लिया। उस समय माल-वीय जी के पुत्र पण्डित गोविन्द मालवीय काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय के उप-कुलपति थे। उनके बहुत कहने से सन् १९२१ के आरम्भ में मैं विश्वविद्यालय के एक्जीक्यूटिव आफिसर के पद पर नियुक्त हो गया। अपने जीवन के ६२वें वर्ष में पहिले-पहल मैंने प्रयाग से बाहर नौकरी की। इस उम्र में बाल-बच्चों से सम्पन्न अपनी गृहस्थी को छोड़कर आर्थिक आवश्यकता न होते हुए परदेश में नौकरी करना एक बन्धु बान्धव के स्नेह-राग की माया में फँसे हुए व्यक्ति के लिये असम्भव ही था। परन्तु ऐसा कर गुजरने के कई कारण थे। मैंने देखा कि जब मनुष्य रिटायर होने पर अकर्मण्य होकर घर बैठ जाता है तो जिस प्रकार दफ्तर का काम समाप्त होते ही कर्मचारी घर की ओर भागता है कुछ उसी प्रकार यह अकर्मण्य व्यक्ति अपने अन्तिम विश्राम स्थान की ओर अनिच्छा होते हुए भी जल्दी जल्दी अग्रसर होने लगता है और उसकी परिचारिकायें—शारीरिक एवं मानसिक शक्तियाँ—वार गणिका की भाँति अपने वसुहीन स्वामी को सत्वर छोड़ने लगती हैं। माघ में पढ़ा था—

अनुरागवन्तमपि लोचनयो-
र्दधतं वपुः सुखमतापकरम्।
निरकासयद्रविमपेतवसुं
वियदालयादपरदिग्गणिका॥

माघ—९-१०

सूर्यास्त का अतीव सुन्दर वर्णन है —

(सूर्य निर्धन हो गया है। पश्चिम दिशा वेश्या है। जब सूर्य के पास वसु (द्रव्य—किरण—धन) था तब तक उस पर उसका अनुराग (राग—ललाई—प्रेम) था और उसके

शरीर में कोई तपन नहीं थी और वह मेघों को भुगद था फिर भी पश्चिम दिशारूपी वेश्या ने उसको आकाशरूपी मकान से निकाल दिया। अर्थात् सूर्यास्त हो गया।'

इसमें मुझे सावधान रहना था। दूसरा कारण यह था कि मेरे हृदय में एक भूत है जो मेरा सेवक है। वह मेरा खेत निरन्तर जोतता रहता है। उसने मेरी नौकरी एक शर्त पर मंजूर की है। शर्त बड़ी विलक्षण है। यदि मैं उसे बराबर काम देता रहूँगा तो वह अनुशासित रहेगा और यदि काम न दूँगा तो वह वेतन लेगा और वह वेतन मेरी आयु के दायान्वण होंगे। मुझे उस भूत को बेकार रखने का साहस न था। तीसरा कारण और सबसे जबर्दस्त कारण यह था कि ऐसे महान् पुरुष मालवीयजी के जीवन में उनकी इच्छा पूर्ति न कर सका उसका प्रायश्चित करना था। बहरहाल मैंने विश्वविद्यालय की नौकरी कर ली और लगन से काम करने लगा।

साढ़े छ वर्ष मैं वहाँ एक्जीक्युटिव आफिसर रहा। इस अवसर में मुझे चार उच्चमनस्वियों के साथ काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पण्डित गोविन्द मालवीय, आचार्य नरेन्द्रदेव, डा० सी० पी० रामस्वामी अय्यर और श्री० वी० एस० झा इन सबों का सौहार्द मुझे प्राप्त था। इस थोड़े से समय में वहाँ जो मुझे मालवीयजी के हृदय की झाँकी देखने-सुनने को मिली उसे आगे यथास्थान कहूँगा। अभी तो मुझे उनके सम्पर्क सीमा की परिधि में ही सीमित रहना है।

शुरू से सदा था—विशेष कर छोटे लोगों की दुःख दर्द की बातें ध्यानपूर्वक सुनता था। विद्यालय के सभी विभागों के लोग मुझसे अपनी दुख-दर्द की बातें कहा करते थे और मैं मालवीयजी का रुख में ध्यान रख उन लोगों के दुख को दूर करने का यथा शक्ति प्रयत्न भी करता था। एक दिन दफ्तर में बैठा काम कर

बड़े बाबू की समझ में बात आ गई। बोले—जनाब आप ठीक कहते हैं। अगर नौकरी करना है तो बर्दाश्त करना पड़ेगा। पर मालवीयजी के समय में और आजकल की शिक्षा में कितना फर्क हो गया है सिर्फ सोचकर हैरत होती है। उस वक्त का आपको एक वाकया सुनाता हूँ। सुनकर आपकी तबियत फड़क जायगी। मेरे ही विभाग का एक कश्मीरी लड़का था। नाम बतला कर उसका पर्दाफाश करना ठीक न होगा। वह बिड़ला हॉस्टल में रहता था। वह बिलकुल आवारा था। रोजमर्रा शाम के वक्त बिड़ला हॉस्टल में दो तीन शहरेबाज इकट्ठे आते थे। खूब भांग छानकर अपने गुट के लड़कों के साथ वह बाजार में वेश्याओं के यहाँ जाता था। गुण्डा तो था ही। एक दिन उसने एक वेश्या को बुलाकर बिड़ला हॉस्टल के कामन रूम में नाच कराया। विश्वविद्यालय के इतिहास में कभी ऐसा नहीं हुआ था। दूध मुँह से पिया जाता है नाक से नहीं। कुछ लड़कों ने उसी वक्त जाकर मालवीयजी से शिकायत की। मालवीयजी को सहसा विश्वास नहीं हुआ कि विश्वविद्यालय का छात्र इतना उद्दण्ड और पतित हो सकता है। पर जब लड़कों ने कहा कि इस समय नाच हो रहा है, आप चलकर अपनी आँखों से देख सकते हैं। मालवीयजी तुरन्त उठ खड़े हुए और बिड़ला हॉस्टल पहुँच गये। कामन रूम के दरवाजे बन्द थे पर खिड़की लगी थी। दरवाजा खुलते ही भीतर घुस तो देखा कि कमरे में वेश्या नाच रही है। कुछ लड़कों ने भागना चाहा पर मालवीयजी ने कहा 'भागो मत बच्चो। वेश्या ने भी जो घबराई हुई लगती थी उन्होंने कहा तुम भी बैठ जाओ। इतने में वह लिफंगा कश्मीरी लड़का जो नशे में ही था गिलास भांग भरकर मालवीयजी के सामने गया और बोला महाराज! शौकजी का प्रसाद लीजिये। मालवीयजी ने गिलास में अपनी अंगुली डुबो कर मस्तक से लगा लिया। फिर जब सब लोग बैठ

गये तो मालवीयजी बोले 'बच्चो ! जिस मार्ग पर तुम लोग चल रहे हो उसका परिणाम बहुत बुरा है। बड़ी आशा करके तुम्हारे माता-पिता ने तुमको हमारे भरोसे यहाँ अध्ययन के लिये भेजा है। युवावस्था में कुसंगत में पड़कर प्रायः लड़के कुमार्ग में चले जाते हैं परन्तु जब ही उसमें दोष दिखलायी पड़े उसे छोड़ देना चाहिये। इसी में कल्याण है।' मालवीयजी के इस उपदेश को सुनकर वह लड़का अवाक् खड़ा रह गया। इतने में उस

उत्तम ने गुरु के नाम से दुर्गति से कर दिया—

तुम कहु कहा है ? वह है कि तुमको क्षमा हुई॥

उस लड़के ने सर नीचा कर बड़ी नम्रता से कहा 'महाराज ! क्षमा कीजिये'। मालवीयजी ने कहा 'शाबाश ! बच्चा हम जानते हैं।' और यह कह कर वह उठ खड़े हुए और कमरे से बाहर निकल गये।

मालवीयजी चाहते तो उस छात्र को विद्यालय से निकाल सकते थे या और कोई दण्ड दे सकते थे। परन्तु यह सब उन्होंने नहीं किया। नतीजा यह हुआ कि उस लड़के को मालवीयजी के उपदेश की इतनी चोट लगी कि उसने उस बुरे व्यसन को बिलकुल छोड़ दिया। सुना है कि वह काश्मीरी लड़का कहीं डिप्टी कलेक्टर हो गया है। कई दिन तक विश्वविद्यालय में इस बात की चर्चा रही और लोग मालवीयजी के इस दण्ड-विधान की सराहना करते रहे। इतना सुनकर वह बच्चू चुप हो गये और मालवीयजी की बात मानने के दिन से मनोहर बन गये। वस्तुतः क्षमा का इससे बढ़कर और क्या उदाहरण हो सकता है।

कर्णप्रिय वाक्पटुता—क्षमा से वाक्चातुर्य।

मालवीयजी की वाक्चातुरी का थोड़ा नमूना यहाँ दिया जाता है। यह मेरे बचपने की सामान्य बात है। कहावत है कि 'कस्तूरिकामोदः स्वयमेव विभाव्यते'। कस्तूरी में सुगन्ध होती है इसको प्रमाणित

करने के लिये शपथ खाने की आवश्यकता नहीं होती।

जस वक्ता के पास में पान पान में पान।
तस चतुरन की पान में बात बात में बात॥

मालवीयजी की वाणी केवल मधुर ही नहीं थी। वे जो कुछ कहते थे वह सारगर्भित होता था। भारवि के शब्दों में

स्फुटता न पदैरपाकृता
न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्।
रचिता पृथगर्थता गिराम
न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित्॥

किरातार्जुनीय। २-२७

(उनके वाक्यों के अर्थ स्पष्ट होते थे अर्थात् वे गोल मोल बात नहीं करते थे। वे कोई वाक्य ऐसा नहीं कहते थे जिसमें अर्थ-गौरव न हो। उनके वाक्य के हर एक शब्द के पृथक्-पृथक् अर्थ होते थे अर्थात् एक ही बात को निरर्थक नहीं दोहराते थे और उनका एक भी वाक्य ऐसा नहीं होता था जो जोरदार न हो।)

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के निर्माण में जहाँ मालवीयजी का उनके अनेक लोकोत्तर गुणों का माहात्म्य था वहाँ उनकी गर्भित वाक्पटुता का भी बहुत बड़ा हाथ था। इसके संस्मरण आगे चल कर यथा स्थान मिलेंगे।

बुद्धि विरोध—बुद्धिभेद होने पर शौर्य।

यदि किसी सिद्धान्त की बात पर विवाद छिड़ जाय तो मालवीयजी वीर हृदय वाले आदमी भी थे। उनमें मर्दानगी थी। कायरता छू नहीं गई थी। ब्राह्मणों का शस्त्र वाणी होती है आयुध नहीं। यह तो क्षत्रियों का उपकरण है। तभी तो जब अश्वमेध का घोड़ा सहित शत्रुघ्न की अध्यक्षता में सैनिक लोग महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचे और लव ने उसे पकड़ लिया तो सैनिकों ने बड़े डर से कहा कि यह घोड़ा रामचन्द्र का है जिन्होंने

परशुराम को युद्ध में हराया है। तो सब उपहास कर यांग —

> सिद्धं ह्येतद्वाचि वीर्यं द्विजानां
> बाह्वोर्वीर्यं यत्तु तत् क्षत्रियाणाम्।
> शस्त्रग्राही ब्राह्मणो जामदग्न्यः
> तस्मिन् दान्ते का स्तुतिस्तस्य राज्ञः॥

भवभूति

(यह बात तो मानी हुई है कि ब्राह्मणों में वाणी का बल होता है। बाहुबल तो क्षत्रियों ही में होता है। परशुराम ब्राह्मण थे। उन्होंने हाथ में आयुध पकड़ लिया। उनके हराने में राम ने कौन प्रशंसा का काम किया?)

यशसि चाभिरुचि — यश में रुचि

प्रायः लोग इसकी व्याख्या करते हैं — यश-लोलुपता। यह उनकी भूल है। यश-लोलुप व्यक्ति यश के फेर में पड़ कर किसी न किसी समय धोखा खा जाता है। अंग्रेजी की एक कहावत है— You can befool some persons for all times and all persons for sometime but not all persons for all times. (तुम कुछ लोगों को हमेशा के लिये बेवकूफ बना सकते हो और सब लोगों को थोड़े समय के लिये परन्तु तुम सब लोगों को हमेशा के लिये बेवकूफ नहीं बना सकते)। इस का मूल स्रोत है 'regard for public opinion' दुनिया की मांग का आदर। इसीलिये आपस्तम्ब ने धर्म की व्याख्या इस प्रकार की है यत्तु आर्याः क्रियमाणं प्रशंसन्ति स धर्मः — जिस काम को दुनिया के लोग प्रशंसनीय कहें वही धर्म है। महात्मा गांधी जनमत का बड़ा आदर करते थे। इसी कारण उनकी राजनीति में जोर नहीं मामा वर समस्याओं म गहरा थी। कुप्रथाओं को दूर करने में भी समाज को साथ लेकर चलना चाहते थे। इस विषय में गांधीजी की कार्यप्रणाली बिल्कुल भिन्न थी। वे कुप्रथाओं

बगावत करने पर उतारू रहते थे।

ऐसी कठिन समस्या एक समय मालवीयों की बिरादरी में उठ खड़ी हुई। हमारे एक निकट सम्बन्धी ने अपनी लड़की का अन्तर्जातीय विवाह कर दिया। उन्होंने अपनी लड़की के हित में बहुत उपयुक्त किया। वह धर्म-सम्मत भी था। पर वह जाति के प्रचलित नियमों के विरुद्ध था। आगे चल कर मालवीयजी ने भी अपनी पौत्री का अन्तर्जातीय विवाह किया। परन्तु जिस समय हमारे उक्त सम्बन्धी ने यह साहस किया था बिरादरी में लाम छिड़ गया। हमारे उक्त सम्बन्धी ने पूरा विवरण देते हुए गांधीजी को दो पत्र लिखे। गांधीजी के उत्तर में सम्बन्धी के कार्य का समर्थन और मालवीयजी की कार्यप्रणाली का विवेचन है। पत्र लम्बा है अतः उसका अंश ही उद्धृत करता हूँ। पत्र मेरे पास सुरक्षित है। गांधीजी लिखते हैं—

बंगलोर

प्रिय— ज्ये० कृ० ६

आपके दोनों पत्र मिल चुके हैं। पूज्य मालवीयजी से बात करने की इच्छा थी इसलिए आपके पत्र का उत्तर तुरन्त नहीं भेज सका। जाति-सुधारण का कार्य बड़ा गम्भीर है और मुश्किल है। उसमें धैर्य की बड़ी आवश्यकता है। मालवीयजी का आपके प्रति कोई द्वेष नहीं है। उनके साथ बात करने के बाद मेरा तो निश्चय हो गया है कि आपकी और उनकी कार्यप्रणाली में भेद है। पू० मालवीयजी हिन्दू जाति को सुधारना चाहते हैं। परन्तु एक मनुष्य के कुछ नया कार्य करने से सुधारणा नहीं बन सकती। ऐसा उनका विश्वास है। वे अपनी पद्धति के अनुक्रम जो कुछ प्रयत्न हो सकता है कर रहे हैं। आपको कष्ट देने का उनके स्वप्न में विचार तक भी नहीं आ सकता है।

अब मेरा अभिप्राय यह है—आपने जो कुछ किया वह योग्य

था। हिन्दू जाति में रहते हुए, हिन्दू धर्म पर संपूर्ण प्रेम रखते हुए, सुधारक अपने काम करता जाय और वह करते हुए जो कुछ भी कष्ट पड़े उसको बरदाश्त करे। समाज व्यवहार से बाहर जाकर जो कार्य करता है वह समाज का शासन भी बरदाश्त करे और बरदाश्त करते हुए समाज के प्रति उदार भाव रखे। उसी का नाम सत्याग्रह है। समाज के कानूनों का अनादर करना और पीछे उस अनादर का शासन भोगने से दुःख मानना यह सुधारक का कार्य नहीं है। प्रत्येक मनुष्य अपने धर्म का पालन करता है वह किसी के उपकार के लिये नहीं परन्तु वह धर्म को अपना जीवन समझता है और उसके बिना उसको अर्थरहित सा प्रतीत होता है।

मालवीयजी का जीवन जनता एवं समाज के प्रति प्रेम और और आदर से ओत प्रोत था। स्वर्गीय पंजाब-केसरी लाला लाजपत राय ने कहा था —

"Of all the Indian leader I love Malaviyajee the most though I respect Gandhiji the best. That I think is a fair distribution of honour

(समस्त भारतीय नेताओं में मैं मालवीयजी से सबसे अधिक प्रेम करता हूँ। मैं समझता हूँ कि सम्मान का यह समुचित विभाजन है।)

जनन पुषो—सुनि आर्दा [illegible] यानि स धान्त।
रविर्न विश्व [illegible] प्राचो विश्वो न मृत्।
तत्त्वर न पुरियर्शा निर्णिचन्तो न वेनु दुर्वितिनाथ।

[illegible] १।८५।१

अर्थ —घन के समान विस्तृत सूर्य के समान सब पदार्थों के दर्शक [illegible] के समान पूजन सुवर्ण के समान [illegible] दाताओं के समान [illegible] जिस प्रकार [illegible]

प्रकार हम तेजस्विता को प्राप्त करें।

ऐसा लगता है जैसे ऋग्वेद का अग्निदेवता से सम्बन्धित यह उपमन्त्र मालवीयजी का जीवन संकल्प रहा हो। यह उन दिनों की बात है। उन दिनों मालवीयजी प्रयाग में रहा करते थे। स्थानीय श्री धर्मज्ञानोपदेश पाठशाला के वे सभापति थे और मैं मंत्री था। इसी पाठशाला में मालवीयजी का [illegible] प्रारम्भ हुआ था। उन्होंने ही अन्य विषयों के साथ-साथ वेद का पढ़ना शुरू कराया था। उस समय में वेद का सस्वर शुद्ध पाठ करना सिखलाया जाता था। यह क्रम अब तक जारी है। जब कभी किसी अवसर पर वेदपाठियों की आवश्यकता होती है तो प्रायः धर्मज्ञानोपदेश पाठशाला ही के विद्यार्थी उपपाठ करने के लिए भेजे जाते हैं।

एक दिन मालवीयजी मेरे साथ पाठशाला का निरीक्षण करने गए। उन दिनों वे सभापति थे और मैं मंत्री था। जिस समय हम लोग पाठशाला के द्वार पर पहुँचे वहाँ [illegible] छात्र एक स्वर से वेद पाठ कर रहे थे। एक समा-सी बँधा थी। मालवीयजी प्रवेश-द्वार पर ही ठिठक गए और आँखों को बन्द कर उस स्वर लहरी का रसपान करने लगे। जिस प्रकार मेघ के गर्जन को सुनकर उद्ग्रीव मत्त मयूर को अपने तन-मन का सुध नहीं रहता, अथवा जिस प्रकार कोई मृग अपना वर्षी में मन मग्न भर अघाता [illegible] उसी प्रकार मालवीयजी वेदध्वनि सुनकर आनन्द-विभोर हो रहे थे। वे वेदध्वनि सुन रहे थे और मैं उन्हें देख रहा था। वेदपाठ में जब हो विराम हुआ मालवीयजी मेरा धार स्वयं, मधुर मुसकान बिखेरते हुए बोले 'बाह' और हम लोग पाठशाला के भीतर चले गए।

भीतर जाकर पहिले मालवीयजी हरिदेवजी की चरणपादुका के सामने नत-मस्तक हुए और तत्कालीन प्रधानाध्यापक को प्रणाम किया। तदनन्तर प्रत्येक कक्षा में जाकर छात्रों से पूछ-ताछ

है। तो फिर यह है क्या? पहिले तो उन्होंने यह समझा कि यह केवल एक तेज पुञ्ज है। फिर जब वह प्रकाश-पुञ्ज और निकट आया और उसमें कुछ आकृति दिखाई पड़ने लगी तो उन्होंने समझा कि यह कोई शरीरधारी है। परन्तु जब उसके अवयव स्पष्ट दिखाई देने लगे तो मालूम हुआ कि यह कोई पुरुष है। और जब वह तब पृथ्वी पर आ गया तो उन्हें यह पता चल गया कि यह नारद हैं।)

पुराण का ऐसा तेज कोरी कवि-कल्पना नहीं है। मैंने स्वयं अपनी आँखों से स्वामी रामतीर्थ के दमकते हुए चेहरे के चारों ओर एक प्रभामण्डल का प्रकाश देखा है। मालवीयजी इन दोनों हस्तियों का स्मरण पढ़कर उठे और बोले "आशा है। मैं इसी तरह का तेज यहाँ के छात्रों के चेहरे पर देखना चाहता हूँ।" फिर यह कहकर कि सभी छात्रों को सन्ध्या में सम्मिलित होना चाहिए— अपनी मोहिनी मुस्कान बिखेरते हुए चल गये।

मालवीयजी के लिए ईश्वर की परिभाषा बहुत विशद था। ईश्वर की खोज को वे वेदों का सार मानते थे। स्वरचित पुस्तिका 'जगत् में सबसे उत्तम और अवश्य जानने योग्य कौन है? ईश्वर' उसमें उन्होंने लिखा है— इस संसार में सबसे पुरातन एक वह है। भागवत में भगवान् का वचन है —

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत्सदसत् परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥ २।९।३२

(सृष्टि के आदि में कार्य (स्थूल) और कारण (सूक्ष्म) से अतीत एक मात्र मैं ही था। मेरे सिवा और कुछ भी न था। सृष्टि के पश्चात् भी मैं ही रहता हूँ और यह जो जगत्प्रपञ्च दीख पड़ता है वह भी मैं ही हूँ तथा सृष्टि का संहार हो जाने पर जो कुछ शेष रहता है वह भी मैं ही हूँ।) आगे चलकर अपनी पुस्तिका में

व स्थित है —

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा
सदा जनानां हृदये संनिविष्टः ।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एन-
मेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥

श्वेता० ४।१७

(यह सम्पूर्ण विश्व का रचयिता सब प्राणियों के हृदय में स्थित है । अपने-अपने हृदय में स्थित उस परमात्मा को शुद्ध हृदय से विमल मन से जान के विराजमान जानते हैं वे अमर होते हैं –

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं –

सोइ सच्चिदानंदघन रामा ।
अज विज्ञानरूप बलधामा ॥
व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता
अखिल अमोघशक्ति भगवन्ता ।

में वेद, उपनिषद् आदि धर्म ग्रन्थों में सर्वसमर्थ ईश्वर की महिमा का वर्णन किया है। विस्तार भय से मैंने उन्हीं की व्याख्या सहित थोड़े से उद्धरण दिये हैं। इससे मालवीयजी के हृदय के एक कोने की थोड़ी और उनकी ईश्वर-निष्ठा का आभास मिलता है। सांसारिक वैभव की ओर उदासीनता और ईश्वर में तन्मयता मालवीयजी के जीवन की [illegible] है। महाकवि [illegible] की यह उक्ति उनपर पूर्णरूप से लागू होती है —

> [illegible] उसको है मुझको भी [illegible] है बराबर।
> [illegible] वह उसका [illegible] मेरा॥

मालवीयजी और कायाकल्प

कायाकल्प मालवीयजी के जीवन की एक विशेष उल्लेखनीय घटना है। उस समय इसके सम्बन्ध में अनेक भ्रमात्मक किंवदन्तियाँ उड़ी थीं और बिना समझे बूझे जनता उन्हीं बातों से सन्तुष्ट हुआ करती है। चूँकि मैंने इस प्रयोग को आद्योपान्त देखा है इसलिए मैं उसे विस्तार से लिखता हूँ जिससे लोगों के भ्रम दूर हो जायें।

आरम्भ [illegible] मालवीयजी की आयुर्वेद में बड़ी आस्था थी। [illegible] मुझे ठीक ठीक तो नहीं मालूम कि इन्होंने अपने जीवन में [illegible] औषध का प्रयोग कब किया था [illegible]। [illegible] इतना जानता हूँ कि [illegible] आयुर्वेदिक औषधियों को डाक्टरी औषधियों से बहुत अधिक [illegible] मानते थे और समय समय पर उनका उपयोग भी करते थे।

देश तथा समाज के अनेक कार्यों में अविश्रान्त परिश्रम करने के कारण [illegible] में मालवीयजी बहुत [illegible] हो गए थे। सन् १९३[illegible] की [illegible] प्रकार [illegible] के लिये विश्राम करने [illegible] पर [illegible]। सन् १९३[illegible] की बात है। उस समय उनकी आयु लगभग

७८ वर्ष की थी। वे प्रायः कहा करते थे कि
धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्
धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन सबों के लिए नीरोगता नितान्त आवश्यक है। उधर कई वर्षों से उनकी कमर में दर्द पीड़ा होती थी और वह थोड़ी झुक भी गयी थी। जब वे मसूरी गये तो वहाँ पंजाब के एक सज्जन आनन्दजी से मिले [illegible]। [illegible] स्वामी का [illegible] है जिनकी आयु १०० वर्ष से अधिक है। उन्होंने योगशास्त्र के द्वारा कुछ ऐसी [illegible] औषधियाँ [illegible] निकाली हैं जिनके नियमित सेवन से मनुष्य नीरोग हो जाता है और उसकी आयु बढ़ जाता है। [illegible] उसी [illegible] के थे कि [illegible] स्वास्थ्य सुधर जाए तो वे अधिक दिनों तक देश की सेवा कर सकें। [illegible] स्वामीजी का उन्होंने बताया। स्वामीजी ने [illegible] थी [illegible] समझाया और [illegible] लगाने तथा आयु के [illegible] समर्थन किया। [illegible] प्रभावित हुए और [illegible] करने का निश्चय कर लिया। तदनन्तर वे काशी लौट आए। [illegible] काशी के [illegible] और [illegible] है और [illegible] का बड़ा विरोध किया परन्तु [illegible] [illegible] ने [illegible] दे। वे उसी पर कायम रहे।

[illegible] [illegible] कि [illegible] की [illegible] में होगी। [illegible] दिनों में [illegible] पर [illegible] [illegible] कर लिया [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] बहुत [illegible] हुए थी और [illegible] [illegible]।

दिया गया था जिसमें भीतर तनिक भी प्रकाश न जा सके। इस प्रकार हवा भी सामसाम को घूम-घुमाकर जा सके। इसी बगलिया के भीतर के कमरे में मालवीयजी को नियमानुसार ४० दिन रहना था। प्रकाश के लिए मालवीयजी के कमरे में लाल चिमनी की एक लालटेन जलती जो जसी फोटोग्राफरों के 'डार्क रूम' में होती है।

जब यह सब प्रबन्ध सम्पन्न हो गया तो मालवीयजी तपसी स्वामी तथा अपने पुत्र चि० मुकुन्द के साथ मोटर में काशी से प्रयाग आये। सबसे पहिले उन्होंने अपने परिवार के इष्टदेव श्रीकृष्ण के विग्रह का दर्शन किया फिर अपनी धर्मपत्नी सौभाग्यवती कुन्दनदेवी से मिलकर शिवकुटी चले गये। मालवीयजी के साथ देहरादून के प्रसिद्ध तांत्रिक पण्डित हरिदत्त शास्त्री ने भी कायाकल्प करने का निश्चय किया था। वे भी शिवकुटी पहुँच गये। उनके लिए भी उसी बाग में एक अलग कुटी बगलिया में सब प्रबन्ध कर दिया गया।

अब चिकित्सा प्रारम्भ हो गयी। पंजाब से काली गौएँ मँगा गयी थीं। उन गौओं को उनके नित्य के आहार के साथ कुछ जड़ी बूटियाँ भी औषध के रूप में खिलाई जाती थीं। इन्हीं गौओं का दूध मालवीयजी और शास्त्रीजी पीते थे। और इन्हीं गौओं का दूध जमाकर उससे जो मक्खन निकलता था वह औषधि के साथ दिया जाता था।

कायाकल्प कुटी में प्रवेश

शिवकुटी में जिस समय मोटर पहुँचा तो चि० मुकुन्द और मालवीयजी के कृपापात्र मोटर से सहारा देकर मालवीयजी को मोटर से उतारा और फिर वहीं सीढ़ियों से वे कायाकल्प के कमरे में पहुँचे। ध्यान मग्न हो गये थे मालवीयजी।

वहाँ तपसी के लिखित नियमों के अनुसार चिकित्सा आरम्भ

होने के पूर्व मालवीयजी का मुंडन स्नान वमन इत्यादि कराया गया। तपस्वीजी ने स्वयं अपना मुण्डन कराया और आज्ञा दी कि जो निरन्तर मालवीयजी की सेवा में रहें उनका भी मुण्डन आवश्यक है। अत: चि० मुकुन्द ने भी मुंडन कराया। मैं तो यह सब देखकर हैरान था। धृष्टता क्षमा हो। यद्यपि अकबर का यह शेर पूर्ण तरह से लागू नहीं होता परन्तु न जाने क्यों उस वक्त याद आ ही तो गया—

मजनूं छोड़ो लैला छोड़ो
सूरत बदलो, उम्र घटाओ।
सिर मुँड़वाओ की उम्मीद
और इनको मुबारक तोबा तोबा।

इस प्रकार साधारण दो दिन के लिए [illegible] चिकित्सा आरम्भ हो गयी। मैंने तपस्वी स्वामी को देखा। उनकी उम्र १०० वर्ष से अधिक बतायी जाती थी पर देखने में अधिक से अधिक ८० वर्ष के लगते थे। खूब लम्बे चौड़े हृष्ट-पुष्ट गोरवर्ण एवं प्रतिभाशाली। यदि कोई [illegible] सिर ढांक और हाथ को [illegible] में छिपाये देखता तो यही समझता कि किसी दंगल में अपनी ताकत दिखाने आये हैं।

चिकित्सा की व्यवस्था

चालीस दिन तक कल्प का नियम था। साधारणत: सब का मालिश जो मालवीयजी का नियम था बन्द कर दी गयी थी। सवेरे के साथ औषधि और भोजन दूध ही का आता था। औषधि के लिए हाथ के बने हुए आँवले का प्रयोग होता था। तपस्वी स्वामी स्वयं [illegible] [illegible] दूर [illegible] आते थे। परन्तु वे कुछ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] लिए जाते

था। ऊपर से गजपुट (मुँह बंदकर उसके चारों ओर मट्टी मढ़े-कर) कर उसके चारों ओर उपलों की आग जला दी जाती थी। इस प्रकार प्रतिदिन यह प्रक्रिया चलती रही। दूसरे दिन तपस्वीजी पहिले दिन के पकाये हुए गमले में पका हुआ आँवला लेकर और दूसरे पेड़ में नया आँवला भर देते थे। पके हुए आँवले को मलकर तपस्वीजी उस शहद में भिगो देते थे। उसमें वे कोई और औषधि भी मिलाते थे। इस औषधि का नाम उन्होंने किसी को नहीं बताया। इस प्रकार तैयार किया हुआ आँवला मक्खन के साथ मालवीयजी और शास्त्रीजी को औषधि के रूप में दिया जाता था। आहार के लिए दिन में चार बार दूध दिया जाता था। प्रारम्भ में आँवला और मक्खन एक-एक तोला दोनों समय में लिया जाता था और वह क्रमशः तीन तोला तक बढ़ाया गया। दूध एक सेर से बढ़कर ढाई सेर तक ही बढ़ सका। तपस्वीजी के आज्ञानुसार मालवीयजी अधिकतर चारपाई पर ही विश्राम करते रहते थे पर शास्त्रीजी उनका पूजा पाठ भी करते थे। मालवीयजी के कमरे में श्रीमद्भागवत का नित्य पाठ होता था जिससे उन्हें बड़ी शान्ति मिलती थी। लोगों के मिलने की प्रायः मनाही थी। दिन में चार बार दूध व औषधि देने के लिए उनके पुत्र पं० मुकुन्द आते थे। प्रातःकाल और संध्या के समय तपस्वीजी आते थे। मालवीयजी की धर्मपत्नी कभी-कभी उनके पास जाती थीं। और कभी-कभी कुछ खास-खास लोगों को तपस्वीजी अनुमति दे देते थे।

प्रारम्भ में तीन दिन तक मालवीयजी को उत्तरोत्तर लाभ होता गया। एक दिन डाक्टर हृदयनाथ कुंजरू मालवीयजी से मिलने आये। उस समय मालवीयजी सीधे होकर लोगों के साथ पीछे की ओर किये हुए टहल रहे थे। हृदयनाथजी यह देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उनसे यह कहने लगे—"Twenty years before I saw you walking with this gait in Delhi" (बीस

ही था। इतने बड़े महापुरुष ने आयुर्वेद शास्त्र से अनुमोदित इस कायाकल्प को आयुर्वेद के पण्डित सत्यनारायण शास्त्री जैसे धुरन्धर विद्वान् के विरोध करने पर भी किया, इसकी अच्छी तरह से जाँच होना आवश्यक था। पर यह सब कुछ नहीं हुआ। वह एक आँधी की तरह आयी और निकल गयी। मैं अपना मत इस पर कुछ नहीं प्रकट करता। मैं इसका अधिकारी भी नहीं हूँ। यदि तपसी स्वामी अब मुझसे मिलते तो उनसे यह अवश्य कहता कि—

तुम्हीं कहो आज पर सब वे तुम्हारा कुछ लिखा मिलते।
मगर यह तो कहना तुमको क्या समझा था क्या मिलते॥

तन्दुरुस्ती परकीया भी होती है विवाहिता सहधर्मिणी नहीं। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में कण्व शकुन्तला को विदा करते के समय उपदेश देते हैं—

भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।

(पति तुम्हारी अवहेलना भी करे तो तुम क्रुद्ध होकर उनके विपरीत आचरण न करना।) यह विवाहिता पत्नी का धर्म है, परकीया का नहीं। तन्दुरुस्ती एक हद तक अवहेलना सहन कर सकती है। उसके बाद वह छोड़कर चली जाती है। मालवीयजी ने जीवन भर उसकी अवहेलना की और उस अत्यन्त मानिनी धन सम्पत्ति न दर्शनीयता में रखना और उसकी तनिक भी परवाह न करते हुए देश और समाज के अनेक काम आप करते थे। आखिर चार हाड़ मांस का ही यह शरीर है। उसकी शक्ति बहुत होते हुए भी सीमित है। इस पर बड़े-बड़े नेता देश के हित में इसका ध्यान रखें। कायाकल्प के सम्बन्ध में मुझे गालिब के शेर की याद आती है—

हमको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन
दिल के खुश रखने को गालिब ये ख्याल अच्छा है।

कायाकल्प के कई वर्ष बाद मालवीयजी की धर्मपत्नी का

न्त हुआ। यह मैं मानता हूँ कि उसमें उन्हें बहुत आघात था। परन्तु उसके बाद उसके फिर नितान्त स्वस्थ हो जाने का एक सौभाग्यवश कुन्दनजी की मृत्यु भग दी। वह भी निमित्त न थी। मूल कारण था मालवीयजी का अपने आत्मबल की निरन्तर सहायता। वृद्धावस्था में स्वास्थ्य ... असहेनता का दोष निरा था है। विलियम ... ने ठीक ही कहा है—

कम बैठक होता है वे जिनका हिम्मतवाले का।
आँखें ...

पर्सेवा का ... है—

Believe in God
And in thine own self believe
All that thou hast desired
Thou shalt achieve

(ईश्वर में विश्वास करो और स्वयं अपने में विश्वास करो। जो कुछ भी तुम्हारी इच्छा होगी वह निश्चय ही तुम्हें प्राप्त होगी।)

ईश्वर में विश्वास और अपने आत्मबल पर विश्वास इन दोनों पर ... अवलम्बित है। संसार के सभी धर्मों के साहित्य में इन दोनों शक्तियों का गुणगान किया गया है।

मालवीयजी जब विश्वविद्यालय में गीता प्रवचन करते थे तो इस श्लोक पर बहुत जोर देते थे और उसका बड़ा विशद और मार्मिक व्याख्या करते थे—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ गीता ६।५

मनुष्य अपना उद्धार आप ही करे। अपने आपको

गिरने न दे। क्योंकि (प्रत्येक मनुष्य) स्वयं ही अपना बन्धु (अर्थात् सहायक) या स्वयं अपना शत्रु है।) भगवद्गीता-रहस्य - तिलक।) सौभाग्य से मैं विश्वविद्यालय में उपस्थित था जब मालवीयजी इस श्लोक की व्याख्या कर रहे थे। उन्होंने नात्मानमवसादयेत् की व्याख्या इस प्रकार की—मनुष्य को चाहिए कि वह कभी भी अपने में हीनता का अनुभव न करे और अपने में दृढ़ विश्वास रखे। छात्रों और अध्यापकों के समाधान के लिए उन्होंने inferiority complex इन्फीरियारिटी काम्प्लेक्स शब्द का प्रयोग किया था और कहा था कि मनुष्य में हीनता नहीं होनी चाहिए। यदि मनुष्य में आत्मविश्वास है तो वही उसका सबसे बड़ा बन्धु है।

प्रायः सभी भाषाओं के साहित्य में इन दोनों शक्तियों की प्रशंसा की गयी है। उर्दू साहित्य कहता है—

खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तकदीर से पहले।
खुदा बन्दे से खुद पूछे बता तेरी रजा क्या है॥

—इकबाल

आत्मविश्वास पर एक शायर हाली का कथन है—

कहीं से कामो किसी के अपने किसी भरोसा न कीजियेगा।
ये राज़ है अपनी जिन्दगी का जग इसका चर्चा न कीजियेगा॥

इस प्रकार की उक्तियों से संसार का साहित्य भरा पड़ा है। विस्तार भय से अधिक नहीं लिखता।

यह कहना अनावश्यक है कि मालवीयजी में ईश्वर के प्रति और अपने प्रति अटूट विश्वास था और यही काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना एवं अभिवृद्धि के मूल मंत्र थे।

काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय मालवीयजी की एक महान् कृति होते हुए भी उनके विशाल हृदय का सम्पूर्ण चित्र नहीं है। यह उनके उदार हृदय के कोने की झाँकी मात्र है। मालवीयजी की मृत्यु

पर प्रयाग के हाईकोर्ट के बार एसोसियेशन की शोकसभा में बोलते हुए सर तेजबहादुर सप्रू ने कहा था—

If he had done nothing else but founded this University and helped it to reach its present position his name would be immortal in Indian history."

अर्थात् यदि इस विश्वविद्यालय को स्थापित करने और उसे उसकी वर्तमान स्थिति पर पहुँचाने में सहायता देने के अतिरिक्त उन्होंने और कोई भी काम न किया होता तो भी उनका नाम भारत के इतिहास में अमर रहता।

इसी अवसर पर पर गांधीजी ने सन्देश में लिखा था—

मालवीयजी के काम अनेक हैं। बहुत बड़े हैं। उनमें सबसे बड़ा है हिन्दू विश्वविद्यालय।

इससे पहिले सन् १९३१ में गांधीजी ने लिखा था—

काशी विश्वविद्यालय के मालवीयजी प्राण हैं। काशी विश्वविद्यालय मालवीयजी का प्राण है। वह प्राणाधार हमारे लिए दीर्घायु हो।

गांधीजी ने उपरोक्त अभिभाषण में काशी विश्वविद्यालय कहा है। इसमें हिन्दू शब्द का प्रयोग नहीं किया है। बात यह है कि आरम्भ में मालवीयजी ने इस संस्था का नाम काशी विश्वविद्यालय रखा था, पीछे हिन्दू विश्वविद्यालय बना। गांधीजी लिखते हैं—

'मालवीयजी ने जिसे हम बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के नाम से पहचानते हैं। उस नाम के लिए और मालवीयजी महाराज का मन उनके पवित्रता का रूप है। मालवीयजी दीर्घायु हों।

विश्वविद्यालय की स्थापना के सम्बन्ध में मालवीयजी की बड़ी

कविता इस प्रकार है—

जयतु विश्वविद्यालय काशी ।
मातु गंग पय जाहि पियावत पुलकित सुखरासी ।
पालत विश्वनाथ विद्यागुरु शंकर प्रभु अविनाशी ।
ज्ञान-विज्ञान-प्रकाशी ॥
गंग-जमुन-सरयू मिलि देवी गुप्त रहीं सकुचा-सी ।
हंसा-रूढ़ा सोइ सरस्वति भारत-उर प्रकटानी ॥
तिमिर-अज्ञान-विनाशी ॥
ऋषि-मुनि संग गुण-आगर सोहत जसस परम हुलासी
देत अमोल कनहु पर कबहु सब विध भारतवासी
लहहु विद्याधन राशी ॥

इसमें भी मालवीयजी ने 'विश्वविद्यालय काशी' कहा है 'हिन्दू विश्वविद्यालय काशी' नहीं।

एक प्रमाण और भी। विश्वविद्यालय के शिलान्यास के प्रस्तर पर ये श्लोक अंकित हैं—



काशीविश्वविद्यालय।
शाके युग्मे अग्निसरि तिथि गुरुवारे निगमा
माघे शरणी शुक्लपक्ष्ये विश्वनाथे ।
प्राप्त यत्र परिशमपुरं विश्वविद्यालयस्या—
काशीष् नभाग अभिनिधिवरो लोर्ड हार्डिङ्गपुरोऽमि

इस प्रस्तर के नीचे एक खोल के भीतर एक तांबे का डब्बा है। उस डब्बे के भीतर अन्य तात्कालिक चीजों के साथ एक ताम्र पत्र रखा है। उस ताम्रपत्र पर जो मन्त्र है उसे ज्यों का त्यों उद्धृत करता हूँ—

धर्मं सनातनं भीरव ब्रह्मचर्येण धीहितम् ।
भूयात् दुर्धवार्य च लोकानां मानवं पुनः ॥

यत्रै वचनतद्भवाते यत्रै भारतभूमिषु ।
पारोपमितुद्धारत्वीमाय पुण्यदम् ॥
नानीभवे पवित्रेऽन पंचामीरे महोत्सवा ।
पुण्येच्छा पुण्यमनस्मा सज्जाना जगदात्मनः ॥
संयमत्वाच पादभावतः प्राप्यात्मानि प्रजा विभा ।
तत्र हता विपार्थमन्दं गुर्मनितरताय ॥
भिरवनायपुरे भित्रवनीनो भिरवयापन ।
भिरवामारद्वारर्वद्वर्तवणारोड स्वर्भिवनिष ॥
रहितमानमनापूर तवोपापा कोविदु ।
त्मनीनो हैतमतो भिन्ना मनमयेरन ॥
तत्र भारतव तेजस्नर्मन्नुरबोधव भारतर ।
परताति तत्पानामस्मिन्मानं व्यपाप्नयु ।
यत्रे वाति निमित्तानि प्राकवम्मत्ताचन ।
वोतनेश्वरो वोतो गर्वान्तरो प्रदूवना ॥
पीतमेवातर्नित्रत्व वतर्यमा-प्योर्नित ।
प्रवास वाम्व वर्तिव्या समाना भारतर्यन ॥
पुणौ पुनरत्नानाव मनी वोवार्थितान ।
पुरवानार्तिव्वरामी वामनी वर्त्मनो तथा ॥
तथा पार्तविद्रातो च पुत्रा वे हेतव्यनाः ।
वानारवान्ते मन्वनो स्वामत्र निवहिते ॥
मित्रोर्तिलाषद्रापा वीव एतवदेशने ।
सवर्ति वच्चे स्पागरे मार्ग परिमार्गत ॥
वैवातरर्नतिरत्नीतवनुताभवार्थवान् ।
वोन्यवनुरेलीतव्योपूर्वतिभूमिनान् ॥
तथा वनु वनानाथायनेरारत्नोत्वतान् ।
देवनिन्ना महापर्व नाववावनतोतपा ॥

धर्मस्य मुख्यधर्माणां रक्षाय प्रथमस्य च ।
प्रचाराय स्वनीत्यानां स पूर्वैः परः प्रभुः ॥
मार्हत्विज मुनिस्थाने सम्राट् प्रतिनिधिं वरम् ।
धीरं वीरं प्रभावज्ञं जनानां हृदयं ममम् ॥
विश्वविद्यालयस्यास्य शिलान्यासे न्ययोजयत् ।
शरद्यामे मेघभूभूप्रभुपरिमिते वैक्रमाब्दे च मासे ।
माघे पक्षे च शुक्ले प्रतिपदि च तिथौ वह्नि पुष्ये सलेन्दौ ॥
श्री हार्डिङ्ग्ज़ नीतिमान् प्रतिनिधिपदस्थो पण्डितास्यात धनीद् ।
सच्छात्रागारसंभारं विसृजन् स महाविद्यालयोऽम्बम् ॥
सरस्वती भुवि भवती महीयताम् ।
तत्र च सा ज्ञानगुणा निषेव्यताम् ॥
सदा मतिः सुचरिते नियोज्यताम् ।
रतिः परा परमपुरी प्रकाश्यताम् ॥

(सनातन धर्म को काल के वेग से पीड़ित तथा सम्पूर्ण भू मण्डल के प्राणियों को दुःखी अवस्था में और आकुल देख कर कलियुग के पाँच हजार वर्ष व्यतीत होने पर, भारत भूमि पर, काशी-क्षेत्र में गंगा के पावन तट पर इस सनातनधर्म के बीज का पुनः नवीन रूप से आरोपण करने के लिए जगदीश्वर की शुभ पुण्य इच्छा उत्पन्न हुई। अपनी प्राच्य और पाश्चात्य प्रजा को एक में सूत्र-बद्ध करके और विशिष्ट विद्वानों का एकमत कर, विश्व भावन विश्वात्मा विश्वस्रष्टा ने विश्वनाथ की नगरी में विश्व विद्यालय के संस्थापन की व्यवस्था की। देशभक्त विप्र मदनमोहन मालवीय परमेश्वर की इस इच्छा के पूर्ण करने के लिए निमित्त मात्र बने। भारत को जगा कर और उसमें वाङ्मय तेज का विधान कर भारत के शासकों को अनुरक्त कर इस कार्य को सफल करने में उन्हें प्रवृत्त किया। भगवान् की इस इच्छा की पूर्ति में और भी कई महापुरुष निमित्त बने। महामना बीकानेर-नरेश

वीर महाराज श्री गंगासिंह बहादुर, कार्यकारिणी सभा के सम्मान्य प्रधान सभापति दरभंगानरेश स्व० श्री रामेश्वरसिंह जी मंत्री एवं कोषाध्यक्ष डाक्टर श्री सुन्दरलालजी सर गुरुदास बनर्जी श्री आदित्यराम भट्टाचार्यजी विदुषी श्रीमती एनी बेसेंट डाक्टर रास बिहारी घोष तथा अन्य शिक्षा-वयोवृद्ध देशप्रेमी भगवान दासों ने यथाशक्ति इसकी रक्षा की। महारानी विक्टोरिया के पौत्र महाराज एडवर्ड के पुत्र सम्राट् पंचम जार्ज के शासनकाल में मेवाड़ काशी, काश्मीर, मैसूर अलवर, बीकानेर जयपुर, इन्दौर, जोधपुर कपूरथला नाभा ग्वालियर आदि राज्यों के नृपतियों को तथा अन्य धर्म-प्रेमी सज्जनों को इसकी सहायता के लिए प्रेरणा कर सब धर्मों के जन्मदाता सनातन धर्म की रक्षा एवं उन्नति के लिए तथा अपनी सीमा के विस्तार के निमित्त उन्हीं परात्पर प्रभु ने सम्राट् के प्रतिनिधि (वायसराय) धीर-वीर प्रजाबन्धु श्री लार्ड हार्डिंग के द्वारा इस विश्वविद्यालय का शिलान्यास करवाया।

श्री विक्रम संवत् १९७२ में माघ शुक्ल प्रतिपदा शुक्रवार के दिन शुभ मुहूर्त में श्री काशी नगरी में सम्राट् के प्रतिनिधि के द्वारा जिस विश्वविद्यालय का शिलान्यास किया गया वह सूर्य और चन्द्र के रहने तक सुशोभित रहे।

देश में अपनो लक्ष्मी की अभिवृद्धि हो।
सब उनमें भली [illegible] ज्ञान के अंकुर को लोग सिंचें।
शुद्ध चरित्र में बुद्धि सदा लगी रहे।
परमगुरु (शिव विष्णु आदि) में सदा अनुराग की वृद्धि हो॥

इस लम्बे शिलालेख में भी हिन्दू शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। परन्तु इन उपर्युक्त स्थानों पर हिन्दू शब्द के न प्रयुक्त होने से मुझे ऐसा लगता है कि मालवीयजी ने इसका नाम पहिले काशी विश्वविद्यालय ही रखा था।

मैंने इस लम्बे शिलालेख का सम्पूर्ण उद्धरण यहाँ इसलिए है

किया है। यद्यपि मेरे पास इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है तथापि मुझे ऐसा लगता है कि यह ताम्रलेख स्वयं मालवीयजी की कृति है। वे संस्कृत के विद्वान थे। संस्कृत में बिना किसी तैयारी के देर तक भाषण करते थे और संस्कृत में पद्य रचना भी करते थे। पं० अम्बिकाप्रसाद उपाध्यायजी लिखते हैं—

संस्कृत भाषा के ऊपर भी मालवीयजी का पूर्ण अधिकार था। संस्कृत में व्याख्यान तथा श्लोकबद्ध लेख मैंने देखे हैं। संस्कृत में व्याख्यान मैंने सुना है (एक समय) संस्कृत साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ। संस्कृत साहित्य-सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष मालवीयजी थे। कार्य अधिक था। मालवीयजी अस्वस्थ भी थे इसलिए अपना भाषण तैयार नहीं कर सके। बोले, हम बोल लेंगे समय पर बोलने के लिए खड़े हो गये। हमसे धीरे से बोले अशुद्धियों को गिनकर कहना। अपना भाषण ४५ मिनट तक अपने मन से बोलते गये। मैं ध्यान लगाये था परन्तु कहीं भी कोई अशुद्धि न हुई। व्याख्यान समाप्त कर, बैठे तो मुझसे पूछा। मैंने कहा कि हनुमानजी के व्याख्यान के बाद आप वाल्मीकि ने जो टिप्पणी लिखी है वह व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम् वही मेरे स्मृति-पथ में आ गयी है। मालवीयजी महाराज हँसने लगे।

उपर्युक्त ताम्र-लेख का सम्पूर्ण उद्धरण इसलिए भी दिया कि वह विश्वविद्यालय के संस्थापन का एक संक्षिप्त इतिहास है और उसमें संस्थापक की ईश्वर भक्ति धर्मनिष्ठा एवं पवित्र-हृदय की एक सुन्दर झाँकी है।

परन्तु इससे भी महत्त्वपूर्ण इसका प्रारम्भिक इतिहास और उससे सम्बन्धित कुछ संस्मरण हैं। क्योंकि बहु विघ्नानि', अच्छा काम करने में बड़े विघ्न होते हैं। परन्तु धीर एवं दृढ़प्रतिज्ञ पुरुष उससे विचलित नहीं होते।

कहा भी है—

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः ।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमाना
प्रारभ्य चोत्तमजनाः न परित्यजन्ति ॥

अर्थात् नीची श्रेणी के मनुष्य विघ्न के भय से कोई कार्य आरम्भ नहीं करते । मध्यम श्रेणी के लोग कार्य का आरम्भ तो करते हैं परन्तु जहाँ विघ्नों का थपेड़ा लगा तो हाथ पर हाथ रख कर बैठ जाते हैं । परन्तु उत्तम श्रेणी के लोग जिस काम को हाथ में लेते हैं फिर मुह नहीं मोड़ते । महर्षि वाल्मीकि ने भी कहा है—

गर्वं वा यदि वा कार्यं यो हि कार्यमुपस्थितम् ।
तथैव प्रतिपद्येत स वीर पुरुषोत्तम ॥ वाल्मीकि ।

अर्थात् चाहे गर्व हो अथवा चाहे लोग उसे अनुचित समझें जो काम जबान से निकल गया उसको जो तत्परता से पालन करता है वही मनुष्य पुरुषोत्तम है । सन् १९०८ में मालवीयजी ने एक विश्वविद्यालय के संस्थापन का निश्चय किया । उसमें अनेक विघ्न आये परन्तु मालवीयजी का तो उसूल था—

चला जाता हूँ हँसता खेलता अपने ख्याल से ।
अगर आसानियाँ हों जिन्दगी दुश्वार हो जाये ॥

उन्होंने जब अपने इरादे की घोषणा में कहा हुए भारती
य की बात लगा था तो यह बन कर रहा ।

बात वैसी है खरी-खरी,
[illegible] [illegible] करनी है ।
हार का मौका है [illegible] है
कौन मुझ पर [illegible] करनी है ॥

उन्हें प्रारम्भ में कई मौके ऐसे आये जब उनके साथ वाले
पर तब तक विश्वविद्यालय अपने पैरों पर

हुआ था वह मत मस्तक होकर लौट गयी।

सन् १९०४-५ में सर्वप्रथम एक विश्वविद्यालय के संस्थापन की चर्चा छिड़ी। जोर शोर से उबाल आया परन्तु कई ओर से ठंडा पानी पड़ने से शान्त हो गया। पर नीचे अग्नि रही थी किसी वक्त उबाल आ सकता था। उस समय की रस्साकशी देखने लायक थी। एक ओर मालवीयजी के उत्साह की अग्नि और दूसरी ओर उनके फूंक-फूंक कर चलनेवाले मित्रों के उत्साह के भंग करनेवाले मृदुल वचन। यह संग्राम कुछ ऐसा था जैसे कृष्ण और शिशुपाल के बीच हुआ था।

मधुरैरपि भूयसा स मेध्यं
प्रथमं प्रयुक्त वारिभिरिवीरे।
मघमानवकः तदा कृशेण
प्रणयकोप इवारमत् विवादः॥ माघ।

(शिशुपाल एक ओर से आग्नेय अस्त्र छोड़ रहा है। दूसरी ओर से कृष्ण वारुणास्त्र छोड़ रहे हैं। पहिले तो ठंडे पानी के पड़ने से अग्नि भभकी पर निरन्तर पानी पड़ते रहने से प्रणय क्रोध की भांति शान्त हो गयी। प्रेयसी क्रोध में भरी कटु शब्द उगल रही है। प्रियतम उसे मनाने के लिए मृदु शब्दों का प्रयोग कर रहा है। पहिले तो प्रेयसी की कोपाग्नि इन वात्सल्य के शब्दों से भड़की। परन्तु जब वह अनुनय विनय करता ही चला गया तो प्रेयसी का ताप शान्त हो गया।)

यद्यपि १९०४-५ में विश्वविद्यालय की चर्चा एक प्रकार से शान्त हो चुकी थी तथापि मालवीयजी की लगन की अग्नि तो 'भस्मप्रच्छन्न दहन' के समान भीतर लगी थी। किसी समय भड़क सकती थी। सौभाग्य से वह अवसर आ ही गया।

तुम बताते हम को चंदन की कणिका तो न हो।
फिर बने बातें न उड़ बढ़े अगार बैन कर॥

१९०९ में अलीगढ़ में मुस्लिम यूनिवर्सिटी की चर्चा हुई और बात आगे बढ़ गयी। मालवीयजी को सहारा मिल गया। उन्होंने विश्वविद्यालय की चर्चा फिर चलायी। उनकी अभिलाषा थी कि काशी और प्रयाग के बीच गंगा के तट पर ऐसे आश्रम स्थापित किये जायँ जहाँ देश के नवयुवक और लड़कियाँ ज्ञान-वर्द्धन के साथ साथ चरित्र निर्माण की भी शिक्षा पा सकें। सन् १९११ में हिन्दू यूनिवर्सिटी सोसायटी की स्थापना हुई और इसी साल से विश्व-विद्यालय का रजिस्ट्रेशन भी हुआ। १ अक्तूबर १९१५ को 'बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी बिल' पास हुआ। काशी के स्वर्गीय बाबू शिव-प्रसाद गुप्त मालवीयजी के अनन्य भक्त थे और मालवीयजी उन्हें पुत्र की तरह मानते थे। शिवप्रसादजी लिखते हैं —

'हिन्दू विश्वविद्यालय का आन्दोलन सत्ययुग की बाढ़ के सदृश [illegible] की ओर वेग से बढ़ रहा था। उसके आगे के पथ का [illegible]ना असम्भव हो चुका था। जब शिमला-शिखर से बाबू मालवीयजी के लिए बुलावा आया, बाबू के साथ मैं भी शिमला पहुँचा। परलोकगामी राजा रामपालसिंह की कोठी में हम लोग ठहराये गये। बाबू उस समय के शिक्षा-सचिव से मिलने गये और वहाँ से बड़े प्रसन्न आये और मुझे बुलाकर कहा कि सरकार ने विश्वविद्यालय को चलाने का वचन दे दिया है। मेरे सामने तो क्षण में सून-सान हो गया और मेरे मुख से सहसा निकल पड़ा —

This is the death-knell of the Hindu University

अर्थात् यह तो हिन्दू विश्वविद्यालय की मृत्यु-घोषणा है। बस तुरन्त लोग ऊपर से नीचे तक फिर [illegible] आये। [illegible] इस सभा में [illegible] परलोकगामी [illegible] बाबू ने कहा कि — Charter or no Charter Hindu University must exist. [illegible] ऊपर से [illegible] कहा कि — Charter and Charter Hindu University [illegible]

इन वाक्यों से दोनों महान् व्यक्तियों की मनोवृत्ति का भली भाँति पता चल सकता है। अब तो चारों ओर से लोगों की सहानुभूति उमड़ने लगी। लाहौर से डेप्युटेशन आगे बढ़ा। मेरठ में बड़े समारोह से सभा हुई। १२ मील तक का लम्बा जुलूस निकला। परमोत्साही महाराजा दरभंगा ने आकर शिरस्त की ओर सभापति बनना स्वीकार किया और ५ लाख का दान भी दिया। इसी के पश्चात् पूज्य पंडित सुन्दरलालजी ने भी श्री हारकोर्ट बटलर के कहने पर मन्त्रित्व स्वीकार कर लिया था। अब सहाय का एक दूसरी ओर चला और विद्यालय के लिये धन की घनघोरवृष्टि होने लगी।

४ फरवरी १९१६ को लार्ड हार्डिंग्ज ने विश्वविद्यालय का शिलान्यास किया। मैं उस अवसर पर उपस्थित था। समारोह का क्या कहना था! मालवीयजी का स्वप्न आज पूरा हुआ था।

इस बात को हुए ४५ वर्ष हो गये। उससे सम्बन्धित घटनाओं की स्मरणता एवं उसका क्रम धूमिल पड़ गया। अतः घटनाक्रम में थोड़ी भ्रान्ति हो जाना स्वाभाविक है। इसी अवसर पर या इसके कुछ ही आसपास शिलान्यास के मण्डप में एक सभा हुई। इसमें बड़े-बड़े राजे महाराजे राजसी ठाठ से सुसज्जित उपस्थित थे। गांधीजी थे। श्रीमती एनी बेसेन्ट भी थीं। लोगों के व्याख्यान हुए। इतने में मालवीयजी ने गांधीजी से अपने श्रीमुख से कुछ कहने के लिये कहा। यह कब हो सकता था कि सभा में गांधीजी हों और मालवीयजी उनसे बोलने के लिए न कहें? गांधीजी उठे।

सोते हुए उसको जगाना एक बीरता थी।
जागे तो उसको सुलाना एक काम था॥

(गिद् के प्रति एक कवि की उक्ति)

अपने व्याख्यान के किसी प्रसंग में महाराजाओं की ओर देखकर उन्होंने एक विषम बात कह दी था— 'जब जनता भूखों मर रही

है आपको इन हीरा जवाहरात के पहिनने का कोई हक नहीं है। ये सब जनता की सम्पत्ति है। राजा लोगों ने कसमसाकर [illegible] राजसी ठाठ में मुस्कराते हुए—[illegible] खून के घूंट का पी लिया। पर जब गांधीजी ने किसी प्रसंग में यह कहना प्रारम्भ किया कि मैं तो बस [illegible] की प्रशंसा करता हूँ तो गजब हो गया। इतना उन्होंने कहा ही था कि श्रीमती एनी बेसेन्ट बीच में खड़ी हो गयीं और बोलीं— "Stop Mr Gandhi" और इसके पहिले कि वह और कुछ कहें—बहुत दिन की बात हो गयी परन्तु जहाँ तक मुझे याद है—सब के पहिले महाराज दरभंगा या महाराज [illegible] और उनके बाद एक-एक करके सब राजे-महाराजे पंडाल के बाहर चल गये। गांधीजी हँसने लगे। मैं उस कोने में बैठा था जहाँ यह सब व्यापार हो रहा था। मालवीयजी के चेहरे का [illegible] बदल गयी और उनके हृदय में जोर की पीड़ा उठी। लोग उन्हें तुरन्त बाबू शिवप्रसाद गुप्त की कोठी पर ले गये। कोठी निकट ही थी और मालवीयजी उन दिनों वहीं ठहरे थे। तुरन्त कविराज गणनाथ सेन आये और [illegible] पर [illegible] देने लगे। मैं पहिले ही कोठी पर पहुँच गया था। कोठी के बाहर जनता भीड़ रोके [illegible] नहीं थी। खबर फैल गयी कि मालवीयजी को हृदयाघात (Heart attack) ने आ घेरा है। गांधीजी तो उनके साथ ही आये थे। राजा-महाराजाओं को भी खबर होते देर न लगी। जब मालवीयजी की तबीयत [illegible] तो गांधीजी ने उनसे [illegible]—इन लोगों ने तो मुझे बोलने ही नहीं दिया और उठ कर चले गये। मैं तो आगे कहने जा रहा था कि इस बस [illegible] लोगों का [illegible] हित समझकर [illegible] पर [illegible] है। इसमें कौन [illegible] कर सकता है परन्तु वे [illegible] पर है और उस [illegible] तुरन्त छोड़ देना चाहिए। मैं तो [illegible] चाहता हूँ। मैं क्या [illegible] बात की [illegible] कर [illegible]

मालवीयजी को थोड़ी ढाढ़स हुई। इतने में राजा महाराजाओं की मोटरें आने लगीं। मालवीयजी ने उनसे सब बातें जो गांधीजी से हुई थीं कहीं। राजाओं ने स्वयं कहा कि आप सभा कल फिर बुलावें। यदि उसमें गांधीजी इसका स्पष्टीकरण करने कहें तो हम सब लोग आवेंगे। मालवीयजी की जान में जान आयी।

दूसरे दिन सभा हुई। सब राजे महाराजे आये। गांधीजी ने स्पष्टीकरण कर दिया। बला टल गयी। काशी विश्वनाथ ने मालवीयजी की इच्छा-पूर्ति कर दी।

यथा येना आगया स्मिरति तथा वत्तलवत्

मालवीयजी—भिक्षुक

मर जाऊं माँगूं नहीं अपने तन के काज।
पर-कारज हित माँगिबो मोहि न आवे लाज॥

दूसरे के सामने हाथ पसारना !! कितनी घृणित बात है! कोई भी आदमी जिसकी आँख का पानी ढरक नहीं गया है नहीं करेगा। 'माँगन मरनो न बाप पै जो विधि राखे टेक।' इस कहावत को लोग दोहराते रहते हैं। परन्तु दुनिया में सब चीजों के अपवाद होते हैं। यहाँ तक कि ताजीरात हिन्द (Indian Penal Code) में भी बड़े-बड़े जुर्मों के अपवाद 'जेनरल एक्सप्शन्स' के नाम से दिये हुए हैं। उसी प्रकार इस माँगने के पाप का अपवाद है। साहित्यशास्त्र कहता है—

सम्यक्त्व दुर्गुणो ऽपि प्रियजने न स्व वरिष्णते।
इतरेषु स्वजना तो गुण न स्वगुणमन्यो गुणः॥

जो बात एक के मुख से गाली लगती है, वही बात प्रियजन के मुख से भली लगती है। उदाहरण के लिए, स्वयं भी तपस्वी के निकला हुआ धुआं दुर्गन्धी होता है और उसे भ्रम करते हैं। वही धुआं जब अगर की लकड़ी से निकलता है तो सुगन्धी होता है

और उस पुर बहुत है।

महाकवि भास्कर [illegible] ने भी कहा है—

> सदा मैं माँग, जो कुछ माँगना हो ऐ 'भास्कर'।
> कहीं जो डर है कि जिल्लत नहीं सवाल के बाद॥

इसका एक [illegible] भी है—

> जिसने कुछ एहसां किया इक बोझ सर पर रख दिया।
> सर से तिनका क्या उतारा, सर पे छप्पर रख दिया॥

भारवि ने कहा है कि 'न भूरिदानं विरहय्य सत्क्रियाम्'— बिना सत्क्रिया के दिया हुआ प्रचुर दान भी निरर्थक है। परन्तु सत्क्रिया भी कौन करे? प्राय लोग या तो अपना पिंड छुड़ाने के लिए देते हैं या अपने मन में [illegible] [illegible] लिए देते हैं कि [illegible] रहे और वक्त पर काम आवे।

कहा गया है कि—

> शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः।
> वक्ता दशसहस्रेषु दाता भवति वा न वा॥

(सौ में एक आदमी बहादुर होता है, हजार में एक आदमी वेद का पंडित, दस हजार में एक आदमी मंच पर खड़े होकर बोलने वाला होता है। परन्तु दान देने वाला मनुष्य होता है अथवा नहीं होता, इसमें सन्देह है।) [illegible] ने शायद इस सन्देह का निराकरण कर दिया। उन्होंने लिख दिया कि अगर [illegible] की मर्जी हो तो ऐसा भी हो सकता है कि माँगनेवाला केवल एक हो और देनेवाले सहस्रों हों।

> [illegible] हौसला [illegible] की [illegible] है।
> [illegible] है [illegible] देता है॥

[illegible] माँगने जो [illegible] उन्होंने [illegible] को [illegible] कर लिया और [illegible] मात्र बन गए।

गीता में महाराज ने मालवीयजी को श्रद्धांजलि अर्पण करते हुए लिखा है—

'मालवीयजी अपने मित्रों से कहा करते थे कि भगवान् विश्वनाथ से प्रार्थना करते हैं कि वे उन्हें विश्वविद्यालय के रूप में दर्शन दें और उनकी प्रार्थना सुनी गई।

मालवीयजी के अन्तःकरण से निकली हुई प्रार्थना में इतनी शक्ति थी कि—

कण-कण पत्थर उठे, देखा तेरी तस्वीर थी।
बन गए दिल की मेरी ममता की यह तासीर थी॥

परन्तु मुझे एक बात का आश्चर्य है। भोला बाबा हमें क्षमा करेंगे। इतना शक्ति-शाली इच्छाबल उनके सामने था। फिर उन्होंने शंकर ही से क्यों प्रार्थना की?

एक बार महाराज रघु को भी बहुत से धन की आवश्यकता पड़ गई थी। संक्षेप में कथा इस प्रकार है—

जिस समय रघु विश्वजित यज्ञ में अपना सर्वस्व दान किये बैठे थे उसी समय वरतन्तु के शिष्य कौत्स ऋषि गुरु-दक्षिणा देने के हेतु १४ करोड़ स्वर्णमुद्राएँ माँगने के लिए आये। रघु ने उनको मिट्टी के पात्र से आचमन दिया। मिट्टी का पात्र देखकर कौत्स का माथा ठनका और उनकी निराशा उनके चेहरे पर प्रतिबिम्बित हो गयी। रघु तुरन्त ताड़ गये और नैराश्य का कारण पूछा। कौत्स ने आने जाने का हेतु बताते हुए कहा—

तदन्यतस्तावदनन्यकार्यो
गुर्वर्थमाहर्तुमहं यतिष्ये।
स्वस्त्यस्तु ते निर्गलिताम्बुगर्भं
शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि॥

—रघुवंश—सर्ग—५—१७

(आपके पास तो कुछ नहीं है। स्वस्ति है अब किसी दूसरे

का द्वार खटखटाता है। क्योंकि चातक भी जलहीन बादलों से जल की पुकार नहीं करता। आपका कल्याण हो। अब मैं जाता हूँ।)

रघु ने उन्हें सान्त्वना दी और कहा कि आप चिन्ता न करें। मैं धन का प्रबन्ध करता हूँ। यह कह कर रघु ने अपनी सेना को कुबेर पर तुरन्त चढ़ाई करने की आज्ञा दे दी। युद्ध का डंका बजने लगा। कुबेर ने सुना। उनका नशा उतर गया। रात्रि ही में उन्होंने अयोध्या में सुवर्ण की वृष्टि की। बात की बात में कौत्स को १४ करोड़ मुद्रायें मिल गईं। वे चकित हो गये और बोले—

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]॥

कालिदास—रघुवंश—५-११

(धर्मनिष्ठ राजाओं को पृथ्वी उनकी इच्छा के अनुसार यदि धन दे तो कोई आश्चर्य नहीं है। परन्तु आपका प्रभाव देख कर सचमुच आश्चर्य होता है कि आपने जितना धन कहा उतना धन स्वर्ग से ले लिया।)

परन्तु महाराज रघु में और मालवीयजी में बड़ा अन्तर था। वे थे क्षत्रिय और ये थे ब्राह्मण।

भवभूति कहते हैं—

सिद्धं ह्येतद् वाचि वीर्यं द्विजानां
बाह्वोर्वीर्यं यत्तु तत् क्षत्रियाणाम्।

(यह बात तो सिद्ध है कि ब्राह्मणों में वाचिक बल होता है। बाहु की शक्ति तो क्षत्रियों में होती है।)

परन्तु इस संशय का निराकरण नहीं होता कि उन्होंने भगवान विश्वनाथ को क्यों चुना। (चार मिर्चें माँगने द्वार गये दरवेश)

कोटा के महाराज ने मालवीयजी को श्रद्धांजलि अर्पण करते हुए लिखा है—

'मालवीयजी अपने मित्रों से कहा करते थे कि भगवान् विश्व-नाथ से प्रार्थना करते हैं कि वे उन्हें विश्वविद्यालय के रूप में दर्शन दें और उनकी प्रार्थना सुनी गई।

मालवीयजी के अन्तःकरण से निकली हुई प्रार्थना में इतनी शक्ति थी कि—

दम-ब-दम गाते उठे वेदा तेरी तस्वीर थी।
बनवाए दिल की मेरी अदना सी यह तासीर थी॥

परन्तु मुझे एक बात का आश्चर्य है। भोला बाबा हमें क्षमा करेंगे। इतना शक्ति-शाली बैभमण्डल उनके सामने था। फिर उन्होंने शंकर ही से क्यों प्रार्थना की?

एक बार महाराज रघु को भी बहुत से धन की आवश्यकता पड़ गई थी। संक्षेप में कथा इस प्रकार है—

जिस समय रघु विश्वजित यज्ञ में अपना सर्वस्व दान किये बैठे थे उसी समय वरतन्तु के शिष्य कौत्स ऋषि गुरुदक्षिणा देने के हेतु १४ करोड़ स्वर्णमुद्राएँ मांगने के लिए आये। रघु ने उनको मिट्टी के पात्र से अभ्यागत किया। मिट्टी का पात्र देखकर कौत्स का माथा ठनका और उनकी निराशा उनके चेहरे पर प्रतिबिम्बित हो गयी। रघु तुरन्त ताड़ गये और नैराश्य का कारण पूछा। कौत्स ने अपने आने का हेतु बताते हुए कहा—

तदन्यतस्तावदनन्यकार्यो
गुर्वर्थमाहर्तुमहं यतिष्ये
स्वस्त्यस्तु ते निर्गलिताम्बुगर्भं
शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि॥

कालिदास—रघुवंश—५—१७

(आपके पास तो कुछ नहीं है इसलिए मैं अब किसी दूसरे

का द्वार खटखटाता हूँ। क्योंकि चातक भी जलहीन बादलों से जल की पुकार नहीं करता। आपका कल्याण हो। अब मैं जाता हूँ।)

रघु ने उन्हें सान्त्वना दी और कहा कि आप चिन्ता न करें। मैं धन का अभी प्रबन्ध करता हूँ। यह कह कर रघु ने अपनी सेना को कुबेर पर तुरन्त चढ़ाई करने की आज्ञा दे दी। युद्ध का डंका बजने लगा। कुबेर ने सुना। उसका नशा उतर गया। रात्रि ही में उन्होंने अयोध्या में सुवर्ण की वृष्टि की। बात की बात में कौत्स को १४ करोड़ मुद्रायें मिल गईं। वे चकित हो गए और बोले—

किमत्र चित्रं यदि कामसूर्भू वृत्ते
स्थितस्याधिपते प्रजानाम्।
अचिन्तनीयस्तु तव प्रभावो
मनीषितं द्यौरपि येन दुग्धा॥

कालिदास—रघुवंश—५–३३

(धर्मनिष्ठ राजाओं को पृथ्वी उनकी इच्छा के अनुसार यदि धन दे तो कोई आश्चर्य नहीं है। परन्तु आपका प्रभाव देख कर सचमुच आश्चर्य होता है कि आपने जितना धन कहा उतना धन स्वर्ग से ले लिया।)

परन्तु महाराज रघु में और मालवीयजी में बड़ा अन्तर था। वे थे क्षत्रिय और ये थे ब्राह्मण।

भवभूति कहते हैं—

सिद्ध ह्येतद् वाचिवीर्य द्विजानां
बाह्वो वीर्य यत् तत् क्षत्रियाणाम्।

(यह बात तो सिद्ध है कि ब्राह्मण में वाणि वीर्य होता है। बाहु की वीर्य तो क्षत्रियों में होता है।)

परन्तु इस संशय का निराकरण नहीं होता कि उन्होंने भगवान विश्वनाथ को क्यों चुना। ('आप मियाँ माँगत द्वार खड़े दरवेश')

भगवान् शंकर तो—

> स्वयं पंचमुखः पुत्रौ गजाननषडाननौ ।
> दिगम्बरः कथं कोऽपि अन्नपूर्णा न चेद् गृहे ॥

(शंकरजी के तो निज के पाँच मुख हैं। उनके एक पुत्र कार्तिकेय हैं जिनके ६ मुख हैं। दूसरे गणेश जिनके हाथी का मुख है और अपने पास सिवाय भू जी माँग के लंगोटी तक नहीं है। शंकरजी के लिये इतनी बड़ी गृहस्थी का चलाना असम्भव था यदि अन्नपूर्णा उनकी गृहिणी न होतीं।) सांसारिक गृहस्थ हम सब भी तरह याद रखें कि उनकी गृहस्थी का बेड़ा पार नहीं लग सकता यदि उनके घर में अन्नपूर्णा जैसी सहधर्मिणी नहीं है। परन्तु मालवीयजी बड़े चतुर थे। जब ही उन्होंने कहा—

> पर्यङ्कग्रन्थिबन्धद्विगुणितभुजगाश्लेषसंवीतजानो
> रन्तःप्राणावरोधव्युपरतसकलज्ञानरुद्धेन्द्रियस्य ।
> आत्मन्यात्मानमेव व्यपगतकरणं पश्यतस्तत्त्वदृष्ट्या
> शम्भोर्वः पातु शून्येक्षणघटितलयब्रह्मलग्नः समाधिः ॥

शून्य । शून्यकल्पित

(पर्यङ्क पर आसन लगाये हुए, सब इन्द्रियों को ज्ञान से बश में कर, अपने को अपनी ही अन्तरात्मा में सन्निविष्ट कर, अपनी तत्त्व-दृष्टि से (हमारे अभिलषित को) देखते हुए, भगवान् शंकर की ब्रह्म में लीन समाधि हमारी रक्षा करे।)

इतना पर्याप्त था। शंकरजी ने सम्पूर्ण भार अपने ऊपर ओढ़ लिया। उन्हीं दिनों मेरे गुरुदेव प्रातःस्मरणीय पंडित बालकृष्ण भट्ट के सुपुत्र स्वर्गीय पण्डित लक्ष्मीकान्त भट्ट ने एक बड़ा सुन्दर कार्टून बनाया था। जलहरी के ऊपर काशी विश्वनाथ स्थापित हैं। मालवीयजी अपना सम्पूर्ण वेश—पगड़ी दुपट्टा पायजामा धारण किये—शिव की पिंडी को अपनी बाहों में लपेट कर इतना से पकड़े हैं और जनता गगरों से घन भर भर पिंडी पर उड़ेल रही

है। उस समय काशी विश्वनाथ की निधि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की आकृति का अनुकरण कर रही थी। कार्टून का अन्तर्गत यही भाव था। मुझे क्या मालूम था कि आगे चल कर मैं मालवीयजी के संस्मरण लिखूँगा वर्ना मैं उसे जमा कर रखता और आज उसका उपयोग करता। खैर जो हुआ सो हुआ। मालवीयजी ने शंकरजी के झंडे के नीचे विश्वविद्यालय के लिये धन एकत्र करना आरम्भ कर दिया। यद्यपि इसका सम्पूर्ण भार उन्होंने विश्वनाथजी पर छोड़ रखा था तथापि अपने प्रयत्न में उन्होंने कोई और कसर उठा नहीं रखी थी।

मालवीयजी में भिक्षा माँगने में सफलता प्राप्त करने के लिये दो बहुत बड़े गुण थे। एक तो उनकी वेशभूषा दूसरी उनकी मधुर वाणी। इन दोनों का वार विरले ही सम्हाल सकते थे।

संस्कृत साहित्य इसका समर्थन भी करता है—

वस्त्रेण किं स्यादिति नैव वाच्यं
वस्त्रं सभायामुपकारहेतुः।
पीताम्बरं वीक्ष्य ददौ तनूजां
दिगम्बरं वीक्ष्य विषं समुद्रः॥

वस्त्र से क्या होता है ऐसा कभी न कहना चाहिये। जनसमूह में वस्त्र से बड़ा लाभ होता है। समुद्र-मन्थन से जब बहुत से पदार्थ निकले तो उन्हें लेने के लिये देवता लोग दौड़ पड़े। विष्णु भगवान् तो खूब सज-धज कर पीताम्बर पहिने हुए गये। समुद्र ने बड़े आदर से उन्हें लक्ष्मी दी। शंकरजी को नंग धड़ंग देखकर केवल विष देकर टरका दिया।

मधुर-वाणी तो मालवीयजी का हिस्सा था। उनकी पैतृक सम्पत्ति थी। इससे वे सभी लोगों को मोल ले लेते थे।

कागा काको धन हरे, कोयल काको देय।
मीठे वचन सुनाइके जग अपनो कर लेय॥

संस्कृतकार भी यही कहता है—

वाङ्माधुर्यान्नान्यदस्ति प्रियत्वं
वाक्पारुष्यादुपकारोऽपि नष्टः ।
किं तद्द्रव्यं कोकिलेनोपनीतं ।
को वा लोके गर्दभस्यापराधः ॥

(वाक् माधुरी से बढ़ कर संसार में और कोई चीज प्रिय नहीं होती । और कठोर वाणी से किया हुआ उपकार भी विफल हो जाता है । आप ही बतलायें कि कोयल ने किसी को कौन चीज दे दी और गदहे ने संसार का कौन सा अपराध किया ?)

एक बार मालवीयजी स्वर्गीय रायबहादुर सांवलदास कक्कड़ के पास चन्दा मांगने के लिए गये । सांवलदासजी प्रयाग के एक लब्धप्रतिष्ठ रईस थे । उन दिनों अंग्रेजी राज के उत्कर्ष का जमाना था । सांवलदासजी में अंग्रेजों के प्रति खैरख्वाही की मात्रा अत्यधिक थी । फिर भी वे चरित्रवान अपने सिद्धान्त के पक्के और भले लोग थे । शहर ही में मालवीयजी के पैत्रिक मकान के निकट उनका मकान था । बचपन में मालवीयजी उनसे पढ़ने जाया करते थे और उन्हें उस्ताद कहते थे । मालवीयजी ने अपने उस्ताद को भी नहीं बख्शा और यद्यपि सांवलदासजी फूंक-फूंक कर पांव रखने वाले व्यक्ति थे तथापि उनसे चन्दा मांगने गये । सांवलदासजी एक स्थान पर लिखते हैं—

"एक दिन जब मैं दफ्तर के काम से आ रहा था वे (मालवीयजी) मेरे पास (चन्दा के लिए) आये, मैं उनकी मनमोहनी वाणी से इतना बेबस हो गया कि मैंने बिना तनिक भी सोच-समझे उन्हें तुरन्त चेक दे दिया । बाद में मैं अक्सर सोचता था कि मुझे उस पर विचार करने के लिए कुछ समय लेना चाहिए था और इतनी जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए थी । परन्तु पण्डितजी के मांगने में कुछ ऐसी जादू की शक्ति थी जो रोकी नहीं जा सकती थी ।" सांव-

सदाशजी लिखते हैं—'फ़िसानाये-आज़ाद' का यह शेर उन पर पूरी तरह लागू होता है —

> मगर झुमाने का प्यारे ! शेर बयान में है।
> किसीकी चीज़ में आह तेरी ज़बान में है॥

सांवमदासजी ने उन्हें 'हिन्दुस्तान के सबसे सफल भिक्षुक' की उपाधि दी थी।

ऐसी कितनी ही उपाधियाँ कितने ही आदमियों ने मालवीयजी को दी हैं। वे जहाँ भी माँगने गये वहाँ प्रायः भिक्षा के साथ उन्हें यह उपाधि सौगात के रूप में मिली।

शुरू-शुरू में मालवीयजी इण्डियन प्रेस के भूतपूर्व प्रोप्राइटर स्वर्गीय चिन्तामणि घोष के पास झोली लेकर पहुँचे। घोष महोदय उदार-प्रकृति के तो थे ही उन्होंने विश्वविद्यालय सम्बन्धी, प्रास्पेक्टस बुलेटिन इत्यादि छापने का भार निःशुल्क अपने ऊपर ले लिया कुछ धन भी दिया और साथ में 'बेगर-जनरल' की उपाधि भी।

सन्ट जान्स कालेज के कैमिस्ट्री के प्राध्यापक श्री ए० सी० पाण्ड्या ने मालवीयजी को 'prince of beggars' 'भिक्षुकराज' की पदवी दी है। उनके सन् १९ के एक लेख का यही शीर्षक है। उसमें वे लिखते हैं—

......But not many realise that within only the last two decades we have given to the world two master-mendicants who have easily dwarfed all others even as our Himalaya has dwarfed all other mountains.

Undoubtedly one of the two is the Mahatmaji. There is only one other of whom we can think by his side. And that is our Pandit Malaviyajee. Like every true master of the

craft he has his own style his technique. He almost disdains small fishing. He would not worry small men but would take care to get in his net Rajas and Maharajas, merchant princes and Marwari millionaires.

His manner and modus operandi are necessarily unlike those of the half-clad Fakir. The U. P. mendicant must naturally be more courtly, more polished, even magnificent in his appeals. His scale is admirably sustained by his spotless white clothing, by a noble figure and a soft captivating voice.

(परन्तु बहुतों ने इसका एहसास नहीं किया है कि पिछले २० वर्षों के भीतर इन लोगों ने संसार को दो सर्वोत्कृष्ट भिक्षुक दिये हैं, जिनके सामने और सब बहुत छोटे जचते हैं जिस प्रकार हिमालय के सामने सब पहाड़ बौने से लगते हैं। निस्सन्देह उनमें से एक महात्माजी हैं। हमारे ध्यान में केवल एक ही व्यक्ति और है जो उनके बगल में रखा जा सकता है। और वे हैं पण्डित मालवीयजी। अपनी कला के आचार्य की भाँति उनका अपना एक ढंग था, अपनी एक निराली पद्धति। वे छोटे आदमियों को परेशान नहीं करते थे पर इसके बजाय हमेशा ध्यान रखते थे कि राजे महाराजे व्यापारिक जगत्-राज और करोड़पति उनके जाल में फँसें।

जाहिर सी बात है कि उनका ढंग और कार्यप्रणाली अर्धनग्न फकीर से भिन्न होगी। उत्तर प्रदेश के भिक्षुक के लिये यह स्वाभाविक था कि वह भिक्षा माँगने में अधिक शिष्ट और अधिक परिमार्जित हो, यहाँ तक कि अधिक शानदार भी हो। उनका यह ढंग उनके

नितान्त निर्मल श्वेत वस्त्र, भव्य शरीर और मीठी मनोहारिणी वाणी से बड़ी खूबी से सन्तुलित था।)

एक दिन की बात है। मालवीयजी नियमानुसार अपने कमरे में तेल मालिश करा रहे थे। वे कुछ चिन्तित से दिख पड़ते थे। पास में बैठे हुए एक मित्र ने चिन्ता का कारण पूछा। मालवीयजी ने कहा, मुझे एक लाख रुपया आज ही चाहिए। इंजीनियरिंग कालेज के प्रिन्सिपल किंग साहब की माँग है। परन्तु रुपया नहीं है। सोचता हूँ कहाँ से जुटाऊँ। इतने में तत्कालीन प्रो-वाइस चांसलर आचार्य ध्रुवजी आये और मालवीयजी के हाथ में एक तार रख दिया। वह तार महाराज पटियाला का था। उसमें लिखा था कि महाराज पाँच लाख रुपया इंजीनियरिंग कालेज के लिए दान देते हैं। तार पढ़ कर मालवीयजी का कण्ठ भर आया और आँखों में आँसू आ गये। बोले 'मेरे लिए भगवान् को यह कष्ट करना पड़ा' और वह तार किंग साहब के पास भेज दिया।

एक बार राजा बलदेवदास बिड़ला ने कहा कि वे गङ्गाजी में बैठ कर कुछ दान किया चाहते हैं पर शर्त यह है कि गङ्गाजी में बैठ कर कोई ब्राह्मण उसे ले। मालवीयजी को इसकी खबर लग गई। वे तुरन्त तैयार हो गये। मालवीयजी के साथियों ने इसका बड़ा विरोध किया। काशी के पण्डितों ने आपस में बैठकर मालवीयजी को भला-बुरा कहा। उन्हें विमुख करने के लिए उनके पास लोगों का ताँता बंध गया। परन्तु मालवीयजी टस-से मस न हुए। बिड़लाजी ने जब सुना कि मालवीयजी गङ्गाजी में बैठ कर दान लेंगे तो अवाक् रह गये। परन्तु मुँह से उनके बात निकल चुकी थी। उन्होंने यजमान के अनुरूप मन का आसार कर दिया। राजा और भिक्षुक दोनों ही गङ्गा में बैठे। दान लेने के लिए मालवीयजी उनके सामने आये। ऐसा लगता था जैसे विष्णु भगवान वामन का रूप धर कर राजा बलि के सामने खड़े हों। राजा बलदेवदासजी ने

[illegible] मङ्कर मालवीयजी के हाथ में चेक रख दी। ठीक रकम तो याद नहीं परन्तु लाख से ऊपर अवश्य थी। मालवीयजी ने राजा साहब को आशीर्वाद दिया और बिड़लाजी से मिले हुए धन पर थोड़ा सा अपना धन मिलाकर उसी समय गङ्गाजी के भीतर विश्वविद्यालय के नाम संकल्प कर दिया। उपस्थित व्यक्तियों के मुख से सहसा साधु साधु निकल पड़ा।

राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण जी गुप्त ने ठीक ही कहा है—

भारत को अभिमान तुम्हारा तुम भारत के अभिमानी,
पूज्य पुरोहित थे हम सब के रहे सदैव समाधानी।
तुम्हें पुराण व्यासक कहते हैं किन्तु कौन तुमसा ज्ञानी?
प्रणत प्रिया-पात्र तुम्हारा है ब्राह्मण-ब्रह्मचारी!
स्वर्ग मदन-मोहन की तुममें तन्मयता है क्या नई
कल्याणी काशी जनता के हित में पूरी रचा गई।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का वातावरण

जोश रंगीनी का आज क्यों इसी को देखकर;
ज़र्रे-ज़र्रे में किस्से-मजनू की तस्वीर है॥

यदि रङ्गीनियाँ कभी आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भीतर आवें तो जरा सँभलकर रङ्गियेगा क्योंकि उस जमीन के कण-कण में मालवीयजी के अरमान बिखर पड़े हैं। विश्वविद्यालय के मध्य प्रवेशद्वार के सामने मालवीयजी की विशाल मूर्ति ऐसी लगती है जैसे साक्षात् महामनाजी खड़े हों कि—

[illegible] मनुजेषु पूर्णनिचयाः [illegible] विद्यासु प्र[illegible]
[illegible] प्रतिरोध्य [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]॥

मेरा शरीर पञ्चत्व को प्राप्त हो जाय और सब तत्त्व पृथ्वी [illegible]

तथो वायुराकाशमेव च अपने अपने अंशों में मिल जायँ परन्तु विधाता से नतमस्तक होकर एक वर यह माँगूँगा कि मेरे शरीर का जल-तत्त्व विश्वविद्यालय के कूपों के जल में मिल जाय मेरा तेज-तत्त्व यहाँ के दर्शकों की ज्योत्स्ना में मेरा पृथ्वी-तत्त्व यहाँ के मार्गों के जमीन में मेरा आकाश-तत्त्व विश्वविद्यालय के ऊपर आकाश तल में और मेरा वायु तत्त्व यहाँ बहने-वाले वायु में मिल जाय।

इस प्रकार आत्म-समर्पण करनेवाले एक महान् पुरुष की यह विश्वविद्यालय विभूति है। मालवीयजी के समय का विश्वविद्यालय विविध विद्याओं एवं कलाओं का केन्द्र होते हुए एक बहुत बड़ा धार्मिक क्षेत्र था। वह छात्रों को लोक-कल्याण के लिए आदर्श मनुष्य बनाने की एक मशीन थी। इस विराट् मशीन को बनाने वाला वहीं एक छोटे से मकान में भगवान् विश्वनाथ का प्रतिनिधि-स्वरूप होकर मशीन का संचालन करता रहता था। सन् १९३५ में मालवीयजी ने विश्वविद्यालय के हाल में भाषण देते हुए अध्यापकों और छात्रों से कहा था—

'आप लोग जानते हैं कि हिन्दू यूनिवर्सिटी के इंजिनियरिंग कालेज में जो पावर हाउस है और इस पवित्र नगरी के एक तरफ बना हुआ है उसका सम्बन्ध सब विशाल भवनों कालेजों छात्रावासों और भवनों से है। उससे सब कमरों में प्रकाश जाता है। भिन्न-भिन्न प्रकार के यन्त्र चलते हैं पंखे चलते हैं, कुओं से पानी निकलता है और सारे विभाग में अनेक कार्य होते रहते हैं। इस सबका करनेवाला यही एक पावर-हाउस है। उसी तरह इस विचित्र सृष्टि का सब एक परमात्मा किया करता है। वह सब करता हुआ छुपा है, पर वही सब देखता है। हिमालय की सबसे ऊँची चोटी कैलाश पर और समुद्र के गम्भीर तल में उसकी लीला का नृत्य होता रहता है   उसी दिगम्बर विश्वनाथ की कृपा से हम लोग इस भूमि में उसका गुणगान कर रहे हैं। उसकी

कृपा से विश्वविद्यालय का प्रादुर्भाव हुआ है। यही अपना स्वरूप बना रहा है। सन् १६०४ में इसके बनाने का विचार हुआ। देश भर में अपील की गयी। जनता और राजा महाराजाओं ने सहायता दी। सन् १६१४ में पन्द्रह लाख एकत्र हुए। सन्ट्रल हिन्दू कॉलेज कामाछा (काशी) में बना। अट्ठारह वर्ष की अवधि में विश्वविद्यालय नगरी की रचना हो गयी और होती जाती है। डेढ़ करोड़ रुपये मिल चुके। उसी परमात्मा से प्रार्थना है कि इसकी पूर्ण रचना कर दे। विश्वनाथ प्रार्थना सुनेंगे और मनोरथ पूर्ण होगा। इसी भाषण में आगे चलकर मालवीयजी ने छात्रों को बताया है कि छात्रों की दिनचर्या क्या होनी चाहिए।

विश्वविद्यालय में निवास करने का पहिला कर्तव्य यह है कि व्यायाम करके शरीर को दृढ़ बनावें। पहिले स्वास्थ्य सुधारें, फिर विद्या पढ़ें। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन करें तो जीवन का लाभ उठा सकते हैं। नित्य सबेरे-शाम नियम से व्यायाम करें। शाम को खेल मैदान में विचरें। जल्दी भोजन करें और नियम से नित्य अध्ययन करें। धार्मिक उत्सवों एकादशी कथा गीता-प्रवचन आदि में उपस्थित रहें और विद्वानों का उपदेश लें, उनसे अनुभव प्राप्त करें और आशीर्वाद लें। अपनी रक्षा आप करें। समय की पाबन्दी रक्खें। व्यर्थ समय न नष्ट करें।

अपनी पचहत्तरवीं वर्षगाँठ के अवसर पर मालवीयजी ने छात्रों को उपदेश दिया था उसका कुछ अंश उद्धृत करता हूँ—

प्रत्येक मनुष्य को ऐसा कोई काम न करना चाहिए जो वह माता से न कह सके। ऐसा नियम मैंने लिया था। इस नियम से मैं कई पापों से बचा, मुझे शक्ति मिली और मेरा जीवन उज्ज्वल और निर्मल ज्योति से उज्ज्वल होता गया। ... यदि पाप किया है तो प्रायश्चित्त कर ले। आगे फिर पाप न करे। सबेरे और शाम सन्ध्या कर ईश्वर से प्रार्थना कर ले। जैसे स्नान से शरीर शुद्ध

होता है वैसा ही भजन से हृदय। प्रथम पहिला धर्म आर और पर मात्मा का स्मरण, दूसरा काम माता-पिता और गुरु की सेवा, तीसरा काम प्राणिमात्र का साम, चौथा स्वामिक और सब जगत् की सेवा का भार स।

धर्मेण ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्यात्मत्यागेन सम्मानार्ह सदा भव॥

सत्य बोल ब्रह्मचर्य व्रत पालन करें व्यायाम करे विद्या पढ़ें, देश-सेवा करे और लोक म सम्मान प्राप्त कर। यह अन्तिम उपदेश हर एक छात्र को हमेशा स्मरण रखना चाहिए और उसके अनुसार आजीवन आचरण करना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है।'

उपर्युक्त उद्धरणों स आपको पता चलगा कि मालवीयजी के समय में विश्वविद्यालय का क्या वातावरण था और किस प्रकार वे चाहते थे कि वहाँ के विद्यार्थी बनें और करें।

जिस प्रकार 'सागर सागरोपम' सागर की उपमा सागर ही म दी जा सकती है, उसी प्रकार काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय की उपमा काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय म ही दी जा सकती है। यह 'विस्तीर्णो योजनशतं रुद्रमध्यर्धमात्रता नगरी सम्प्रमेय' है। जिस तरह विशाल स्थान जितने ही बड़े-बड़े विशाल भवन हजार-हजार विद्यार्थियों स भरे होमस्टिल अलग छात्रावास और हर एक भवन और छात्रावास के सामने खेलकूद के लिए विस्तीर्ण मैदान जिन पर प्रायः अन्तप्रान्तीय क्रिकेट फुटबाल और हाकी की मैचें हुआ करती हैं छात्रावासों के मैकड़ों आराम दिखाई पड़त हैं और उन सबों की स्वास्थ्य-रक्षा विशुद्ध मालवीय है। और मालवीयजी के समय में व सब भवन गरुड रंग स पुते थे। उन्हें देखने से ही मन हृदय में एक धार्मिक भावना उत्पन्न होती थी। मालवीयजी के देहावसान के बाद कुछ एक भी छात्रावास और प्राध्यापकों के निवास बने हैं जिनका स्वास्थ्य पुराने भवनों म

भेद नहीं लगता और ये हलके-पीले रंग के पुते हैं। ये आँखों में खटकते हैं। जिस विद्यालय में बाइस मील सड़कें और इतनी अधिक संख्या में विशाल भवन हों उसे विद्यालय कहें या नगरी। मालवीयजी ने अपने भाषण में ठीक ही कहा था अट्ठारह वर्ष की अवधि में विश्वविद्यालय नगरी की रचना हो गयी और होती जाती है। यद्यपि यह विद्यालय चार मील की परिधि में है फिर भी आगे भिन्न भवनों के निर्माण की आवश्यकता पड़ने पर यह स्थान संकुचित लगता है। सन् ४१ में जब मैं वहाँ एक्जुकेटिव आफिसर था तो और भूमि लेने की बात चल रही थी। उसी समय शाकुन्तल की यह बात याद आयी जिसमें शकुन्तला अनुसूया से शिकायत करती है कि प्रियंवदा ने उसकी चोली कस कर बाँधी है—शकुन्तला कहती है हला अनसूये! अति पिनद्धेन वल्कलेन प्रियंवदया दृढं पीडितास्मि तत् शिथिलय तावदेनम्

(सखी अनसूया! प्रियंवदा ने इस वल्कल को बहुत ज्यादा कस दिया है। इससे मुझे पीड़ा पहुँच रही है। सो तुम इसे ढीला कर दो) इस पर प्रियंवदा मुसकराकर कहती है—

'अत्र तावत् पयोधरविस्तारयितृकम् आत्मनो यौवनारम्भं उपालभस्व, मां किमुपालभसे।

(तुम अपने बढ़ते हुए यौवन को उलाहना दो जो तुम्हारे स्तनों का बराबर विस्तार करता जा रहा है। मेरी शिकायत क्यों करती हो)।

और विश्वविद्यालय के लिए यह यौवन था ऋषि-कल्प एक महामानव जिनकी पवित्र कल्पना और भगवान् विश्वनाथ की कृपा से यह दिनदिन इस प्रकार क्रमशः बड़ा होता जा रहा था जैसे—

[illegible] ।
[illegible] ॥

माघ-शिशुपालवध १-१५

[द्वारिकापुरी में (यहाँ मालवीयजी के मस्तिष्क में) भगवान् कृष्ण की सभा (यहाँ इतने विशाल भवन) इस प्रकार निकली जैसे अरविन्दनाभ विष्णु के अङ्ग से सम्पूर्ण सृष्टि भगवान् शंकर के जटाजूट से मंदाकिनी का अथाह प्रवाह और ब्रह्मा के मुख से सम्पूर्ण श्रुतियाँ]

इन तमाम भवनों के निर्माण करने का ध्यान भी बड़ा विचित्र है। यह त्रिकोण मयूर पंख के सदृश है। एक कोने पर बड़ा एम्फ़ीथियेटर जिसके विशाल प्रांगण में वार्षिक कानवोकेशन एम० सी० सी० का परेड तथा बड़ी बड़ी सभाएँ हुआ करती हैं। इस केन्द्र से सामने फिर छात्रावास और सन्निकट प्राध्यापकों के रहने के मकान अर्धचन्द्राकार श्रेणी में बने हुए हैं। और इस पाटलिपुत्र के समान विशाल नगरी में मुख्य प्रवेश-द्वार से थोड़ी ही दूर पर मालवीयजी का एक छोटा सा निवास-स्थान प्रहरी के समान खड़ा है। सादगी का एक नमूना है। न उसमें कोई शानदार फर्नीचर है और न सैनिटरी फ़िटिंग। एक कमरे में मालवीयजी के सोने के लिए चारपायी और बाहर काम करने के लिए तख्त बिछा रहता था। भीतर प्रांगण में तुलसी की झाड़ और कोने में रसोईघर और निकट में हवन करने के साधन। बस उस भवन को देखकर चाणक्य के भवन की याद बरबस आ जाती है जिसका चित्र विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस में खींचा है—

उपलशकलमेतद् भेदकं गोमयानां
वटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तूपमेतत्।
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभि-
र्विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम्॥

(एक स्थान पर उपलों पाथने के लिए पत्थर और टुकड़ा रखा है। एक दूसरे स्थान पर छात्रों के साथ बर्हिपात्र का अम्बार लगा हुआ है। जीर्णशीर्ण मकान जिसकी छत पर दब के

टूटी हुई लकड़ी सुखाने के लिए डाल दी गयी है और जिसके बोझ के कारण उस कुटी की मुँडेर झुक गयी है।)

यह निवासस्थान था मौर्य-सम्राट् के प्रधान मंत्री का जिसमें बड़े-बड़े राज्यों के तख्ता उलट देने और एक दूसरे राज्य के स्थापन तक निर्माण करने की शक्ति थी। उसको अपनी बुद्धि पर गर्व था। एक अवसर पर चाणक्य कहता है—

> ये याताः किमपि प्रधार्य हृदये पूर्वं गता एव ते
> ये तिष्ठन्ति भवन्तु तेऽपि गमने कामं प्रकामोद्यमाः।
> एका केवलमर्थसाधनविधौ सेनाशतेभ्योऽधिका
> नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम॥

(चाणक्य से जब यह कहा गया कि सभा के कुछ सदस्य पद त्याग कर चले गये तो वे बोले — जो लोग कुछ मन में ठानकर चले गये उन्हें चले जाने दो। जो रहना चाहते हैं वे प्रसन्नता से ठहरें और वे भी यदि हमें छोड़कर जाना चाहते हैं तो अभी ही चले जायँ। केवल मेरी बुद्धि मुझे छोड़कर न जाय। यह बुद्धि जो कार्यसाधन में सैकड़ों सेना से भी अधिक शक्ति रखती है और जिसकी शक्ति एवं महिमा की परीक्षा नन्दवंश के उखाड़ फेंकने में हो चुकी है।)

इसी प्रकार का गौरव रखनेवाले [illegible] उस छोटे से मकान में रहते थे। यहीं विश्वविद्यालय का 'पावर हाउस' था। विश्वविद्यालय की विस्तीर्ण भूमि पर जहाँ पहिले कुछ भाग में घोर जंगल और झाड़ियाँ [illegible] सियारों के समागम [illegible] फैलने न जाते थे वहाँ भगवान् विश्वनाथ की कृपा से प्रातःकाल [illegible] पंडित ओंकारनाथ ठाकुर तथा उनके शिष्यों की मधुर स्वरलहरी से अब प्रातःकाल लोगों की आँखें खुलने लगीं। जितने भी विश्वविद्यालय हैं जो बड़े-बड़े नगरों में

स्पित है परन्तु यह नगर के बिलकुल बाहर।
मेहर बह है, ख़ाक के ज़र्रों को कर दे जग निसार।
ऊँची ऊँची चोटियों पर पुर बरसाने से क्या॥

पंडित सीताराम चतुर्वेदीजी लिखते हैं—

'मालवीयजी का बंगला एक सराय है। हर तरह के लोग वहाँ आपको देखने में मिलेंगे। उनका दरबार सबके लिए खुला रहता है। इससे होता यह कि हर-एक ऐरा-गैरा नत्थू खैरा वहाँ पहुँच जाता है और उनका समय व्यर्थ नष्ट करता है। वे संकोच में आकर किसी से जाने को नहीं कहते थे।

गांधीजी का क्रम इससे बिलकुल भिन्न था। वे पहिले ही से कह देते थे कि अमुक व्यक्ति को वह कितना समय देंगे और घड़ी सामने रखकर बात करते थे। जब निर्धारित समय समाप्त हो जाता था तो वे आगन्तुक से यह तो नहीं कहते थे कि अवधि समाप्त हो गयी अब तुम जाव। वे उस संगीत से यह कहकर मौन हो जाते थे। तो एक मिनट बाद बेचारा आगन्तुक स्वयं ही उठ जाता था।

अच्छी हालत में तो सभ हुए नहीं पर मालवीयजी जब बीमार पड़ते हैं तो उनकी दशा देखकर दया आती है। न मालूम कहाँ-कहाँ से लोग अपना पचड़ा लेकर आते हैं और मालवीयजी बिस्तर पर पड़े-पड़े उनकी गाथा सुनते जाते हैं। पिछले साल जब बीमार पड़े तो डाक्टरों ने बड़ा डर कर उनका लिया और सलाह दी कि आपको किसी से मिलना न चाहिए लोगों का आना बन्द कर देना चाहिए, कम बोलना चाहिए इत्यादि। सब सुन कर मालवीयजी बोले—"वह सुझे न ? देखा तक शायर ने कहा है—

नासेहा ! बस दे नसीहत जो मेरा दस्तूर है।
मैं उसे समझूँ हूँ दुश्मन जो मुझे समझाता है।
दस्तरस क्यों की पुरानी आदत सदा दुश्मन जब छोड़ने को

बहुत हो। बस इस एक शेर में सारे जीवन की कहानी भरी है।

एक बार उनके छोटे पुत्र गोविन्दजी ने भी उनसे कहा था कि आपको लोग बहुत परेशान करते हैं। मैं सब लोगों को रोक देता हूँ। इस पर मालवीयजी बोले "जब तक मैं इस घर में हूँ तब तक यह नहीं हो सकता।" इस मुझे सरकार के कारण न जाने कितने खुफिया पुलिसवाले भी उनके बंगले के चारों ओर मंडराया करते हैं पर कांच की गच पर चोंच मारेगी तो अपना ही मुंह तोड़ेगी। चतुर्वेदीजी का यह विवरण मालवीयजी के निवासस्थान एवं उनके हृदय का एक सजीव चित्रण है।

गांधीजी ने एक स्थान पर लिखा है—

पण्डित मालवीयजी ने मुझे अपने ही कमरे में शरण दी। उनके जीवन की सादगी की एक झांकी मुझे हिन्दू विश्वविद्यालय के शिलान्यास के अवसर पर मिली। परन्तु इस अवसर पर उनके साथ एक ही कमरे में होने के कारण मैंने अत्यन्त निकट से उनकी नित्य की जीवनचर्या देखी थी और देखकर मैं मंत्रमुग्ध हो गया। उनका स्थान सभी वर्गों के लिए एक धर्मशाला की भांति था। वह इतना ठसाठस भरा था कि एक कोने से दूसरे कोने तक जाना आपके लिए बहुत कठिन था। उसमें सब समय के लिए किसी भी अभ्यागत के लिए जो आने को अपनी इच्छानुसार उनका समय लेने का अधिकारी समझता था आने की कोई मनाही न थी। इस धर्मशाला के एक कोने में बड़े सम्मान से मेरी खटिया बिछी थी। इस भांति मुझे मालवीयजी से नित्य वार्तालाप करने का सुयोग मिला। वह मुझे भिन्न धर्म और भिन्न विचारों के होते हुए भी बड़े भाई की भांति समझाते थे।

एक दिन एक जिज्ञासु मालवीयजी से मिलने आये। वहाँ तो हर समय लोग मालवीयजी को घेरे रहते थे। आगन्तुक विद्वान् बहुत देर तक संकोचवश बाहर ही खड़े रह गये। जब न रहा गया

तो उन्होंने एक पुर्जे पर यह लिखकर कि 'समुद्रे शास्त्रकल्लोल स्नातुमिच्छति मूर्खधी' (यह मूर्ख विक्षुब्ध समुद्र में स्नान करने की इच्छा करता है) मालवीयजी तुरन्त समझ गये और बाहर आकर हँसते हुए बोले क्षमा कीजियेगा आपको विलम्ब हो गया। यह थी हुई मालवीयजी के लोक-व्यवहार और घर के वातावरण की बात। वे जिज्ञासु थे। वे सब की बात ध्यान से सुनते थे। शायद कोई अच्छी बात सुनने को मिले। इस बात में वे इस नीति का अनुसरण करते थे—

न कश्चिदवमन्येत सर्वस्य शृणुयान्मतम्।
बालस्याप्यर्थवद्वाक्यमुपयुञ्जीत पण्डितः॥

(किसी की सलाह की अवहेलना न करे। सबके मत को ध्यान से सुने। बालक भी यदि सारगर्भित बात कहे तो उसका आदर करे)

वे जानते थे कि—

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः।

भवभूति

(गुणीजनों में गुण ही पूज्य होता है। वह व्यक्ति स्त्री है अथवा पुरुष उम्र में छोटा है या बड़ा यह सब नहीं देखा जाता।)

अब मालवीयजी का व्यवहार छात्रों के साथ कैसा होता था उसे थोड़े में कहूँगा। यों तो इसके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं पर दो तीन ही पर्याप्त होंगे।

मालवीयजी का प्रतिदिन यह नियम था कि वे नित्यकर्म से निवृत्त होकर कभी आचार्य ध्रुवजी के साथ और कभी अकेले ही किसी छात्रावास या कालेज में जाकर निरीक्षण करते थे। छात्रावास में लड़कों का कुशल-मंगल पूछते थे। पूछते थे व्यायाम करते हो या नहीं, दूध पीते हो या नहीं, सन्ध्या-वन्दन करते हो या नहीं इत्यादि। एक दिन एक छात्रावास में जा रहे थे कि रास्ते में एक

लड़का आता हुआ दिखलाई पड़ा। मालवीयजी ने उसे रोककर पूछा कि दूध पीते हो कि नहीं? उसने उत्तर दिया कि वह बहुत गरीब है, दूध पीने के लिए पैसे कहाँ से पावे। मालवीयजी जब घर लौटे तो उन्होंने उस लड़के के लिए दूध का प्रबन्ध करा दिया। ऐसा प्रायः आये दिन हुआ करता थी।

एक बार रात्रि में किसी छात्रावास में गये। एक संस्कृत का विद्यार्थी दमचूल्हे पर दूध गरम कर रहा था। मालवीयजी उस पर नाराज हुए और कहा कि स्पष्ट सम्बन्धी कमरों में और कमरे के भीतर दमचूल्हा जलाना नियम के विरुद्ध है। यह कहकर उन्होंने उसके ऊपर ५) रुपया जुर्माना किया। परन्तु घर आकर मालवीयजी ने उसके पास ५) रु० भेज दिया कि वह उस जुर्माने को जमा कर दे और फिर भविष्य में ऐसा अपराध न करे।

[illegible]

जयकुमार नाम का एक मेरा छात्र आचार्य अन्तिम वर्ष में पढ़ता था। छात्र बुद्धिमान् तथा सुन्दर और बलिष्ठ था। उसके पिता का स्वर्गवास हो गया। अन्त्येष्टि के लिए घर गया। आने में विलम्ब हुआ इसलिए उपस्थिति पूरी न हो सकी। फलतः परीक्षा में प्रविष्ट होने की सम्भावना नहीं थी। मैंने कहा कि एक प्रार्थना-पत्र लिख कर मालवीयजी के पास जाओ और वहाँ जाकर

[illegible]

[द्रौपदी की रक्षा करने में जो शीघ्रता आपकी थी, जो तत्परता गजेन्द्र मोक्ष में थी, हे करुणानाथ! वह तुम्हारी जल्दी (हमारे विषय में) कहाँ चली गयी?]

यह श्लोक रोकर पढ़ दिया। उसका काम हो गया। सुनकर मालवीयजी के नेत्रों में भी आँसू आ गये और लिख दिया 'हाँ' दी एडमिट। उसी समय से मेरा पं० मालवीयजी दोनों

मिलने गये। छात्र को देखकर महाराज ने पंडितजी से कहा कि यह प्रार्थना-पत्र रजिस्ट्रार के यहाँ मत भेजो। इससे व्यवस्था में बाधा होती है। अध्यक्ष बड़ा बुरा मानेगा। मेरे मन में हुआ कि हम लोगों के आने से यह बना-बनाया काम बिगड़ रहा है। मैंने मालवीयजी महाराज से कहा कि महाराज! विधाता का लेख कटता नहीं है। मालवीयजी ने कहा कि विधाता का लेख तो नहीं कटता है। मैंने कहा तब इसे आपका लेख कटेगा? उन्होंने कहा मैं क्या विधाता हूँ। मैंने कहा विश्वविद्यालय के तो आप विधाता ही हैं। इस पर पं० काशीप्रसादजी ने कहा—आपको यहाँ विधाता पुरुष कहते ही हैं। इस पर मालवीयजी हँसने लगे और बोले कि पंडितों का कहना मानना चाहिए भेज दो। उस वर्ष वह छात्र परीक्षा में प्रविष्ट हो गया और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण भी हो गया। बात तो यह है कि जयकुमार के पिता उस बचपन में छोड़कर स्वर्ग चले गये परन्तु मालवीयजी "स पिता पितरस्तासां केवलं जन्म हेतवः" वास्तव में तो मालवीयजी उसके पिता थे। उसके असली पिता ने तो केवल जन्म दिया था।

अध्यापकों और कर्मचारियों के प्रति व्यवहार

किसी भी शिक्षण संस्था का सुचारु रूप से संचालन करना कोई हँसी-खेल नहीं है। इसके लिए ऐसे प्रधान की आवश्यकता होती है जिसमें धर्म के प्रति निष्ठा, अध्यापकों के प्रति आदर, छात्रों के प्रति प्यार और कर्मचारियों के प्रति सहानुभूति और उनके पेट का ख्याल हो। ऐसा प्रधान जिस काम का—

जिसे एक में बात-चला न सकी,
जिसे लेख में लोक-चला न सका।

अन्तिम मुगल सम्राट् बहादुरशाह 'ज़फ़र'

विश्वविद्यालयों में इस देश के विभिन्न प्रान्तों में अध्यापन के

हेतु शिक्षालय आते हैं, विभिन्न प्रान्तों से छात्र और छात्राएं आती हैं। ये सब विभिन्न वातावरणों में पले हुए रहते हैं। उनके अलग अलग स्वभाव और मान्यताएं होती हैं। वे भेड़ बकरों का गिरोह नहीं है कि उनके प्रति दमन-नीति का व्यवहार किया जाय। वे कैदी नहीं हैं। वे विश्वविद्यालयों में विद्यादान देने और लेने के लिए आते हैं। विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस के भरतवाक्य में बतला दिया है कि प्रधान अथवा शासक कैसा होना चाहिए—

"धीमान पातु पृथ्वी प्रजाभिर्विरोधी पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः।

(गुणीजन की पृथ्वी की (संस्था की) रक्षा करें और शासक धर्मनिष्ठ हों और विद्यार्थियों का शासन करें, दमन नहीं)।

शासन परम्परा उलटा है जब शासक लोग

"विद्यावयस्तत्त्वमथ विमतं न प्रणमन्ति देवतान्न
मानयन्ति मान्यान् 'आत्मप्रभाविरमव' इत्युत्पन्ति
सविवेकेनैव कुप्यन्ति हितवादिने

बाणभट्ट-कादम्बरी शुकनासोपदेश

(मूर्ख मूर्ख बहुज्ञान पाकर अभिमान के मद में चूर देवताओं को नमस्कार नहीं करते, आदरणीय जनों का आदर नहीं करते, अपनी बुद्धि की हेठी होती है यह समझकर जाने गुणानुरागी की अवहेलना करते हैं और हित की बात करने वालों पर कोप करते हैं।)

यदि किसी शिक्षण संस्था का प्रधान ऐसा हुआ तो वह किसी काम का नहीं। जिस संस्था का ऐसा प्रधान हो, उसका भगवान् ही मालिक है। जब कभी किसी विद्यालय में उपद्रव होती है तो बात की तह तक जाने पर आप पायेंगे कि प्रायः—मैं सर्वदा नहीं कहूंगा—शासक वर्ग की शासन-प्रणाली में दोष आ जाने से होती है। मास्टर हरगोविन्दजी ने बड़े पते की बात कही—

इस तर्क-जंजाल के पीछे ये पड़े क्यों ?
इतना ही बस इसका जवाब—आप लड़े क्यों ?

मैं कोई शिक्षा शास्त्री नहीं हूँ परन्तु मेरी यह धारणा है कि जब तक शासक में धर्मनिष्ठा, मार्दव और पर्यवेक्षण न होगा यह मसला हल ही नहीं हो सकता। और फिर प्रधान को भी तो अपनी इज्जत का ख्याल होना ही चाहिए—

इन्सान को [illegible] अपना भी है जरूरी।
वह मर चुका कि जिसको परवा न हो कफन की॥

अकबर इलाहाबादी

मालवीयजी का दृष्टिकोण एवं उनकी कार्य प्रणाली बिलकुल भिन्न थी। वे सबके साथ समान भाव से व्यवहार करते थे अध्यापक हो या छात्र, दफ्तर का बाबू हो या चतुर्थ श्रेणी का नौकर, इस प्रान्त का रहने वाला हो या अन्य किसी प्रान्त या वर्ग का, उसके राजनीतिक विचार एवं मान्यताएँ चाहे कुछ भी हों उन सबको अपने व्यवहार से अपने मोह में बाँध लेना मालवीयजी का ही हिस्सा था। और शायद वह उन्हीं से खत्म भी हो गया। सभी मालवीयजी को समान भाव से पूजते थे।

प्राध्यापकों के प्रति मालवीयजी का कैसा व्यवहार था इसे कहने के पहिले दफ्तर के कर्मचारियों के प्रति उनका कैसा व्यवहार था उसका एक विचित्र संस्मरण आपके सामने उपस्थित करता हूँ।

उन दिनों मेरे ज्येष्ठ भ्राता स्वर्गीय पण्डित [illegible]नाथ व्यास विश्वविद्यालय के [illegible] कालेज के प्रिन्सिपल थे। मालवीयजी उनकी योग्यता एवं गुणों से आकृष्ट होकर उन्हें प्रयाग से काशी ले गये थे। उन्हीं दिनों मेरे एक आत्मीय का पुत्र वहाँ के एकाउन्ट विभाग में प्राविडेंट फंड क्लर्क था। वह एक भले परिवार का लड़का था और मुझे बड़ा भला था। उसकी गृहस्थी बड़ी थी। कम वेतन के

कारण उसका किसी तरह पूरा नहीं पड़ता था। स्वभाव से भला आदमी था। वह सदा व्यथित रहता था पर जबान से उफ नहीं करता था।

जब्र की इन्तेहा तो होती है।
सब्र की इन्तेहा नहीं होती॥

बिस्मिल इलाहाबादी

इसका अपवाद एक ही अपवाद है। क्षुधा-पीड़ित गृहस्थी। जब बुभुक्षित बच्चों के सामने से एक कुत्ता रोटी का टुकड़ा लेकर भाग गया तो महाराणा प्रताप जैसे स्वप्रतिज्ञ वीर का आसन हिल गया और उनके मन की इन्तहा हो गयी तो एक गरीब प्राविडेंट फंड क्लर्क की क्या बिसात? उन दिनों मालवीयजी वाइस चांसलर और ध्रुव जी प्रो वाइस चांसलर थे। वह क्लर्क ध्रुव जी के पास गया। यहीं उससे भूल बन पड़ी। यदि वह मालवीयजी के पास चला गया होता तो भाग्य का परनाला ही बदल गया होता। वे अवश्य उस गरीब की निराशा का सुन्दर से सुन्दर समाधान करते। पर हैसियत को कौन ग्रहण करता है। ध्रुव जी से उस क्लर्क ने दो टूक बात कही— मेरी तनख्वाह बहुत कम है। मेरी गृहस्थी नहीं चलती। बच्चे भूखे रह जाते हैं। मेरे वेतन में २०) मासिक की वृद्धि की जाय। ध्रुव जी ने उसे बुरी तरह से डांटा और निराश होकर वह लौट आया। उस दिन उसने प्राविडेंट फंड के रुपये से २०) मासिक निकाल लेने का प्रण किया। न एक पैसा कम और न एक पैसा अधिक। यह व्यापार बरसों चलता रहा और किसी को पता न चल पाया। एक दिन सहसा आडिटर की पकड़ में पकड़ा गया। अपना २०) काट कर उस महीने के प्राविडेंट फंड का रुपया लगभग १०००) खजाने में जमा कर भाग निकला। [illegible] किसी से बनारस गया था। वहां मुझे पता चला कि वह [illegible] दिन से गायब है। पता लगाने से उसके एक घनिष्ठ

मित्र के पास गया। उन्होंने मेरे सामने उसका भेजा हुआ एक पोस्टकार्ड रख दिया जिसमें लिखा था—

प्रिय, जब यह पत्र तुम्हें मिलेगा मैं संसार में न रहूँगा। मैंने यह काम घूसजी की डाह से किया है। बच्चों को तुम पर छोड़े जाता हूँ। उनका ख्याल रखना। उस पर मिर्जापुर से भेजे जाने की मुहर थी। पढ़कर मैं सन्न रह गया। घूसजी की डाह! रहस्य कुछ समझ में न आया। इसके एकाएक दफ्तर से गायब हो जाने से इसके हिसाब की जाँच हुई और पता चला कि इसने लगभग १००) गबन किया है। जब मिर्जापुर में कुछ पता न चला तो मैं प्रयाग वापस चला आया। पूछ-ताछ करते-करते यह पता चला कि उसका एक घनिष्ठ मित्र सलीमपुर मेरा (उत्तर प्रदेश) में रहता है। वहाँ आदमी भेजा वहाँ हजरत मिले। मेरा आदमी समझा-बुझाकर उसे मेरे पास लिवा लाया। बहुत पूछने पर उसने सब उपर्युक्त बातें बतलाईं और कहा मिर्जापुर में मैंने १) की संखिया खरीदी और शाम के वक्त गंगा-तट पर जाकर मैंने उसे खा लिया। मुझे तुरन्त उलटी हो गयी और मैं बेहोश होकर गिर पड़ा। जब होश हुआ तो मैं स्टेशन की ओर भागा और टिकट कटाकर सलीमपुर पहुँच गया। मैंने कहा दफ्तर की जाँच से पता चला है कि तुमने लगभग १००) गायब किया है। क्या यह सही है? उसने कहा "बिलकुल गलत। अमुक महीने से अमुक महीने तक २०) माहवार के हिसाब से जोड़ लीजिए। और जोड़कर उसने बताया कि २००) होता है। न कम न ज्यादा। उससे और बात करना फजूल समझा। उसके परिवारवालों से जोड़-बटोरकर २००) मुझे दिए और मैं उस सफर काशी में मालवीयजी से मिला। उस समय वहाँ विश्वविद्यालय के अवैतनिक कोषाध्यक्ष पण्डित कन्हैयालाल दत्त अवकाशप्राप्त हाईकोर्ट के जज और घूसजी बैठे थे। मैंने पूरा किस्सा उनके सामने कह दिया और

२) रुपय मालवीयजी के सामने रख दिये। रुपयो को देखकर मालवीयजी की आँखो म आँसू आ गए—जिस कठिनाई से पेट काटकर उस गरीब परिवार ने इतने रुपये एकत्र किये होगे उस लड़के के बाल-बच्चो का भविष्य म क्या होगा इत्यादि अनेक बाते सम्भवत उनके हृदय को मथ रही थी। सवाल उस उस समय के विरुद्ध क्या कारवाई की जाय। कोषाध्यक्ष महोदय और प्र.बजी की राय थी कि मामला पुलिस के सुपुर्द कर दिया जाय। सबकी बात सुनकर मालवीयजी बोले इस लड़के ने बेईमानी नहीं की बाल-बच्चो की रक्षा के हेतु पाप किया वर्ना मागने के लिए यह

१) क्या जमा करना ? दूसर हम माग तो केवल ६) उसके गिरफ्तार किये गये है। लड़के ने आ स्वय २०) पक्षमाया और उसके गरीब परिवार ने उस भर भी दिया। वह लड़का बेईमान नहीं है। परिस्थितियो के कारण वह पागल और भरा हो गया। मै उसके खिलाफ कोई कानूनी कारवाई न करूगा। बहुत सम्भव है कि पुलिस-सुपुर्द करने से उसका जीवन बिगड़ जाय या वह बीच ही म टूट ऐसा कर बठे जिसम उसके बाल-बच्चे भूखो मर जाय और मरी आर दुर्बल उन्नत करो क्यागती। आर उस लड़के म यह कि वह इस पाप का प्रायश्चित्त कर कर और अपने जीवन म भय से काम ले। तभी उसका कल्याण हो सकता है।

मै एक बड़ा सामान इस बेईमानी और गार म भूख म विषम भोर न्याय का। सुनकर रह रह गया। इस प्रकार मालवीयजी विश्वविद्यालय के कर्मचारियो के प्रति व्यवहार करते थे।

श्री द० आ० त्रिगुणायत शास्त्र पाव श्रेनाशारजी के लव शारदा है। महिम गरिम आदमी भस्म भूति और मप के सर्जन क गमान बार।। जब मै विश्वविद्यालय म था उसम उनम यही गर्मी थी। मुझ उदक-प्राण के आदमी गम्य है। मुझ मुझ आदमी — । गुप्त। त्रिगुणायतजी शालीनता। गा मन म पर

'जल्दू पर (border line) अवश्य थे। उनसे झगड़ा मोल लेना आसान न था। उनसे और मालवीयजी से सम्बन्धित दो तीन संस्मरण उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत करूँगा। नैतिक की क्या सुन्दर है साहब कहे तो मानूं।

'मालवीयजी के एक प्रिय अध्यापक के विरुद्ध बहुत सी शिकायतें थीं पर नहीं की। एक टाइप किया हुआ गुमनाम पत्र जब आया तो मालवीयजी ने उसकी छानबीन करने का निश्चय किया और एक कमेटी बना दी जिसके वे स्वयं अध्यक्ष बने। मेरा दुर्भाग्य कि कई अन्य लोगों के साथ सन्देह मेरे ऊपर भी लगाया गया। मेरी पेशी हुई और जब मालवीयजी ने कहा कि उपरोक्त पत्र मैंने लिखा है, मेरे पास अपना टाइपराइटर भी है और मैं ही ऐसी कड़ी भाषा का प्रयोग कर सकता हूँ तो मैंने उत्तर दिया कि आवश्यकता पड़ने पर कड़ी भाषा का प्रयोग मैं कर सकता हूँ, मेरे पास टाइपराइटर भी है परन्तु यदि मुझे कुछ शिकायत करनी होगी तो मैं निर्भीक भाव से करूँगा और पत्र पर हस्ताक्षर कर उसकी जिम्मेदारी भी ले सकता। इतना कहते-कहते आँखों में आँसू भर आये और मैं बिलखने लगा। पंडितजी के साथ काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, उनसे स्नेह हो गया था, इतनी धार्मिक भावना सहन न हो सका। मेरी पेशी फिर न हुई।

कुछ समय के उपरान्त मुझे परिस्थितियों का सन्देश मिला कि मैं उनसे मिलूँ। बिना विश्वास हो गया था। मैं न गया। फिर सन्देश मिला। उसमें आग्रह था। मैं डरते डरते गया। मुझे देखते ही मालवीयजी उठ खड़े हुए और भरे हुए हृदय से उन्होंने मुझे नाम से सम्बोधन किया। आँखें उनकी डबडबा आईं और आगे कुछ न कह सके। मेरे जैसे तुच्छ पुरुष ने भी जो कटु शब्द कहे थे पकड़ लिये। यह थी उनकी क्षमाशीलता। कारण कालान्तर और साधारण के बीच पर स्नेह, क्या कभी भुलाया जा सकता है?

लगभग १९३९ की बात है। साइन्स कालेज से अलग होकर कालेज आफ टेक्नालोजी बना। कैमिस्ट्री डिपार्टमेंट की लाइब्रेरी एक ही थी। इस कैमिस्ट्री डिपार्टमेंट उठाकर अन्यत्र ले गया और इंडस्ट्रियल डिपार्टमेन्ट के पास पुस्तकें एक ही नहीं गयीं। कठिनाई बहुत होने लगी तो शैतानी सूझी। एक दिन लाइब्रेरी जाकर पहुँचा और लाइब्रेरी क्लर्क से कुछ पुस्तकें माँगी। वह व्यस्त था। दूसरे कमरे में कुछ टाइप कर रहा था तो उससे अलमारियाँ खोल देने को कहा। बेचारे ने खोल दीं। कोई खटका तो था नहीं। सब जल्दी-जल्दी जितनी पुस्तकें इंडस्ट्रियल कैमिस्ट्री सम्बन्धी थीं मैंने डिपार्टमेन्ट के चपरासी द्वारा जिसका पहिले ही प्रबन्ध कर रखा था भिजवा दीं और बाकायदा नाम बुक में दर्ज करके पास बुक लाइब्रेरी क्लर्क को पेश कर दी वह तो हक्का-बक्का रह गया। एक ही आदमी ८०० रु० पुस्तकें कैसे ले जा सकता था? शिकायत हुई माननीयजी तक पहुँची। इसी बीच में सब किताबें टीप टाप नम्बर लगाकर एक कमरे में रैक में क्रमानुसार रख दी गयी थीं और ताला-कुंजी अपने पास थी।

"एक दिन सुबह माननीयजी तथा प्र मर्जी अपने नित्य के नियमानुसार प्रातः भ्रमण निकले तो इंडस्ट्रियल कैमिस्ट्री डिपार्टमेन्ट में पहुँच गये और मुझे बुलाकर पूछा कि डिपार्टमेन्ट की लाइब्रेरी कहाँ है। मेरे पैर में तो कांपने लगे परन्तु हिम्मत करके कुछ दिखा दिया। देखकर बोले कि यह तो बहुत अच्छी बन रही और प्र मर्जी की ओर देखकर खिलखिला मुसकराये। मेरी जान में जान आई। शिकायत जो की गयी थी काफूर हो गयी।

'यह तब की बात है' और अब उन्हें गुनाहगार करने को कोई चेष्टा भी करे तो वह सजा मिलेगी कि पानी की याद आ जायगी।

'माननीयजी का स्वभाव था कि छोटी बड़ी सब बातों का निर्णय स्वयं किया करते थे और छोटे बड़े सबकी आवश्यकताओं

को पूरा किया करते थे। और यह भी उनकी महत्ता कि छोटी सी बात से ही गहराई पर पहुँच जाते थे। इस घटना में प्रश्न इतना ही नहीं था वह था एक अध्यापक के सम्मान का जिनकी प्रतिष्ठा वे सदैव ऊँची बनाये रखना चाहते थे। उस समय की तुलना में आज रोना आता है।

मेरे एक परम मित्र हैं श्री-श्रीकृष्णदास। उन्होंने साहित्य की शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पायी है बड़ी लगन के आदमी हैं। एक लगन के आदमी के लिए मालवीयजी के समय से विश्वविद्यालय क्या कर सकता है यह आप समझ सकते हैं। उन्होंने जो आप-बीती कही है उसे लिखता हूँ। आप-बीती अपने ही शब्दों में ठीक से व्यक्त होती है।

उन्हीं के फ़साने लिख रहा हूँ, ज़बान उनकी है बात उनकी।
उन्हीं की महफ़िल सँवारता हूँ, चिराग़ मेरा है रात उनकी।
फ़क़त मेरा हाथ चल रहा है उन्हीं की चाहें लिख रही हैं।
उन्हीं का मज़मूँ, उन्हीं का काग़ज़ क़लम मेरा है दवात उनकी।

श्रीकृष्णदासजी लिखते हैं— मैं एम० ए० कैसे पास हुआ?

आज तक सोचने में जब उस घटना को स्मरता हूँ और चौंक उठता हूँ। अगर मालवीयजी महाराज का विशेष अनुग्रह न होता यदि उन्हें मेरी सत्यवादिता पर अटूट विश्वास न होता तो मैं अवश्य अपमानित होकर अपने उस विश्वविद्यालय से निकाला जाता जिसका कोना-कोना मेरे लिए शिवालय था।

घटना कुछ विचित्र एवं असाधारण सी है।

उन दोनों आदमी के संघर्ष की लहर तेजी के साथ बह रही थी। मैं उसमें आपाद-मस्तक डूबा हुआ था। फिर कक्षा में जाने और पढ़ने-लिखने की फुरसत थी? अपनी समझ में मैं अपने जीवन का हर क्षण उस संघर्ष में झोंकने में व्यतीत कर रहा था। नतीजा यह हुआ कि मेरा नाम कट गया हाजिरी गायब हो गयी। मैं

जितने दिनों कक्षा में जाकर बैठा उसका कोई लेखा जोखा न रहा। परीक्षा में बैठने के लिए मुझे अनुमति मिलेगी या नहीं यह संदिग्ध हो गया। तत्कालीन रजिस्ट्रार मेरे सख्त विरोधी थे। मगर मेरे प्रोफेसर श्री मुकुन्दबिहारीलाल ने मेरी सारी बकाया फीस क्षमा कर दी। वह मेरी राजनीतिक कारगुजारियों से बहुत ज्यादा प्रभावित और प्रसन्न थे। समस्या हाजिरी की आयी। आचार्य गुरुमुख निहालसिंह (जो बाद में राजस्थान के राज्यपाल हुए) घनघोर देश भक्त और विद्यार्थी-वत्सल महानुभाव थे। उन्होंने मेरी हाजिरी की समस्या सिफारिश से हल कर दी। रजिस्ट्रार महोदय अब भी सन्तुष्ट न थे। मालवीयजी महाराज के सामने मेरा मामला पेश हुआ। उन्हें मेरी सारी राजनीतिक हरकतों का पूरा पता था। ऐसे देश प्रेमभक्त नवयुवक को परीक्षा में बैठने का अवसर न देना सर्वथा अनुचित होगा। मुझे परीक्षा में बैठने की अनुमति मिल गयी।

अब एक कठिन समस्या और आयी।

उन दिनों पाँच विषय अनिवार्य और दो ऐच्छिक होते थे। मैंने फार्म भरा तो उसमें गलती हो गयी। अनिवार्य विषय तो ठीक-ठीक लिख दिये। ऐच्छिक विषयों के चुनाव में आपाधापी हो गयी। मैंने भिन्न वर्गों में से दो विषय चुनने के बजाय एक ही वर्ग में से दो विषय चुन लिये और फार्म भर दिया। किसी ने मेरी यह गलती या भूल न पकड़ी। मेरा फार्म ज्यों का त्यों मंजूर हो गया और मैं परीक्षा में बैठने लगा। आखिरी दिन मैं पकड़ गया और मेरी कापी पर सरदार गुरुमुख निहालसिंह ने हिसाब लगा लिया कि यह परीक्षार्थी आज गलत विषय में परीक्षा दे रहा है। उस का विषय चुनने का अधिकार न था।

'मामला रजिस्ट्रार के पास पहुँचा। वह खुशी से फूले न समाये। चार वर्षों के मेरे कामों का बदला लेने का उन्हें

मेहुद मयदा अवसर मिल गया था। मेरे मन को बगल चोट पहुँची। राजनीतिक कारणों से मुझे रस्टिकेट किया जाता तो मुझे भय होता। मगर यह तो सर्वथा अनैतिक अपराध था। मैं अपने को सर्वथा निर्दोष समझता था। यदि फार्म भरने में मुझसे गलती हुई थी तो रजिस्ट्रार महोदय के कार्यालय को उसकी पूरी जाँच करने के बाद ही उसे स्वीकार करना चाहिए था। जानबूझकर बेईमानी करने का आरोप मुझे असह्य था। प्रो॰ बाउम चौसमर राजा ज्वालाप्रसाद से मैंने सारा किस्सा बताया। उन्होंने मुझे मालवीयजी महाराज के सामने उपस्थित कर दिया। उस समय उनके कमरे में राजा ज्वालाप्रसाद के अतिरिक्त पण्डित बलदेवप्रसाद दवे पण्डित कन्हैयालाल मढेम बाबू शिवप्रसाद गुप्त श्री गंगाप्रसाद महता (रजिस्ट्रार) आदि मौजूद थे। मालवीयजी ने छूटते ही कहा मुझे तुमसे ऐसी आशा नहीं थी।

"मेरे तन-बदन में आग लग गयी। मैंने दर्जनों बार मालवीयजी और विश्वविद्यालय के अधिकारियों से टक्करें लीं और उन्हें पराजित किया था। मगर मेरी नीयत पर सच्चाई और ईमानदारी पर कभी शंका नहीं की गयी थी। आज मालवीयजी महाराज स्वयं मेरी ईमानदारी पर सन्देह कर रहे थे। मगर सीता की तरह मैं भी बोल पड़ा—

"माता मे मायबी केति जिवत राघुबर लि"

मालवीयजी मेरे मनोभावों को ताड़ गये। बोले "तुम्हें इसके सम्बन्ध में कुछ कहना है?"

आवेश के कारण काँपते स्वरों में मैंने उत्तर दिया "आप मुझे बेईमान न समझें। मुझे बस इतना ही चाहिए। मुझे एम॰ ए॰ की डिग्री न मिले न सही। आपकी नजरों से उतर जाना मेरे लिये असह्य होगा।

उस समय मेरी आँखों से अश्रु की अनवरत धारा प्रवाहित

हो रही थी। ये आँसू सात्विक रोष के थे — निरपराधी की बेबस प्रतिहिंसा के थे — आत्मसम्मानपूर्ण स्वाभिमान के थे।

जादू असर कर गया। भोले बाबा का आसन डोल गया। करुणा की धारायें फूट पड़ीं। त्रिलोचनजी (मालवीयजी महाराज के निजी सचिव पण्डित त्रिलोचन पंत) को आदेश मिला 'इस लड़के को मेरी गाड़ी में ले जाओ और रसगुल्ला खिलाकर वापस ले आओ।' उपकुलपति की नजर में अपराधी विद्यार्थी रसगुल्ला खाने के लिए चल पड़ा।

वापस आया तो बापू अपने कमरे में बिस्तर पर लेटे हुए थे। अपने पास बुलाकर पूछा — रसगुल्ले अच्छे थे?

'जी हाँ, बहुत अच्छे थे। मैंने बहुत से रसगुल्ले खा लिये।' मैं चहक बोला।

दूध भी पिया?

मैं मौन रह गया। गोविन्द को आदेश मिला — इस लड़के के लिए एक गिलास दूध ले आओ। गोविन्दजी चले गये तो बापू ने शान्त गम्भीर किन्तु मन्द स्वर से कहा 'देखो, तुम्हारे सम्बन्ध में निर्णय करने का सम्पूर्ण अधिकार मुझे दे दिया है। मुझे तुम्हारे ऊपर पूरा विश्वास है। तुम्हारी परीक्षा एक वर्ष में फिर से ली जायगी।

आँखों से बेज़ार है इन्सान जमाना।
मगर इसमें पहले है पैगम्बर इशारा॥

मेरी सिसकियाँ अब थोड़ी मोहनेवाली थीं। जिस समय गोविन्दजी कमरे से आए शायद उन्होंने यही दृश्य देखा होगा — प्रभु के चरण में शीश। शायद मेरे प्रति गोविन्दजी का भी मान आदर उनकी आँखों में बढ़ गया होगा।

बापू नहीं हैं। मगर उनकी आत्मा अवश्य विश्वविद्यालय में रहती है। लोग यहाँ उस अलौकिक आत्मा के अभिवादन के लिए।

'मैं अपने 'बापू' अपने उप-कुलपति की पुण्यस्मृति को प्रणाम करता हूँ। बापू, विश्वास मानो मैंने अपनी देशभक्ति को बेचा नहीं है। मैं अब भी ईमानदार हूँ। मेरे ऊपर विश्वास करो बापू।

इस सम्बन्ध में मुझे एक बात याद आ गयी। सन् १९२५ में जब संयुक्त प्रान्त की कठपुतली मिनिस्टरी काम कर रही थी जवाहरलालजी ने एक तीखा लेख लिखा था। उसमें उन्होंने तत्कालीन मिनिस्टरों की पोल खोली थी। उसकी एक प्रतिलिपि हस्ताक्षरित कर उन्होंने मुझे दी। कहा कि इसको यू० पी० के अखबारों ने जब न छापा तो यह मदरास में छपा। उस लेख का आरम्भिक अंश था—"Politics said George the Third of England are a trade for rascal not a gentleman (इंगलैंड के जार्ज तृतीय ने कहा है— राजनीति व्यापार है बदमाशों का भले आदमी का नहीं)। जब ऐसी बात है तो यह भूल श्रीकृष्णदासजी की थी कि उन्होंने एम० ए० में पालिटिक्स ली। उसका खमियाजा तो उन्हें भुगतना ही था। बहुत दिनों से कुछ अधिकारीगण उन्हें फँसाने में लगे थे। परन्तु मैं तो यही कहूँगा कि श्रीकृष्णदासजी

सस्ते छूटे जो करे राह अमानत उलटा।
सर से इस बार-ए-करोड़ों का उतारा उलटा॥

फकत अमानत ही उलट रख जाते तो मालवीयजी महाराज ने रखा ही थी।

श्रीकृष्णदासजी लिखते हैं—

परीक्षा समाप्त हुई तो विश्वविद्यालय छोड़ने के पहिले अपने बापूजी का दर्शन करने गया। वे बाहर ही बरामदे में कुर्सी पर बैठे हुए मिल गये। प्रणाम किया आशीर्वाद मिला। वह हार्दिक आशीर्वाद था— 'देखो अपने विश्वविद्यालय को याद रखना' फिर जरा रुक कर बोले — तुम्हारी शरारतों और बदमाशियों से

कारण गांधीजी तुमसे नाराज रहते थे। मगर मैं जानता था कि तुम आगे चलकर अवश्य कुछ करोगे। यह विश्वविद्यालय तो तुम्हारे लिए अभ्यास-क्षेत्र मात्र था। जीवन के विशाल संग्राम में अब तुम्हें खेलने का अवसर मिलेगा। अपनी माँ अपनी मातृभूमि के ऋण को मत भूलना। उसे तुम जैसे नवयुवकों से बहुत आशा है। उस विश्वविद्यालय में प्राप्त शिक्षा का यही औचित्य भी होगा। तुम्हारा मंगल हो।

बाबूजी की सजल चमकती आँखें अपने ही आँसुओं में डूब गयी थीं। मैं कुछ न बोल सका। मेरा गला रुँधा हुआ था। मन ही मन कहा — विश्वविद्यालय के ऋण का, बाबूजी के असीम स्नेह के ऋण को, मातृभूमि के ऋण को कभी भूलूँगा नहीं। चरण स्पर्श किया और गोई बिहारी मोमी। भाई विनोबानन्दजी मालवीयजी का एक फोटो भी दिल में लाये। मगर जी न भरा। मैंने माँग करके मालवीयजी महाराज की पगड़ी, कम्पास और अंगरखा लिया। जब तक मैं स्वतन्त्र भारत के बाहर घर में रहे, इनके आगे-आगे ही पूजा करनी शुरू की।

१९४२ की मई को मैं गिरफ्तार हो गया। फिर गिरफ्तार किया और जेलखाना आने का क्रम चल पड़ा। इस बार १९४४ में मालवीयजी प्रयाग आये और अपने पुराने घर में ठहरे। बाबूजी कमरे में उनका बिस्तर लगा हुआ था। मैं दर्शन करने पहुँचा तो दरवाजे पर ही गोविन्द मालवीयजी मिल गये। वे बाबूजी के पास मुझे ले गये। गोविन्दजी ने हँसकर ही कहा — "बाबू, कम्युनिस्ट आ गया। वह देखो, यह भी मिलने आया है।" गोविन्द... बाबूजी ने कुछ मुस्कराया और मेरे सर पर हाथ फेरते हुए प्यार से कहा — "गोविन्द, क्या मैंने नहीं कहा था कि यह मदनमोहन आगे चलकर कुछ बनेगा। इसने मेरे घर की मर्यादा रख ली।"

बाबूजी बिस्तर हो गये थे। मैंने देखा कि उनके शरीर

लगनेवाले गोविन्ददास का दिल भी पसीज गया था। उनकी भी आँखें नम हो गयीं।

गोविन्दजी ने भाई कृष्णदास को समझाया कहा इसमें उनका दोष नहीं है। आप सत्यवादिता देशभक्ति एवं सम्भवतामा के पुतले ही क्यों न हों किसी के हृदय को समझ पानेवाले विरल होते हैं। बेचारे गोविन्द ने

रात भीतों को ख्वाब में देखा।
सारी सूरत जमाने की सी थी॥

बस एम० ए० के साथ-साथ असफलता की भी उपाधि मिलने में मिल गयी एक तत्कालीन वाइस-चान्सलर से दूसरी भार्या चान्स चान्सलर से। भूत से वर्तमान और भविष्य दोनों को सुधार दिया।

उपसंहार

महिमानं यदुत्कीर्त्य तव संह्रियते वचः।
श्रमेण तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया॥ कालिदास।

(अर्थात् भगवान् की महिमा का वर्णन करता हुआ कोई भी व्यक्ति यदि अपने संस्मरण का उपसंहार करता है तो वह अपने श्रम के कारण अथवा अधिक जानने की शक्ति न होने के कारण करता है। भगवान् के गुणों की समाप्ति हो गयी हो ऐसा नहीं।)

और मैं ऐसी धृष्टता कैसे कर सकता हूँ जब—

स्वर्गोत्पत्तिमौक्तिकरूपाणि गुणैस्सवटीयै
संदर्भितु विबुधवामहरात्प्रवृत्ता।
नाम्नो गुणेषु न च कीर्तिषु रम्यमेतो
हारो न जात इति ता स्वमिवो हृमस्मि॥

(गिरा में कामने की शक्ति असीम होती है। इस प्रकार उन्होंने आपके गुणरूपी—हीरा और कीर्तिरूपी शुभ्र मोतियों से एक माला गूँथने की ठानी। पर जब उन्होंने देखा कि न तो आपके गुण ऐसी



डोरे का कोई अन्त है और न कीर्ति रूपी मोतियों में तनिक सा भी छिद्र है, तो माला कैसे बने यह देखकर वे अपनी अशक्ति पर आपस में हंसने लगीं।)

अब मैं अपनी दूकान समेटता हूँ। एस० एस० पी० Senior Superintendent of Police की कृपा से या यदि वक्रगति से कहिए—व्यक्ति दो हैं पर नाम एक है—तो PS.S (प्रधान सम्पादक सरस्वती) के अनुग्रह से निर्धारित अवधि के उपरान्त भी मेरी दूकान खुली रह पायी इसका मैं आभारी हूँ। पर उनकी दफा १४४ का भी तो ख्याल है। अतः मैं अब इन संस्मरणों को पटाता हूँ और अपनी दूकान बढ़ाता हूँ। खरीदारों का तांता तो लगा ही रहेगा। वे मुझे क्षमा करेंगे।

मालवीयजी का गुणानुवाद करने से जी नहीं भरा। अभी निर्धारित अवधि में दस-पांच मिनट बाकी हैं। तब तक थोड़ा सा और वर्णन कर क्यों न अपने हृदय को पवित्र कर लूं?

यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात्।
विमुच्यते नमस्तस्मै नमो नमः॥

(जिसके स्मरण मात्र से संसार के बन्धनों से प्राणी मुक्त हो जाता है उसे बारम्बार नमस्कार है।)

श्री सी० एफ० एंड्रूज मालवीयजी के प्रति लिखते हैं —

"It remains to try to sum in a few words his character which all who have known him intimately have found so gentle and winning. No one not even Mahatma Gandhi himself is dearer to the vast majority of the Hindu public. He has also a great record of public national service which places him very high indeed among those Indian leaders who are still living in our

own times. There is in him a bravery of spirit which is equal to his tenderness of heart and his religious faith is as simple as that of a child. Behind all is a personality so attractive that he has won the hearts of millions who have never even seen him but have only known his great sacrifices both on behalf of his mother land his Hindu faith.

(मुझे अब थोड़े से शब्दों में उनके चरित्र के सम्बन्ध में लिखने का प्रयास करना पड़ रहा है, जिसे सब लोगों ने जो उनके अति निकट सम्पर्क में आये हैं इतना सौम्य और आकर्षक पाया है। कोई भी व्यक्ति यहाँ तक कि स्वयं महात्मा गाँधी भी असंख्य हिन्दू जनता को इतने प्रिय नहीं हैं जितने मालवीयजी। उनकी देश-सेवा का बहुत बड़ा खाता उन्हें उन भारतीय नेताओं के बीच में, जो हमारे बीच आज भी मौजूद हैं बहुत ऊँचे स्थान पर बिठा देता है। उनकी धर्म-निष्ठा बच्चों के विश्वास के समान सरल है। और इस सबके पीछे उनका व्यक्तित्व इतना आकर्षक है कि उसने उन लाखों आदमियों के हृदयों को मोह लिया है जिन्होंने उन्हें देखा भी नहीं है परन्तु केवल उनके मातृ-भूमि और हिन्दू-धर्म के प्रति महान् उत्सर्गों के द्वारा जानते हैं।)

पता मालूम नहीं कितने प्रशंसात्मक वाक्य बड़े-बड़े लोगों ने मालवीयजी के सम्बन्ध में लिखे हैं। उन सबों का इस छोटी सी लघु माला में समावेश असम्भव है। अतः मैं इन शब्दों का संस्मरणों ही में सीमित रखूँगा। जो एक पुरानी बातें सहसा याद आ गयी हैं उन्हें लिखता हूँ।

स्वदेशी वस्तुओं का स्वयं उपयोग करना और उनका प्रचार करना मालवीयजी के जीवन का एक अंग था। १६ मई १९११ को

उन्होंने "इलाहाबाद" म्युनिसिपल म्युजियम का निरीक्षण किया और उसकी निरीक्षण पंजिका पर यह टिप्पणी अपने हाथों से लिखी—

मैंने आज प्रयाग म्युनिसिपल म्युजियम को देखा। इसको देखकर मुझे प्रसन्नता हुई। थोड़े समय में एक देखने के योग्य स्थान बन गया है। बहुत से महत्वपूर्ण पदार्थ अनमोल हैं यथा संस्कृत की हाथ की लिखित पुस्तकें जो मेरे स्वर्गवासी मित्र डाक्टर जयकृष्ण व्यासजी के पुस्तकालय से इस नाम से म्युजियम को भेंट की गयी हैं यथा ही अरबी और फारसी की हस्तलिखित पुस्तकें फरमान आदि। यह म्युजियम मेरे मित्र पंडित ब्रजमोहन व्यास के परिश्रम और उत्साह का फल है। इसकी जो उन्नति इन थोड़े से समय में हुई है उससे मुझे आशा है कि आगे चल कर इसकी और स्थायी उन्नति होगी। मेरी राय में हर एक जिले में एक स्थायी स्वदेशी म्युजियम स्थापित होना चाहिए और अच्छा होगा यदि वह म्युनिसिपल बोर्ड की ओर से या उसकी सहायता से स्थापित हो। इसमें देश की बनी सब आवश्यक वस्तुओं का संग्रह होना चाहिये और उनके मिलने का पता और उनका मोल भी सूचना होनी चाहिये। इससे देशी व्यापार की वृद्धि में बड़ी सहायता होगी और म्युजियम की उपकारिता बहुत बढ़ जायगी। हर तीसरे महीने म्युजियम में जिले के भीतर बनाई गई चीजों का खास प्रदर्शन होना चाहिए। इससे जिले के निवासियों में नई चीजों के बनाने का उत्साह बढ़ेगा।

ता० १८-२-१९३३

(४०) मदनमोहन मालवीय

सन् १९३८ में काशी में आयोजित स्वदेशी प्रदर्शिनी के अवसर पर मालवीय जी ने जो महत्वपूर्ण संदेश भेजा था वह इस प्रकार है—

'स्वदेशी का व्रत एक पुनीत व्रत है जिसमें अपना ही न

सबका भला होगा। जिस प्रकार लालटेन अंधकार को हटाकर प्रकाश फैलाता है उसी प्रकार स्वदेशी का व्रत दुख और दरिद्रता को दूर हटाकर सुख का प्रसार करता है। मैं गत ५६ वर्षों से स्वदेशी का उपयोग कर रहा हूँ। मैं देश-सेवा को ईश्वर की उपासना मानता हूँ। आज देश के लाखों कारीगर अपने गुणों का सहारा लेकर भी अपने परिवार का पालन नहीं कर पा रहे हैं क्योंकि विलायती वस्तुओं ने उनका बाजार बन्द कर दिया है। स्वदेशी व्रत से देश के सभी लोग सुखी होंगे देश का धन देश में रहेगा। परमात्मा आप सबको अपनी भक्ति के साथ-साथ देश भक्ति भी प्रदान करे।

मालवीयजी का जीवन स्वदेशी निष्ठा से ओत प्रोत था। अब इस विषय पर कुछ अधिक कहना पुनरुक्ति होगी अतः समयक्रमानुसार वर्णन की अवहेलना कर कुछ थोड़े से संस्मरण प्रस्तुत करता हूँ।

बीस वर्ष काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति रहने के बाद मालवीयजी ने अस्वस्थता और वार्धक्य के कारण अवकाश ग्रहण कर उस पदभार को भी सर्वपल्ली राधाकृष्णन (वर्तमान राष्ट्रपति) को सौंप दिया।

वार्धक्ये यमतो मूढः स्वदेहमपि न ।
विधातुमप्यशक्तिः तत्ः कीदृक् विद्यास्यति ॥

—कुमारदास जानकीहरण।

(एक तो मनुष्य बुढ़ाई में स्वभावतः शक्तिहीन हो जाता है और अपना शरीर ही उठाये नहीं उठता तब इच्छा रखते हुए वह तप किस प्रकार कर सकता।) विश्वविद्यालय के कुलपति का पद भार किसी तप से कम तो था नहीं।

अवकाश ग्रहण कर वे मालवीय भवन में रहने लगे। बहुत वृद्ध हो गये थे कमर झुक गयी थी लाठी के सहारे चलते थे। इतने पर भी उनसे मिलने वालों की भीड़ तो लगी ही रहती थी। पहि

के मन में आता-जाता रहता है। जो बात मुझे घोर पीड़ा दे रही है वह यह है कि प्रतिनिधियों ने (यह समझ कर कि अब इनके पास धन नहीं रह गया, आना छोड़ दिया)।

इसी प्रकार अर्थाभाव मालवीयजी को पीड़ा पहुँचाता रहता था।

विश्वविद्यालय में विश्वनाथजी का मन्दिर

अपनी ७२ वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में आयोजित उत्सव में भाषण देते हुए मालवीयजी ने इस सम्बन्ध में कहा था—

इस मन्दिर के लिए मैं क्या कहूँ। यह अब तक क्यों नहीं बना इसके लिए मुझे बड़ा दुःख है। पचास तीन पचास वर्ष हुए एक तपस्वी महात्मा आये और इसकी नींव रख गये, तबसे यह अभी तक नहीं बन सका। पर इसका सब दोष मुझ पर ही है। आप सब जानते हैं कि दिनों में भी बड़े-बड़े मकानों के बनने में यों ही देर होती है। कुकुरमुत्ता तो यों ही उग आता है, पर बड़े वृक्ष के बढ़ने में समय लगता है। मैंने इसके लिए काफी समय नहीं दिया मुझे इसकी बड़ी शर्म है। हम सबको उद्योग करना चाहिए कि सामग्री इकट्ठी हो। सब विद्यार्थी इस मन्दिर के लिए प्रयत्न करें और धन इकट्ठा करें तो समुचित प्रबन्ध हो। मेरा इस वर्ष का कार्यक्रम है। आप विश्वास रखो मैं अभी नहीं मरूँगा। (भविष्यवाणी!!!) शरीर छूटने पर भी मैं नहीं मरूँगा बल्कि हिन्दू विश्वविद्यालय में या यहीं कहीं जन्म लेकर हिन्दू जाति और देश की सेवा करूँगा। यदि भगवान् की मर्जी होगी तो वे मुझे और आयु देंगे। यदि उनको इस शरीर से और सेवा करानी होगी तो मेरे स्वास्थ्य में और बल में वृद्धि करेंगे और यदि उनकी इच्छा नहीं होगी तो उनकी मर्जी। इस बात को भगवान् समझता है।

इसके आगे हम एक दो संस्मरण प्रस्तुत करने जा रहे हैं जिनसे

लिखने में तबीयत भिन्नाती है—

सुनाना चाहता हूँ किस्सये-ग़म उनको मैं लेकिन ।
मुबादा कहते कहते आँख भर आयी तो क्या होगा ॥

बङ्गाली की मृत्यु

मालवीयजी के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रमाकान्त मालवीय का प्यार का नाम बंगाली था। मालवीयजी को वृद्धावस्था में अपने ज्येष्ठ पुत्र का विछोह देखना बदा था। विधि के इस दारुण विधान को कौन टाल सकता था। शरशय्या पर पड़े, भीष्म पितामह से किसी ने पूछा— 'महाराज! दीर्घायु अच्छी या बुरी?' बोले "अच्छी भी और बुरी भी। अच्छी इस अर्थ में कि सत्कर्म करने के लिए अधिक समय मिलता है परन्तु बुराई यह है कि प्रियजन विछोह की सम्भावना बढ़ जाती है।" अपनी माता के मरने पर उनका दाहकर्म बंगाली ने ही किया था। परन्तु उनकी बर्सी करने की नौबत न आयी और वे बीमार पड़ गये। मालवीयजी उस समय विश्वविद्यालय में रहते थे। अपना पुत्र अपनी आँखों के सामने रहे और उसकी अच्छी से अच्छी दवा की जा सके अतः बंगाली बाबू शिवप्रसाद गुप्त की कोठी में जो विश्वविद्यालय के बहुत निकट थी रहने लगे। वहाँ सब प्रकार की सुविधा थी। परन्तु बीमारी मर्ज की तरह बढ़ती ही गयी। कोई दवा काम नहीं कर रही थी।

मैं यह नहीं कहता कि दवा कुछ नहीं करती।
कहता हूँ बिना हुक्मे-ख़ुदा कुछ नहीं करती॥

—अकबर इलाहाबादी

एक दिन उनकी हालत बहुत बिगड़ गयी। अब-तब लग गया। ज्वर बहुत तेज चढ़ आया। आँखें बाहर निकल पड़ती थीं पर प्राण नहीं निकल रहे थे। लोगों ने जाकर खबर दी और कहा महाराज रमाकान्तजी इस समय घोर कष्ट में हैं। अब कुछ ए

नहीं गया केवल प्राण नहीं निकल रहे हैं। वे आपके आज्ञाकारी पुत्र हैं बिना आपकी आज्ञा के प्राण नहीं छोड़ेंगे। आप उनका कष्ट से उद्धार जल्दी कीजिए'। मालवीयजी तुरन्त मोटर पर आये और कमर झुकाये लट्ठी टेकते रमा के सामने जाकर खड़े हो गये। कुछ क्षण उन्हें देखते रहे और फिर आँखों में आँसू भरकर बोले 'बेटा! तुम्हें बड़ा कष्ट है अब तुम जाव। रमा की आँखें जो अब तक व्यग्रता के कारण निकली पड़ती थीं वे फरवरी सन् १९४३ में सदा के लिये बन्द हो गयीं।

उस दिन से ११ महीने पूर्व उनकी माता सौभाग्यवती कुन्दन देवी ने भी मालवीयजी की आज्ञा लेकर अपने प्राण छोड़े थे।

रमाकान्त जी को देखने मैं काशी गया था। यह सब व्यापार मैंने अपनी आँखों से देखा। रमा की मृत्यु के बाद कुछ लोग माल वीयजी को मोटर में बिठाकर उनके भवन में ले गये। मैं उनके साथ मोटर में बैठ गया था। रास्ते में वे मुझसे एक शब्द नहीं बोले और न मैं कुछ बोला। बोलते ही क्या था! केवल धैर्य एवम्‌ विधि के विधान को मन मस्तक होता था।

मोटर से उतरकर मालवीयजी जैसे-तैसे अपने कमरे में बिना किसी से कुछ बोले चाल के गये और कमरे को भीतर से बन्द कर लिया। कमरे के भीतर क्या हुआ कौन जान सकता है।

जो गुज़री है गुज़रती है याम मैं हरदम।
किसी खुदा के किसी को खबर नहीं होगी॥

—अमीर

हम लोग बाहर के कमरे में बहुत धीरे धीरे धुस-फुस बात कर रहे थे। ऐसा लगता था जैसे मालवीयजी ने कमरे के दरवाजे पर कोई दयपुरुष अपने मुह के सामने अंगुली रखे खड़ा हो और हम लोगों से कह रहा हो—चुप।

सभी लोग जीवन की असारता पर क्षुब्ध थे।

> मरने वाला, मरते दम एक बात आखिर कह गया।
> हमको देखो, तुमको अपनी जिन्दगी पर नाज़ है।

दिन बीतते देर नहीं लगती। मालवीयजी छूट गये पर संसार अपनी गति से चलता रहा।

लगभग एक वर्ष बाद मैं किसी काम से काशी गया। मालवीयजी के दर्शन करने गया। वे अपनी चारपाई पर लेटे थे। मुझे अति निकट बुलाकर मेरे परिवार का कुशल समाचार पूछा। उनकी दहाड़ने वाली आवाज़ अब बहुत धीमी पड़ गयी थी। सहसा मालवीयजी ने मुझसे बहुत धीरे से कहा—'ग़ालिब कुछ सुनाइये।' मेरे मुंह से निकल पड़ा—

> रंज से खूगर हुआ इन्सां तो मिट जाता है रंज।
> मुश्किलें मुझ पर पड़ीं इतनी कि आसां हो गयीं॥

—ग़ालिब

मालवीयजी की आँखों से आँसू बहने लगे। भर्राई हुई आवाज़ से बोले—फिर कहिये। मैंने उनकी आज्ञा का पालन तो किया पर मुझे बड़ा पछतावा हुआ कि यह शेर पढ़ा ही क्यों। उनके आँसू मेरे हृदय में तीर के समान चुभे।

> इन आँसुओं की हक़ीक़त को कौन समझेगा?
> कि इनमें कौन नहीं जिन्दगी का मातम है॥

इस भीषण दुर्घटना के बावजूद वे अपने कर्तव्य से विरत नहीं हुए और अपना शरीर घसीटकर काम करते रहे। नोआखाली के नृशंस अत्याचारों से उनकी आत्मा हिल उठी और वे विह्वल हो गये। अपना एक लम्बा वक्तव्य तैयार किया जिसमें उन्हें कई दिन कड़ी मेहनत करनी पड़ी।

मालवीयजी का देहावसान

इसके तीन चार दिन बाद वे संध्या समय आठ मील दूर दिग पुर गोशाला के उत्सव में गये।

कौन सा झोंका हुआ वैरी, किसे मालूम है ?
जिन्दगी एक शमा रोशन है हवा के सामने ॥
—बिस्मिल इलाहाबादी

उत्सव से रात्रि को देर में लौटे और ठण्ड लग गयी। उन्हें क्या मालूम था कि यही हवा का आखिरी झोंका है। दो एक दिन कुछ ध्यान न दिया। दशा बिगड़ती गयी।

प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ
विफलत्वमेति बहुसाधनता ।
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभूत्
न पतिष्यतः करसहस्रमपि ॥
माघ—शिशुपाल वध

(जब विधि प्रतिकूल हो जाता है तो सारे साधन विफल हो जाते हैं। सूर्य ही को देखो यद्यपि संध्या के समय उसके सहस्र कर (हाथ—किरण)—हाथ उठाये रहते हैं पर डूबने से उसे न बचा सके) अन्त में १२ नवम्बर १९४६ को ८४ वर्ष की आयु में भारत का सूर्य अस्त हो गया।

मालवीयजी के अन्तिम दर्शन करने के लिए भीड़ टूटी पड़ रही थी। दर्शकों का पारावार न था। बाहर बरामदे में उनका शव रखा था यहाँ एक कोने से शव पर मैं आँख गड़ाये निस्तब्ध खड़ा उनके दर्शन के अमृत को पीता रहा पचाता था। मेरे [illegible] निरा निर्मल आँखों में घूम गये थे। लेकिन—

सब्र न कर मेरी तरह पानी पर।
हूँ भी आँसू बहाये जाती हैं॥

मालवीयजी की अरथी का जो जुलूस श्मशानघाट गया था उसका कोई वर्णन न करूँगा। इतना कहना पर्याप्त होगा कि काशी ने इसके पूर्व इतना बड़ा जुलूस न देखा होगा।

जब शव चिता पर रखा गया तो सहसा मेरे मुँह से निकल पड़ा—

> अयि निर्दय दैव ! किं कृतं । विहितं त्वत्कृत दुर्विचेष्टितम् ।
> प्रसभं हृदि पातिताशनिः । कृतमेतत्सहसा वपुष्मताम् ।
> भगवत् पदसेवनो कुलं । करुणामर्हति कृतयोऽपि ते ।
> किमु नाकरुणमगर्हितं । विहितं तदपि विपर्यये विधे ।
>
> क्व गता चेतनता शक्तिरस्य चेतना
> क्व च सा वाक्पटुता क्व सा क्व धीः ।
> क्व नु धर्मनिष्ठता गता
> भुवि शेते विनिःक्रियं वपुः ।

(हे निर्दय दैव ? तुमने यह क्या किया ! हे यम ! तेरी इस दुश्चेष्टा को धिक्कार है कि तुम सहसा हमारे हृदय पर वज्रपात किया। यह भगवद्भक्त परिवार तो तुम्हारी कृपा का पात्र है। यम तूने कैसे उसके साथ अकरुण और गर्हित व्यवहार किया। (भला) इनकी चेतन शक्ति कहाँ चली गयी ? वह वाक्पटुता अब कहाँ रही ? वह धर्मनिष्ठा वह बुद्धि कहाँ विलीन हो गयी ? वह मुख का सौन्दर्य कहाँ लुप्त हो गया। आज यह शरीर पृथ्वी पर पड़ा सो रहा है।)

तब और अब

दिन पर दिन बीतते चले गये। मालवीयजी अब स्मृति मात्रावशेष रह गये।

> जानेवाला कभी नहीं आता।
> जानेवाले की याद आती है।

जैसे वीणा के तार टूटने पर झंकार आती है।

"Then came a change as all things human change"

(तब परिवर्तन आया जैसे सभी सांसारिक चीजें परिवर्तनशील होती हैं।)

मालवीयजी के देहावसान के पहिले लोगों में कुछ-कुछ बात होने लगी कि मालवीयजी को काशी की परिधि के भीतर ले जाया जाय क्योंकि नगवा जहाँ विश्वविद्यालय है, शास्त्र के अनुसार काशी की परिधि के बाहर है और वहाँ मरनेवालों को मोक्ष नहीं होता। मालवीयजी को इस बातचीत का किसी तरह पता चल गया। उन्होंने बाबू ज्योतिभूषण गुप्त को बुलवाया। गुप्तजी स्वर्गीय राजा मोतीचन्द के उत्तराधिकारी हैं और आजन्म विश्वविद्यालय के अवैतनिक कोषाध्यक्ष हैं। मालवीयजी उन्हें अपने पुत्र के समान मानते थे और यज्ञोपवीत में उन्होंने स्वयं उनको मंत्र दीक्षा दी थी। उनसे मालवीयजी ने कहा 'देखो ज्योति! मुझे ये लोग काशी न ले जाने पावें। मैं अभी मोक्ष नहीं चाहता। मेरे काम अधूरे पड़े हैं। मुझे विश्वविद्यालय और देश की सेवा करनी है। दोनो वचन देन दो कि तुम मेरे इस आदेश का पालन करोगे।' ज्योतिभूषणजी हक्का-बक्का हो गये और वचन दे दिया। तब मालवीयजी को शान्ति मिली।

मालवीयजी के अन्तिम समय की एक घटना और स्मरणीय है। श्री युगलकिशोर बिड़ला उन्हें देखने गये थे। उनसे उन्होंने कहा, "मरने का कोई भय नहीं है परन्तु भारत के बनने की चिन्ता मुझे खा रही है।" इस पर बिड़लाजी तुरन्त बोल उठे— "यह भार मैं अपने ऊपर लेता हूँ। अब आप इसकी चिन्ता छोड़ दें।" बिड़लाजी के आश्वासन से मालवीयजी को जो शान्ति मिली पर उनका। [illegible] पर हुई थी। शब्दों में यह बताना

नहीं हो सकती।

इसी प्रकार मालवीयजी के देहावसान के बाद विश्वविद्यालय का वातावरण और परिवार का सा संगठन क्रमशः शिथिल ही होता गया। याद रहे कि यह मैं मालवीयजी की कसौटी पर कसकर कह रहा हूँ। सन् १९५१ में मैं वहाँ एक्जीक्यूटिव आफिसर के पद पर नियुक्त हुआ और साढ़े छः वर्ष उस पद पर रहा। इस बीच में मैंने देखा कि—

यह हलका हो गई है एक साकी के न होने से।
कि खुम के खुम भरे हैं दुख से और मयखाना खाली है।

मैं मालवीयजी की स्मृति को हृदय में जगाकर अपने काम में पिल गया। यद्यपि कर्तव्यों के पालन करने में मैं पूज्य मालवीयजी के उपदेशों का सदा ध्यान रखता था फिर भी दिमाग में लाट साहबी तो थी ही। इसका एक संस्मरण कहकर इस संस्मरण को समाप्त करूँगा।

विश्व विद्यालय की इस विस्तृत भूमि पर पहिले किसान लोग रहते थे और उनके खेत थे। यह भूमि जब विद्यालय के लिए ली गयी तो वे सब उजड़ गये। मालवीयजी को भला यह कैसे सह्य हो सकता था। उन्होंने विश्वविद्यालय से संलग्न दो बड़ी जमीनें खरीद लीं और उनमें उन सब उजड़े किसानों को बसा दिया और वे पूर्ववत् अपना काम करने लगे। लगान भी उनके ऊपर बहुत कम लगाया। उन दोनों गाँवों के नाम—एक का अपने गुरु पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य की स्मृति में आदित्यनगर और दूसरे का अपने परम मित्र पण्डित सुन्दरलाल दत्त की स्मृति में सुन्दरपुर रख दिया। उनसे लगान वसूल करना मेरे विभाग का काम था। मैंने देखा कि पिछले सोलह वर्षों से किसी से लगान वसूल ही नहीं किया गया। यह अवश्य है कि उनमें बहुत से बड़े गरीब थे पर ऐसे भी तो थे जो दे सकते थे। मैंने ताव में आकर यह

निश्चय किया कि मैं पन्द्रह दिन के अन्दर वसूल करूँगा। मैंने सबों को एक हफ्ते की रजिस्टरी नोटिस बेदखली की दे दी। वे लोग समझे कि यह बंदरभपकी है। दसवें दिन एक बड़ी मोटर पर दस तगड़े लठबन्दों के साथ सुन्दरपुर पहुँच गया। पहिले ही जिलादार को उन लोगों को इकट्ठा करने के लिए भेज दिया। मैंने उन लोगों से कहा— देखो! आज मैं यह निश्चय करके आया हूँ कि या तो आज मैं सब बकाया वसूल करूँगा या तुम्हारे घर का सामान बाहर निकलवाकर तुम्हें बेदखल कर दूँगा। इसके करने में आज चाहे लाश गिर जाय। कहीं मालवीयजी वहाँ पर होते तो यदि मेरा कान पकड़कर विश्वविद्यालय से न निकाल देते तो सुन्दरपुर से चले जाने के लिए अवश्य कहते।

दो घंटों के अन्दर मैंने वसूलयाबी कर ली। जितने गरीब थे उन सबको माफ कर दिया और माफी का पुर्जा तत्काल उन्हें दे दिया। इसकी सनसनी आस्तियनगर में फैल गयी। दूसरे दिन वहाँ गया और इसी प्रकार वहाँ के बकाये की वसूलयाबी कर ली।

प्रो॰ राम थॉमसन, प्रोफेसर मार्शनर यह सुनकर चकित हो गये और उन पर मेरी कार्यकुशलता का सिक्का जम गया।

तीन-चार दिन बाद मेरे विभाग का एक चपरासी एक अत्यन्त गरीब ब्राह्मण को लेकर आया। उसके साथ उसकी विधवा बहू और तीन चार छोटे-छोटे दुबले-पतले बच्चे थे। वे विश्वविद्यालय के अन्य स्थान पर आठ आना महीने के किरायेदार थे। इस पार्टी के जिम्मे साठ रुपया बकाया था। अख्तियार सिंह ने कहा— हुजूर, इसकी बहू ने गले की हँसुली गिरो रखकर सात रुपया तो मैंने खजाने में जमा करा दिया है। अब इस रुपया के लिए क्या हुक्म होता है? अख्तियार सिंह पर गुस्सा आया और मन में आया कि कह दूँ कि हँसुली तो चली गयी, अब गरदन भी उसका

लो। मेरे हृदय में दबी हुई मालवीयजी की स्मृति ने करवट सी और मेरी आँखों में आँसू आ गये। बोला— अक्षयवर सिंह ! तुम्हें इस गरीब बहू के गले से हसुली उतरवाते लज्जा नहीं आयी। तुम्हारे बहू बेटी नहीं है क्या ? अभी जाव और उस आदमी का हँसुली के साथ हाजिर करो। मैं अपने दफ्तर से उठकर प्रो-वाइस चांसलर के कमरे में गया। साथ में इन गरीबों को लेता गया। प्रो-वाइस चांसलर से मैंने कहा— प्रोफेसर नारलिकर ! मैं इस समय बड़ा दुखी हूँ। हमारे इन मजदूरों ने इस गरीब पासिन की हसुली उतरवा ली और उसे गिरो रखकर सोलह रुपया बकाया वसूल कर लिया। अब छ रुपया बाकी रह गया है। रुपया गरीबी के कारण इसे माफ कर दीजिये। उन्होंने तुरन्त माफ कर दिया। मैं कुछ हिचकते हुए बोला— यदि मैं आप से यह सिफारिश करूं कि सोलह रुपया जो खजाने में जमा हो गया है वह इसे वापस करें तो आडिट इस पर आपत्ति करेगा। थोड़ा ठमककर मैंने कहा अच्छा इसे मैं दूंगा।

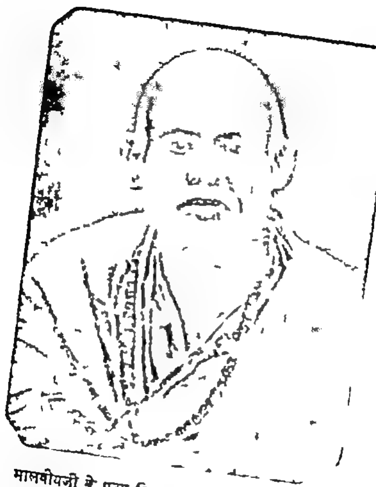
इस पर प्रो० नारलिकर मुसकिराकर बोले—"Let us share it half and half" (मालवीजी ! हम लोग इसे आधा-आधा वहन करें।) मैं तुरन्त बोल उठा—Prof. Narlikar I am prepared to share my sins with you not my good deeds (प्रो० नारलिकर ! आपके साथ अपने पापों का बटवारा करने के लिए प्रस्तुत हूँ पुण्यों का नहीं।) प्रो० नारलिकर मुसकिराये। कमरे के बाहर वह आदमी हसुली लिये खड़ा था। मैंने जेब से सोलह रुपया निकालकर उस आदमी को दे दिया और हँसुली लेकर नारलिकर साहब के सामने ही उस गरीब पासिन की बहू के गले में पहिनवा दी। वे लोग असीसते चले गये।

ऐसी कितनी ही घटनायें आये दिन हुआ करती थीं। परन्तु जब-जब मैं सहायता करने में अपने को बेबस पाता था तो मुझे

प्रो० निगुरणायत की बात याद आती थी—उस समय भी तुलना में आज रोना आता है।

परन्तु लाचारी थी। किससे कहूँ और कौन सुनता है।

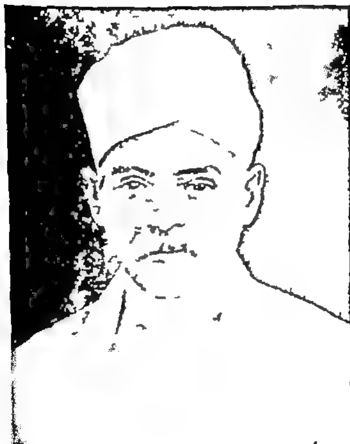
काया-मनो चिम सो कहूँ उससे चरॅबिन।
नावे में ईंट चुने से पत्थर से क्या कहूँ॥



मालवीयजी के पूज्य पिता पं० ब्रजनाथजी मालवीय



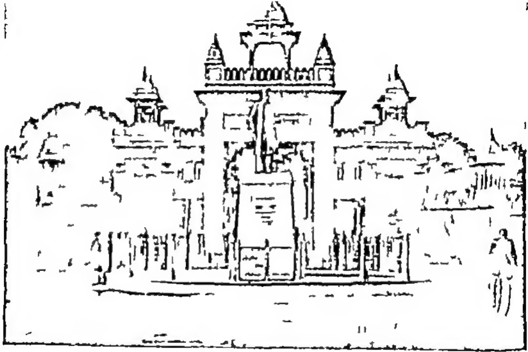
मालवीयजी की पूजनीया माता श्रीमती मूनादेवीजी



महामना मालवीयजी



मालवीयजी की पत्नी श्रीमती कुन्दन देवी जी



काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का मुख्य द्वार